श्रीमाधवकरप्रणीत

माधवनिदान

हिन्दी-अनुवाद सहित



अनुवादक

पं० चंडिकाप्रसाद अवस्थी

संपादक और संवर्धक

पं० गोपालप्रसाद शर्मा कौशिक

साहित्यरत्न, वैद्यभूषण, आयुर्वेदाचार्य,
साहित्याचार्य, विद्यालंकार

प्रकाशक

(राजा) रामकुमार बुकडिपो

उत्तराधिकारी नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

तृतीय संस्करण २०००	१९५१	मूल्य २)

माधवनिदान सटीक

की

विषय-सूची

अर्श निदान

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक और विलम्बिका-निदान

विषय	पृष्ठ

अश्मरीनिदान

प्रमेह-प्रमेहपिडकानिदान

कफज १० प्रमेहों के लक्षण

प्रमेह के उपद्रव

पिडकाओं की आकृति

विषय	पृष्ठ

असृग्दरनिदान

योनिव्यापन्निदान

योनिकन्दनिदान

विषय	पृष्ठ

मूढगर्भनिदान

सूतिकारोगनिदान

स्तनरोगनिदान

स्तन्यदुष्टिनिदान

परिशिष्ट की सूची

दोष-धातु-मल-वृद्धि-क्षय-निदान

शुभमस्तु

श्रीः

माधवनिदान

भाषा-टीका-सहित

पञ्चनिदानलक्षण

मंगलाचरण

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥

नानामुनीनां वचनैरिदानीं
समासतः सद्भिषजां नियोगात् ।
सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो
निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २॥

जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, स्वर्ग (सुख) और मोक्ष के (द्वार) देनेवाले, तीनों लोकों के रक्षक, शिवजी को प्रणाम करके, सद्वैद्यों की आज्ञा से, (चरक-सुश्रुत आदि) मुनियों के ग्रन्थों के आधार पर उपद्रव[1], अरिष्ट[2], निदान[3], लिङ्ग-युक्त[4] संक्षेप में रोगविनिश्चय नामक इस ग्रन्थ की रचना करता हूँ।

---

१ एक व्याधि के बाद उपक्रम के अनुकूल जो दूसरी व्याधि उत्पन्न होती है वह उपद्रव कहलाती है। २ अवश्य ही मृत्यु होगी, ऐसा प्रकट करनेवाले लक्षण अरिष्ट कहलाते हैं। ३ रोग को उत्पन्न करनेवाला कारण निदान कहलाता है। ४ रोग का बोध करानेवाला कारण लिङ्ग कहलाता है। पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति भी इसी के अन्तर्गत हैं।

(मूल श्लोक में 'इदानीं' शब्द रखने का यह प्रयोजन है कि इस समय तक निदान का ऐसा संग्रह किसी ने नहीं किया, मेरा यह प्रथम प्रयास है।)

ग्रन्थ बनाने का प्रयोजन

नानातन्त्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।
सुखं विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

वैद्यक-शास्त्र के अनेक बृहद् ग्रन्थों का अध्ययन जो नहीं कर सकते, उन अल्पबुद्धि वैद्यों को सरलता से रोगों का ज्ञान कराने में यही ग्रन्थ उपयोगी होगा ॥ ३ ॥

रोग जानने के पाँच उपाय

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥४॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति इन पाँच प्रकारों से (सबसे अथवा एक-एक से) रोगों का निश्चय होता है।

टिप्पणी—रोग निर्णय के लिए रोगी की परीक्षा भी करनी पड़ती है। वह दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न तीन प्रकार से होती है, ऐसा चरक-सुश्रुत आचार्यों ने कहा है। किन्तु निदान, पूर्वरूप आदि पाँचों से रोग की परीक्षा होती है। अस्तु, रोग निर्णय के लिए इन पाँचों की आवश्यकता है।

यथा—दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् ।
रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

(च० सू० अ० १)

निदानपंचक रोग का ज्ञान कराने में सभी मिलकर और अलग-अलग भी समर्थ हैं। जैसे मूत्रग्रन्थि और अश्मरी में स्थान, वेदना और कारण सब एक ही होते हैं, किन्तु पूर्वरूप से भेद का निश्चय होता है। बकरे के मूत्र की-सी गन्ध अश्मरी ही में होती है, मूत्रग्रन्थि में नहीं। इसी प्रकार यदि गहरे हल्दी के रंग का लालमूत्र आए जो हारिद्र मेह का लक्षण है किन्तु मेह के पूर्वरूप न हो तो रक्तपित्त मानना पड़ेगा। जहाँ वात-व्याधि और ऊरुस्तम्भ में भेद करना कठिन हो वहाँ तैल की मालिश

रूपी उपशय से रोग का निश्चय किया जाता है, इसमे उपशय पहिले रोग-ज्ञान में सहायक हुआ, पीछे निदान रूप आदि ने भी ज्ञान कराया।

निदान के पर्यायवाचक शब्द

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः। निदानमाहुः पर्यायैः,

निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण, निदान के यह छः नाम हैं। इनका प्रयोग वैद्यक-शास्त्र में जहाँ कहीं मिले, उनको 'निदान' का पर्यायवाची समझना चाहिए।

टिप्पणी—निदान शब्द की निरुक्ति 'निर्दिश्यते व्याधिरनेनेति निदानं' जिससे व्याधि जानी जाय वह निदान है—आचार्य गदाधर। 'निश्चित्य दीयते प्रतिपाद्यते व्याधिरनेनेति निदानम्' जिससे निश्चय-पूर्वक व्याधि बतलाई जाय वह निदान है—आचार्य जेजट।

गदाधर ने निपूर्वक दिश् धातु से निदान शब्द की सिद्धि मानी है और जेजट ने निपूर्वक डु दाञ् धातु से भावकर्म में स्वीकार की है।

इस श्लोक में निदान के अन्य लक्षण न करके उसके पर्यायों का ज्ञान कराकर ही निदान का परिचय दिया है, यह नाम से परिचय हुआ। रूप मे परिचय—'रोगोत्पादकहेतुर्निदानम्' अर्थात् रोग को उत्पन्न करनेवाला हेतु निदान है। कर्म से परिचय—'सेति कर्तव्यताको रोगोत्पादको हेतुर्निदानम्' अर्थात् दोषप्रकोप के अनुकूल व्यापारवाला रोगजनक हेतु निदान है। बन्धुओं से परिचय—'ज्ञापकभिन्नो हेतुर्निदानम्' अर्थात् ज्ञापक हेतु से भिन्न हेतु निदान है। वस्तुतः निदान का संक्षिप्त लक्षण दोषों को कुपित कर रोग को उत्पन्न करनेवाला निदान है।

निदान अर्थात् कारण अनेक प्रकार का होता है। पहिले चार प्रकार का आचार्य हरिश्चन्द्र के मतानुसार लिखते हैं। १. सन्निकृष्ट निदान—जैसे दिन, रात, ऋतु और आहार के अलग-अलग अंश दोषों को कुपित करने के कारण हैं वे दोष-संचय आदि की अपेक्षा नहीं रखते हैं, ये सन्निकृष्ट हेतु अर्थात् पास के कारण हैं। २. विप्रकृष्ट निदान—जैसे हेमन्त ऋतु में संचित हुआ श्लेष्म वसन्त में कफज रोगों को करता है, इसी प्रकार ग्रीष्म में वात संचित होकर वर्षा में वातज रोगों को करता है। यह दूर का कारण हुआ। ३. व्यभिचारी निदान—निदान आदि निर्बल होने से रोग उत्पन्न करने में असमर्थ हों वे व्यभिचारी निदान कहलाते हैं। आचार्य चरक ने

कहा है, जब निदान आदि निर्बल होते हैं तो निर्बलता के कारण दूष्यों से सम्बन्ध नहीं करते तब विकार नहीं होते । यथा—(निदानादि विशेष) 'अबलीयांसाऽथवाऽनुबध्नन्ति, न तदा विकाराभिनिर्वृत्तिः' ।

(च० नि० स्था० अ० ४)

४. प्राधानिक निदान—जैसे अपने सूक्ष्म आदि दशगुणों के कारण शीघ्र ही शरीर में लीन होकर विकार उत्पन्न करता है, यह प्रधान कारण है ।

दूसरे १ असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग, २ प्रज्ञापराध, ३ परिणाम-भेद से निदान तीन प्रकार का होता है ।

१. असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग—रूप, रस आदि इन्द्रियों के विषयों का अतियोग (अधिक), अयोग (बिलकुल नहीं), मिथ्या (गलत ढंग से) होना ही असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग है जैसे रूप विषय के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रकाशित अग्नि दीपक आदि को अधिक समय तक देखना अतियोग, बिल्कुल न देखना अयोग और अँधेरे में देखना, लेटे हुए ही पढ़ना आदि मिथ्या योग है । इसी प्रकार से और भी समझिए ।

२. प्रज्ञापराध—वाचिक, शारीरिक और मानसिक तीन प्रकार के कर्मों का अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग ही प्रज्ञापराध कहलाता है । अधर्म भी प्रज्ञापराध में सम्मिलित है । जब मनुष्य बुद्धि, धृति, स्मृति से भ्रष्ट हो जाता है तो अशुभ कर्म करता है, अतः यह भी प्रज्ञापराध में सम्मिलित है । आचार्य चरक भी जनपदोध्वंसनीय अध्याय में अधर्म का मूल प्रज्ञापराध ही मानते हैं यथा—सर्वेषामप्यग्निवेश ! वाय्वादीनां यद्वैगुण्य-मुत्पद्यते तस्य मूलमधर्मः तन्मूलं वाऽसत्कर्म पूर्वकृतम् । तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एवं । (१ च० वि० स्था० अ० ३) धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः कर्म यत्कुरुतेऽशुभम् । प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्वयोगप्रकोपणम् ।

(च० शा० स्था० अ० १)

३. परिणाम—ऋतुओं के स्वाभाविक धर्म उष्णता, वर्षा, शीत आदि का अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग होना परिणाम कहलाता है । परिणाम कालबोधक है यथा—'कालः पुनः परिणाम उच्यते' (च० सू० स्था० अ० ११) अधर्म भी रोग का एक कारण है उसको परिणाम में सम्मिलित करना भट्टार हरिश्चन्द्र का मन्तव्य है क्योंकि अधर्म करने से उसका फलस्वरूप रोग भी कालान्तर में ही होता है किन्तु आचार्य चक्रपाणि अधर्म को प्रज्ञापराध में सम्मिलित करते हैं जैसा कि ऊपर

लिखा जा चुका है। निदान के अब तीन भेद—दोषहेतु, व्याधिहेतु तथा दोषव्याधिहेतु और भी हैं।

१. दोषहेतु—चय, प्रकोप और प्रशम से कारण हुए अपनी-अपनी ऋतु में उत्पन्न हुए मधुर आदि रस दोषहेतु हैं।

२. व्याधिहेतु—जब कोई कारण अन्य दोषों को कुपित करने वाला होकर भी खास रोग को ही उत्पन्न करता है तब वह व्याधिहेतु है जैसे मिट्टी खाना पाण्डुरोग का कारण है, क्योंकि भिन्न-भिन्न रसवाली मिट्टी भि -भिन्न दोषों को प्रकुपित करती है किन्तु वह अन्य रोगों को उत्पन्न न करके केवल पाण्डुरोग को ही उत्पन्न करती है।

३. दोषव्याधिहेतु—जो कारण दोष और व्याधि दोनों को उत्पन्न करता है वह उभय हेतु है जैसे वातरक्त में हाथी, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी से तथा विदाही अन्न के सेवन से वातरक्त होता है, यहाँ पर कारण पहिले दोषों को कुपित करते हैं फिर रोग को उत्पन्न करते हैं यही कारण है कि यहाँ केवल रोगनाशक औषध से ही सफलता नहीं मिलती, प्रत्युत हेतुव्याधिविपरीत औषध ही सफल होती है जैसे वातिक शोथ में दशमूल का प्रयोग। रोगोत्पादक कारण दोष की शान्ति कर देने मात्र से ही सदैव रोग शान्त नहीं होता, क्योंकि कोई औषध रोगप्रत्यनीक होती है, कोई दोषप्रत्यनीक और कोई उभय प्रत्यनीक, अर्थात् एक निश्चत शक्ति औषध में होती है। यही कारण है कि श्लैष्मिक तिमिर में वमन श्लेष्महर गुण होते हुए भी हानिकारक होता है। यथा—तिमिराणां तिमिरातिवृद्धिः ·········तस्मादेते न वाम्याः।

(च० सि० स्था० अ० २)

वही निदान १ उत्पादक २ व्यंजक (प्रेरक) भेद से दो प्रकार का होता है। १ उत्पादक—जैसे हेमन्तऋतु में होने वाला मधुर रस कफ का उत्पादक हेतु है। २ व्यंजक उसी हेमन्तज मधुर रस से उत्पन्न कफ का व्यंजक वसंत ऋतु में सूर्य का संताप होता है। यहाँ वसन्त का सूर्य-सन्ताप कफ का व्यंजक हेतु है और हेमन्तज मधुर रस कफ का उत्पादक होता है।

यही हेतु बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का होता है। बाह्य हेतु—आहार-विहार आदि हैं, जैसे व्यायाम, लंघन, गिरना, जागरण आदि विहार कटु, अम्ल, उष्ण आदि आहार वर्षा ऋतु दिन-रात्रि का उत्तर भाग वातकोप का बाह्य हेतु होता है। आभ्यन्तरिक हेतु—दोष और दूष्य रोग उत्पत्ति में आभ्यन्तरिक हेतु होते हैं।

वही हेतु अनुबन्ध और अनुबन्ध्य (उपद्रव) भेद से दो प्रकार का होता है। अनुबन्ध्य प्रधान होता है । चरकसंहिता में कहा है—'स्वतंत्र स्फुट लक्षण एवं अपने निदान से उत्पन्न तथा अपनी चिकित्सा से शान्त होनेवाला अनुबन्ध्य होता है—इसके विपरीत अनुबन्ध है ।

यथा—"स्वतंत्रोऽव्यक्तलिङ्गो यथोक्तसमुत्थानापशमो भवत्यनुबन्ध्यः तद्विपरीतलक्षणस्त्वनुबन्धः" ।

(च० चि० स्था० अ० ३)

वही हेतु फिर प्रकृति, विकृतिभेद से दो प्रकार का होता है । जैसे कि वातप्रकृति मनुष्य का वातिक रोग कष्टसाध्य होता है । यही वातिक रोग कफ तथा पित्त-प्रकृति मनुष्य को सुख-साध्य होता है । जैसे कि चरकसंहिता में कहा है—'दोषदूष्य के समान गुणवाला और रोगी की प्रकृति के समान हो वह सुखसाध्य है' यथा—'न च तुल्यगुणो दूष्यो न दोषः प्रकृतिर्भवेत्' ।

(च० सू० स्था० अ० ३)

फिर हेतु के 'आशयापकर्षक' और गतिसंबन्धी दो भेद होते हैं । ये दोषों से सम्बन्ध रखनेवाले हैं किन्तु ये रोगोत्पादक होने के कारण हेतु के अन्तर्गत हैं ।

आशयापकर्षक—जब वायु अपनी उचित मात्रा में स्थित दोष को उसके स्थान से निकालकर दूसरे स्थान पर ले जाता है तब वह उचित मात्रा में होने पर भी रोग उत्पन्न करता है । यहाँ वह आशयापकर्षक हेतु है । इसका ज्ञान भी चिकित्सा की सफलता के लिये आवश्यक है जैसे वायु कफ के क्षीण होने पर अपने परिमाण में स्थित पित्त को भी उसके स्थान से खींचकर शरीर के जिस-जिस भाग में ले जाता है वहाँ भेद, दाह, थकावट और दुर्बलता भी उत्पन्न करता है, इसका अभिप्राय है वहाँ वायु ही विगुण होता है उसको स्वस्थान पर लाना ही चिकित्सा है । यदि उसको पित्तवृद्धि समझकर पित्त को क्षीण करने की क्रिया की जायगी तो पित्त क्षय होकर अन्य उपद्रव पैदा हो जायँगे इसलिए आशयापकर्षक हेतु पर विचार करना भी आवश्यक है। पित्तवृद्धि समझकर पित्तनाशक विरेचन करना उलटा हानिकारक होता है ।

गति से—क्षीण, वृद्धि, सम ये तीन दोषों की गति हैं । ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् यह भी दोषों की गति हैं एवं कोष्ठशाखा और मर्मास्थि सन्धियों में त्रिविध गति भी दोषों की है इनसे चिकित्सा में सुविधा रहती है । जैसे ऊर्ध्व आदि गति रक्तपित्त में होती है इसका ज्ञान रक्तपित्त में वमन-विरेचनादि देने में आवश्यक है क्योंकि ऊर्ध्वग रक्तपित्त में विरेचन

कराना चाहिए, वमन नहीं । यदि कोई अज्ञान से 'विरेचन पित्तहरों में श्रेष्ठ है।' इसको ग्रहणकर ऊर्ध्वग रक्तपित्त में विरेचन करा दे तो कितना हानिकारक हो। इसलिए ये आशयापकर्षक हेतु और गतिभेद हेतु दो प्रकार और भी हुए।

स्मरण की सुविधा के लिए श्लोक भी हैं यथा—चत्वारो व्यभिचारि दूरनिकटप्राधानिकत्वात्पुनस्तेऽसात्म्येन्द्रियकार्ययुक्परिणिति प्रज्ञापराधात्त्रिधा । रुग्दोषोभयकारणादपि तथा द्वौ व्यञ्जकोत्पादकौ, बाह्याभ्यन्तरभेदतोऽपि कथिता हेतो प्रभेदा अमी । दोषस्य च प्राकृतवैकृताभ्यां भेदोऽनुबन्ध्यादपि चानुबन्धात् ॥ तथा प्रकृत्यप्रकृतित्वयोगात्तथाऽऽशयापकर्षकवशाद् गतेश्च ।

अर्थात्—हेतु व्यभिचारी, दूर, निकट और प्राधानिक भेद से चार प्रकार का होता है । फिर वह असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, परिणाम और प्रज्ञापराध भेद से तीन प्रकार का होता है। वही हेतु पुनः दोषहेतु, व्याधिहेतु और उभयहेतु भेद से तीन प्रकार का होता है। व्यञ्जक उत्पादक भेद से दो प्रकार का होता है। बाह्य-आभ्यन्तर भेद से भी दो प्रकार का होता है। एवं दोष प्राकृत-वैकृत भेद से दो प्रकार का होता है—अनुबन्ध्य, अनुबन्ध भेद से दो प्रकार का, प्रकृति-विकृति भेद से दो प्रकार का होता है । फिर वही दोष आशयापकर्षी तथा त्रिविध गतिभेदवाला भी होता है।

प्राग्रूप

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥६॥

किसी दोषविशेष के सम्बन्ध से रहित केवल उत्पन्न होनेवाली व्याधि का ज्ञान जिन लक्षणों से हो उनको **सामान्य पूर्वरूप** कहते हैं। पूर्वरूप अवस्था में बहुत थोड़े होने से व्याधियों के अपने-अपने अव्यक्त (किञ्चित प्रकट शेष अस्पष्ट) लक्षण दिखाई देते हों वह **विशिष्ट पूर्वरूप** है।

टिप्पणी—पूर्वरूप का संक्षिप्त लक्षण है—भविष्य में उत्पन्न होनेवाली व्याधि का ज्ञान करानेवाले लक्षण पूर्वरूप हैं। इसके दो भेद हैं, सामान्य और विशिष्ट। सामान्य में केवल यही ज्ञान होता है कि अमुक रोग होनेवाला है किन्तु यह ज्ञान नहीं हो पाता कि किस दोष से होगा। जैसे

थकावट, बेचैनी (मन न लगना), विवर्ण (रङ्ग का बदलना) आदि से यह तो ज्ञान हो जाता है कि ज्वर होनेवाला है, पर वातज्वर या पित्तज्वर इसका निश्चय नहीं हो पाता। अतः ये सामान्य पूर्वरूप हैं। विशिष्ट पूर्वरूप के लक्षणों से यह भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्याधि वातज होनेवाली है या पित्तज होनेवाली है। जैसे जँभाइयों की अधिकता से वातज्वर और नेत्रदाह से पित्तज्वर का। रूप या लक्षण से इसमें यह भेद है कि होनेवाली व्याधि का ज्ञान तो हो जाता है किन्तु उसमें दोषों को कुपित करनेवाले भाव (जैसे वायु के लिए कोपक रूक्ष आदि) कौन से हैं यह ज्ञान नहीं हो पाता जो रूप से ही होता है।

विशिष्ट पूर्वरूप में अव्यक्त रूप ही होता है। (पूर्वरूप नित्य ही होनेवाली व्याधि का ज्ञान कराते हैं और रूप वर्तमान व्याधि का ज्ञान कराते हैं) किन्तु यदि पूर्वरूप पूर्णतया रूप में बदल जाय तो अरिष्ट चिह्न बन जाता है। आचार्य चरक ने कहा भी है कि यदि 'ज्वर में कहे हुए सम्पूर्ण पूर्वरूप बलवान् रूप से जिसमें प्रविष्ट होते हैं उस रोगी में मृत्यु प्रवेश कर जाती है।' यथा—

पूर्वरूपाणि सर्वाणि ज्वरोक्तान्यतिमात्रया।
यं विशन्ति विशत्येनं मृत्युर्ज्वरपुरःसरः॥

(च० इ० स्था० अ० ३)

पूर्वरूप सदैव दोषजन्य ही नहीं होते, अदृष्टजन्य भी होते हैं। जैसे यक्ष्मा में रोगियों के अन्नपान में तृण आदि का गिरना। इसलिए पूर्वरूप दोष प्रकोपजन्य और अदृष्टजन्य दोनों प्रकार के, भविष्य में होनेवाली व्याधि को बतलानेवाले लक्षण पूर्वरूप हैं। पूर्वरूप को देखकर ही भावी व्याधि का अनुमान हो जाता है और कभी व्याधि प्रकट होने पर लक्षणों के साथ पूर्वरूप के विषय में रोगी से पूछने पर उत्पन्न व्याधि का पूर्ण निश्चय हो जाता है। अतः पूर्वरूप दोनों दशाओं में उपयोगी है।

रूप

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः॥ ७॥

जब पूर्वरूप व्यक्त होता है, अर्थात् रोग के लक्षण स्पष्ट मालूम होते हैं तब वह उस रोग का रूप कहलाता है। रूप के भी छः पर्यायवाची शब्द हैं—संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति॥ ७॥

टिप्पणी—पूर्वरूप का व्यक्त होना दो प्रकार से होता है—एक सर्वाङ्गीण ा से, दूसरा एकाङ्गीण भाव से। यदि सर्वाङ्गीण भाव से हों तो सभी उत्पन्न होते ही असाध्य हो जायँ और यदि एकाङ्गीण भाव से ही वायु से जँभाई अधिक आना, पित्त से नेत्रों में जलन, कफ से अन्न में चि होती है, ये पूर्वरूप भी रूप कहलाने लगें; किन्तु ये दोनों बातें नहीं होतीं। इस सम्बन्ध में आचार्यों ने कहा है कि ज्ञान न होने से ो सर्वाङ्गीण व्यक्तता को और न एकाङ्गीण व्यक्तता को नियत रूप से ण किया जाता है; किन्तु एकत्व-अनेकत्व विशेष की निर्धारणा के बिना पूर्वरूप-मात्र का व्यक्तपन ही रूप है। पूर्वरूप और रूप दोनों एक य में नहीं हो सकते हैं।

खाँसी, अरुचि आदि अपनी स्वतन्त्र सत्ता में व्याधि हैं, किन्तु जब ये ो और व्याधि का बोध कराते हैं तब लक्षण कहलाते हैं और स्वतन्त्र धि नहीं रहते, साधारणतया दोषों और दूष्यों का संयोगविशेष ज्वर दि रूप ही व्याधि होती है, अरुचि आदि उसके कार्य होते हैं। स्वरूप ः का अर्थ व्याधि का कार्य लिया जाय तो उपद्रव भी उसमें आ जायँगे, तु उपद्रव केवल व्याधि का कार्य न होकर व्याधि को उत्पन्न करने- दोषों का कार्य होता है। मिथ्या आहार आदि के कारण मूलभूत के कोप से बलवान् होकर रोग उपद्रव करता है। चरकाचार्य ने है—'कोई-कोई रोग किसी-किसी रोग को उत्पन्न करके शान्त हो ा है' (च० नि० स्था० अ० ८) उपद्रव व्याधिबोधक न होकर के असाध्य लक्षण हैं और व्याधि का निश्चय तो उपद्रव उत्पन्न होने हिले ही हो जाता है।

रोग-निश्चय के लिए निदानपंचक में से रूप का महत्त्व सबसे क है। शेष इसके अनुवर्ती से चिकित्सा की सुविधा के लिए भी अन्य अपेक्षा रूप का ज्ञान अधिक आवश्यक है, किन्तु इससे अन्य का व कम न करना चाहिए।

उपशय

तुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्।
षधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ ८॥
द्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः।

हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थ-

कारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी जो औषध और आहार-विहार रोगी को चिरकाल तक सुखकारक (रोगनाशक) होता है उसके उपयोग को रोग का उपशय अथवा सात्म्य कहते हैं।

टिप्पणी—उपशय के लक्षण से सुखावहम् या सुखकारक अर्थ रोग-नाशक या चिरकाल तक सुखदायक ही ग्रहण करना चाहिए अन्यथा संगति नहीं बैठती, जैसे दाह-तृषायुक्त नवीन ज्वर में शीतल जल पीने से सुख होता है; किन्तु वह सुख उसी क्षण के लिए है, अन्त में उल्टा कष्टकारक होता है अतः वह उपशय नहीं है। इसलिए उपशय के सर्वसम्मत लक्षण इस प्रकार से होते हैं—

औषधजनित सुखानुबन्ध उपशय है। औषध से आहार, देशकाल, आचार, लंघन आदि द्रव्य तथा अद्रव्य पदार्थों को ग्रहण किया है। यथा 'नानौषधिभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते' (च० सू० स्था० अ० २६)

'नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्यमस्तीति' (सु० सू० स्था० अ० ४२)

'जगत्येव मनौषधम्' (वा० सू० अ० ६)

हेतुविपरीत का आशय है रोग उत्पन्न करनेवाले कारणरूप दोष के विपरीत कई द्रव्य दोषशामक हैं जिनसे उस विकार को उत्पन्न करनेवाला दोष शमन होकर व्याधि भी शमन हो जाती है जैसे 'शीतज्वर में शुंठी। व्याधि-विपरीत का आशय है रोग के विपरीत होना यद्यपि व्याधिविपरीत दोषविप-रीत भी होता है तथापि व्याधि को नष्ट करने की शक्ति उसमें विशेषरूप से होती है, इसीसे कितनी बार केवल हेतुविपरीत दोषशामक औषध व्याधि को शमन नहीं कर पाती जैसे कफदोष लंघन से साध्य होता है, परन्तु कफ-ज्वर और गुल्म में देशकाल के समान होने पर भी लंघन लाभदायक नहीं होता। व्याधिविपरीत में दोषशामक शक्ति भी होती है।

हेतुव्याधिविपरीत का आशय है दोनों को समान रूप से उपयोगी हो रोगो-त्पादक कारण के भी विपरीत हो और स्वयं रोग के भी विपरीत हो ऐसी औषध अधिक शक्तिसम्पन्न होती है।

विपरीतार्थकारी का आशय है अपने विशिष्ट प्रभाव से हेतु के समान-धर्मी होने पर भी अवान्तर वैधर्म्य के कारण रोग को शान्त करता है। जैसे अग्नि से जलने में हेतु अग्नि के समानधर्मी अग्नि गुण प्रधान अगरु लेप करने पर लाभ करता है यह उसके प्रभाव के कारण ही है। इसी तरह अन्य औषध अन्न विहार की भी हेतुविपरीतार्थकारी व्याधि विपरीतार्थ-कारी और उभयविपरीतार्थकारी गति समझनी चाहिए।

उपशय के उदाहरणों का चित्र इसको और भी अधिक स्पष्ट करता है।

उपशय के उदाहरण

नाम	औषध	आहार	विहार
हेतुविपरीत	कफज्वर में सोंठ आदि उष्ण औषध	परिश्रम और वायु से उत्पन्न रोग में मांस का रस और भात	दिन में सोने के कारण उत्पन्न हुए कफ-रोग में उसके विपरीत रात में जागरण
व्याधि-विपरीत	अतीसार में पाठा आदि	दस्त बन्द करनेवाला पथ्य मसूर आदि	उदावर्त में अधो-वायु का अनुलोमन
हेतुव्याधि-विपरीत	वातजन्य शोथ में दश-मूल का क्वाथ वात और शोथ दोनों का नाशक है।	वात-कफजन्य संग्रहणी में तक्र का सेवन वात-नाशक, कफनाशक और संग्रहणीनाशक है	दिन में सोने से स्निग्धता के कारण उत्पन्न तन्द्रा में, रात्रि में जागरण तन्द्रा और स्निग्धता के विपरीत है।
हेतुविपर्य-स्तार्थकारी	पित्तजन्य व्रणशोथ में पित्तकारक उष्ण पिंडी (पुल्टिस) का बाँधना	पित्तजन्य शोथ में दाह-कारक भोजन करना	वातजन्य उन्माद में भय देना
व्याधिविप-र्यस्तार्थकारी	छर्दि रोग में वमन-कारक मैनफल आदि	अतीसार में रेचन करानेवाला दूध आदि	छर्दिरोग में कंठ में अँगुली डालकर वमन करना
हेतुव्याधि-विपर्यस्तार्थ-कारी	विष की औषध विष अथवा जले हुए पर अगरु (उष्ण पदार्थ) का लेप	मदात्यय में फिर मद्य का पीना	व्यायामजनित संमूढ वात में जल में तैरना (व्यायाम)

अनुपशय

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः ।

उपशय के विपरीत जो हो उसीको अनुपशय कहते हैं और इसी को व्याध्यसात्म्य भी कहते हैं।

टिप्पणी—निदान के दो उपभेद किये जाते हैं, एक उत्पादक निदान, दूसरा वर्धक निदान। उत्पादक निदान को निदानमात्र ही कहते हैं। यह रोग को प्रारम्भ में उत्पन्न करता है यह प्रधान होता है, इसमें रोग को उत्पन्न करनेवाले आहार, 'विहार' औषध का समावेश है।

२ वर्धक निदान—रोग उत्पन्न होने पर उसमें वृद्धि करनेवाले जो कारण हैं वह वर्धक निदान कहे जाते हैं और उन्हींको अनुपशय कहते हैं।

इनका तो रोग और उपद्रव का सा सम्बन्ध है। एक प्रधान है, दूसरा अप्रधान, पर वास्तव में दोनों हैं एकजातीय ही। जैसे कभी ज्वर का उपद्रव अतिसार और कभी अतिसार का उपद्रव ज्वर होता है उसी प्रकार जो द्रव्य एक स्थान पर निदान है वह दूसरे स्थान पर अनुपशय हो जाता है।

अनुपशय व्याधिज्ञान के लिए उपशय के समान ही सहायक है। चरकाचार्यजी ने कहा भी है कि 'गूढ़लिङ्ग (स्पष्ट लक्षण) वाली व्याधि का निश्चय उपशय और अनुपशय से करना चाहिए' यथा—

गूढ़लिङ्गं व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां परीक्षेत ।

(च० वि० स्था० अ० ४)

संप्राप्ति

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

दोष के प्रकुपित होने से तथा शरीर में उस दोष के फैलने से जिस प्रकार रोग की उत्पत्ति होती है, उसे संप्राप्ति कहते हैं। संप्राप्ति रोग की उत्पत्ति का नाम है। जाति और आगति भी इसके पर्यायवाचक शब्द हैं। १०।

टिप्पणी—सम्प्राप्ति रोग के उत्पन्न होने फैलने के विषय में कैसे हुआ यह बतलानेवाली है 'दोषों के व्यापार से उपलक्षित व्याधि का जन्म संप्राप्ति है'। यथा 'दोषेतिकर्तव्यतोपलक्षति व्याधिजन्म' यह चिकित्सा के कार्य में विशेष सहायक है जैसे ज्वर में आमाशय के दूषित होने; अग्नि नाश

होना आदि कार्य ज्ञात होने पर लंघन, पाचन, स्वेदन करना आदि चिकित्सा में लाभदायक ज्ञान भी हो जाता है।

संप्राप्ति के भेद

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ११
दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेःप्राधान्यमादिशेत् १२
हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।
नक्तं दिनर्तु भुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल, ये विशेषतः संप्राप्ति के भेद हैं। जैसे आगे कहेंगे कि ज्वर आठ प्रकार के हैं। यह ज्वर के भेदों की संख्या है, उनकी संप्राप्ति का निश्चय करना संख्या-संप्राप्ति कहलाती है। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् दोष की अधिकता और न्यूनता तथा सम्मिलित दोषों में कौन दोष अधिक है, कौन मध्यम और कौन दोषहीन है, इसके निश्चय करने को विकल्प-संप्राप्ति कहते हैं। ऐसे ही जो स्वतन्त्र रोग हो वह प्रधान रोग और जो उस स्वतन्त्र रोग के अधीन हो वह परतंत्र रोग कहाता है। जैसे ज्वर के कारण जो तृषा आदि रोग उत्पन्न हुए हों वे ज्वर के अधीन होने से परतन्त्र हैं और ज्वर प्रधान रोग है। इस प्रधानता और परतंत्रता के निश्चय करने को प्राधान्य-संप्राप्ति कहते है। हेतु, पूर्वरूप और रूप, ये सम्पूर्ण हैं अथवा कुछ अंशों में, इस परीक्षा से रोग की सबलता और निर्बलता के निश्चय करने को बल-संप्राप्ति कहते हैं। काल से संप्राप्ति का निश्चय करने को काल-संप्राप्ति कहते हैं। रात, दिन, ऋतु और भोजन के जिस अंश में जिस दोष का प्रकोप बताया गया है, उस अंश में उस दोष के प्रकोप से रोग की वृद्धि या हानि देखकर निश्चय करना काल-संप्राप्ति है। ११-१३।

टिप्पणी—सम्प्राप्ति के भेद जानना चिकित्साकार्य में सुविधा के लिए

ही है, संख्या-संप्राप्ति से प्रधान रोग के उपभेद का ज्ञान होता है जिससे चिकित्सा में सुविधा रहती है ज्वरमात्र ज्ञान पर्याप्त नहीं है वातज्वर है या पित्तज्वर दोनों की चिकित्सा में अन्तर है। विकल्प-संप्राप्ति से दोषों का बलाबल मालूम होता है वह भी चिकित्सा की सुविधा के लिए ही है। प्राधान्य-सम्प्राप्ति अनेक रोगों में प्रधान रोग कौन है इसका निश्चय कराती है इससे भी चिकित्सा की सुविधा रहती है जैसे जहाँ ज्वर और अतिसार दोनों हों वहाँ प्रधान रोग की चिकित्सा करने से ही लाभ होता है।

इसी प्रकार बल और काल-संप्राप्ति भी चिकित्सा में ही सहायक हैं।

निदानपंचक का उपसंहार

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते।

इस प्रकार हमने यह निदान का अर्थ कहा, अर्थात् संक्षेप में निदान शब्द का विवरण किया। अब आगे इस सम्पूर्ण ग्रंथ में प्रत्येक रोग का निदान (निदानपंचक, निदानपूर्वरूप, रूप आदि) विस्तार के साथ कहेंगे।

दोष ही सब रोगों के कारण हैं:—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ १४ ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्।

कुपित हुए वातादि दोष[1] ही सब रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं और विविध अपथ्यों का सेवन ही दोषों के प्रकोप का कारण है। अतएव कोई रोग दोष के प्रकोप के बिना नहीं होता। १४।

---

१. रात-दिन और ऋतु आदि में दोषों का प्रकोप इस प्रकार होता है। दिन तथा रात्रि के आदि में कफ, मध्य में पित्त और अन्त में वायु कुपित होता है। वर्षाऋतु में वायु, शरद्ऋतु में पित्त और वसन्त में कफ कुपित होता है। इसी प्रकार भोजन करने पर कफ, भोजन पचने के समय पित्त और भोजन पच जाने पर वायु कुपित होता है। वाग्भट ने कहा है—"ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके। वसन्ते तु कफः कुप्येदेषा प्रकृतिरार्त्तवी ॥"

टिप्पणी—रोग की उत्पत्ति के दो कारण होते हैं एक विप्रकृष्ट, दूसरा सन्निकृष्ट। विप्रकृष्ट कारण तो विपरीत आहार, विहार और सन्निकृष्ट कारण दोष ही होते हैं। आगन्तुज व्याधि में व्याधि की उत्पत्ति से पहले दोष का प्रकोप नहीं होता किन्तु व्याधि उत्पन्न होते ही दोष कुपित हो जाते हैं, आचार्य चरक ने कहा है—"आगन्तुर्हि व्यथा पूर्वं समुत्पन्नो जघन्यं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमापादयति।

(च० सू० स्था० अ० २०)

एक रोग से अन्य रोग की उत्पत्ति

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युजायते ॥ १५ ॥
तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ।
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां शोषश्चाप्युपजायते ॥ १६ ॥
प्लीहाभिवृद्धया जठरं जठराच्छोथ एव च ।
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ १७ ॥
(दिवास्वापादिदोषैश्च प्रतिश्यायश्च जायते ।)
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ।
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ १८ ॥
ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ।

दोषों के अतिरिक्त एक रोग भी दूसरे रोग की उत्पत्ति का कारण होता है। जैसे ज्वर की ऊष्मा से रक्तपित्त, रक्तपित्त से ज्वर तथा ज्वर और रक्तपित्त से शोष उत्पन्न होता है। प्लीहा की वृद्धि होने से उदररोग, उदररोग से शोथ तथा अर्श से उदररोग और गुल्म की उत्पत्ति होती है। दिन में सोने आदि कारणों से जुकाम, जुकाम से खाँसी, खाँसी से क्षय (धातुक्षय) होता है। यह धातुक्षय शोषरोग (यक्ष्मा) को उत्पन्न कर देता है। ज्वर आदि रोग पहले स्वतंत्र उत्पन्न होते हैं, पश्चात् दूसरे रोगों की उत्पत्ति के कारण हो जाते हैं। १५–१८।

टिप्पणी—जो रोग रोग को उत्पन्न करनेवाले होते हैं वे तब तक अन्य रोग को उत्पन्न नहीं कर सकते जब तक असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग आदि

से बलवान् नहीं हो जाते हैं अतः सभी रोग सदैव अन्य रोग को उत्पन्न नहीं करते हैं।

रोग से उत्पन्न रोग की विचित्रता

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥ १९॥
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ।
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यन्ते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

कोई रोग तो दूसरे रोग का कारण होकर शान्त हो जाता है, और कोई ऐसा भी होता है जो अन्य रोग उत्पन्न कर देता है और स्वयं भी बना रहता है। इस प्रकार से अन्यान्य रोगों का कष्टसाध्य सम्मेलन मनुष्यों में देखा जाता है। १९-२०।

टिप्पणी—ऊपर लिखित प्रकार से कई व्याधियाँ ऐसी ही मिलित दिखाई देती हैं जैसे प्रतिश्याय में प्रतिश्याय के अच्छे हुए बिना ही खाँसी और हो गई, अर्श में उदररोग और हो गया।

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुद्धताम् ।
ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥२१॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने पञ्चनिदानलक्षणं समाप्तम्। १।

इसलिए ज्वर आदि रोगों का जो विनिश्चय (निदानपंचक) हम आगे कहेंगे उसे अपने कार्य में सफलता चाहनेवाले सद्वैद्यों को बड़े यत्न से समझना चाहिए। २१।

ज्वरनिदान

ज्वर की उत्पत्ति

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससंभवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ १ ॥

दक्ष के यज्ञ में अपमान होने से भगवान् रुद्र को बड़ा क्रोध आया। उसी समय उनकी श्वास की वायु से ज्वर की उत्पत्ति हुई। वह ज्वर आठ प्रकार का है—वातज, पित्तज, कफज, वात-पित्तज, वात-कफज, कफ-पित्तज, सन्निपातज और आगन्तुज । १ ।

टिप्पणी—पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि महादेव रुद्र की पत्नी दक्ष की कन्या सती थीं, दोनों का विरोध होने पर दक्ष ने अपने यज्ञ में महादेवजी को निमंत्रित नहीं किया। सतीजी महादेवजी से आज्ञा लेकर उस यज्ञ में विना बुलाये भी गईं; किन्तु वहाँ शिवजी का अपमान देखकर प्राण त्याग दिये। इसे सुनकर क्रोधित होकर महादेवजी ने तीव्रश्वास छोड़ी, इससे ज्वरोत्पत्ति हुई। कुछ विद्वान् इस पौराणिक कथा का ऐतिहासिक अर्थ करते हैं कि इन नामों के दो राजा प्राचीन काल में हुए और इस प्रकार की घटना भी घटी। जब दोनों में घोर युद्ध हुआ तब युद्ध में प्रयुक्त हुए अस्त्र-शस्त्रों के विषाक्त होने के कारण उनके प्रभाव से जलवायु आदि में दोष उत्पन्न होकर ज्वर नामक व्याधि की उत्पत्ति हुई।

उपर्युक्त दोनों कथाओं का चिकित्सा-कार्य में कोई उपयोग नहीं है; किन्तु इस श्लोक का यह आशय चिकित्सासंगत प्रतीत होता है। ज्वर की क्रोध से उत्पत्ति होने का भाव है। ज्वर तेजस (आग्नेय) होता है। जैसे चरकसंहिता में कहा है—'क्रोधात्पित्तम् (च० चि० स्था० अ० ३) क्रोध से पित्त उत्पन्न होता है।' वाग्भट ने भी कहा है, ऊष्मा पित्त के विना नहीं होती और ज्वर ऊष्मा के विना नहीं होता, इसलिए पित्तविरोधी (पित्तकारक) पदार्थ ज्वर में छोड़ देने चाहिए विशेषतः पित्तज्वर में तो अवश्य ही त्याग देना चाहिए। यथा—'ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना। तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् । (वा० चि० स्था० अ० १) इसीलिए आचार्य चरक ने चरपरे, खट्टे, नमकीन, रसप्रधान पाचनों को छोड़कर कड़ुवे रसवाले पाचन को ही ज्वर में पाचन के लिए प्रयुक्त किया है, क्योंकि चरपरे, खट्टे, नमकीन रसवाले पाचन पित्तकारक और तिक्त रसवाला पित्तनाशक होता है।

ज्वर की संप्राप्ति

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥२॥

अहितकर आहार-विहार करने से आमाशय में स्थित वात, पित्त और कफ तीनों दोष कुपित होकर कोष्ठ की अग्नि की ऊष्मा को बाहर निकालकर रस को दूषित करके ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। २।

टिप्पणी—मिथ्या आहार वह है जो असमय में अधिक मात्रा में अननुकूल (प्रकृति के विपरीत) संयोग-विरुद्ध आहार किया जाय। आचार्य विजयरक्षित प्रकृत आदि आहार उपयोग हेतुओं के विरुद्ध उपयोग को मिथ्याहार मानते हैं। चरकाचार्य ने आठ प्रकार की आहार-विधि कही है—(१) प्रकृति से द्रव्यों की स्वाभाविक गुरुता और लघुता ग्रहण की जाती है। जैसे उड़द और मूँग में स्वभावतः पहला गुरु है और दूसरा लघु है। (२) करण से संस्कार (पकाना) ग्रहण किया जाता है जैसे व्रीहि चावल जो गुरु होते हैं लाजा (खील) बना लेने पर हलके हो जाते हैं। (३) संयोग से दो या अधिक द्रव्यों के मेल को ग्रहण किया है। जैसे दूध और मछली मिलकर त्याज्य हो जाती है। (४) राशि से द्रव और अद्रव पदार्थ तथा मात्रा का ग्रहण किया जाता है। कोई चीज अधिक मात्रा में अपथ्य हो जाती है। (५) देश से द्रव्य की उत्पत्ति और रीति-रिवाजों को ग्रहण किया जाता है। जैसे जो वस्तु मद्रास में पथ्य है वह पंजाब में अपथ्य हो जाता है। (६) काल से ऋतुएँ और बाल, युवा, वृद्ध अवस्था ग्रहण की जाती है। जैसे शीतकाल में जो आहार पथ्य है वह ग्रीष्म में अपथ्य। बाल या युवावस्था में जो आहार हितकर है वह वृद्धावस्था में नहीं हो सकता। (७) उपयोग संस्था द्रव्यों के सेवन करने के नियमों को कहते हैं, इनके विरुद्ध आचरण भी मिथ्या आहार है। (८) उपयोक्ता से आशय आहार करनेवाले से है।

मिथ्या विहार से आशय है शक्ति के अनुसार कार्य न करना। कम या अधिक या असमय भी इसी में आ जाता है।

इस श्लोक में वर्णित सम्प्राप्ति शारीरिक ज्वर में होती है। आमाशय में दोष शारीरिक ज्वर में ही प्राप्त होते हैं। आगन्तुज ज्वर में तो पहिले व्यथा होती है फिर अनुबन्ध रूप से वातादिदोषों की विषमता होती है। आचार्य सुश्रुत ने कहा है—श्रम, क्षत और अभिघात से शरीरधारियों में वायु कुपित होकर सब शरीर में फैल जाता है, इससे ज्वर होता है। यथा—

"श्रमघाताभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः।
पूरयित्वाऽखिलं देहं ज्वरमापादयेद्भृशम्।
(सु० उ० अ० ३९)

इसमें ज्वर आमाशयगत वायु से नहीं प्रत्युत ऊपर नीचे और तिरछे स्रोतों में चलते हुए वायु से होता है। आचार्य चरक ने कहा है—"अभिघात से उत्पन्न वायु रक्त को दूषित करता हुआ पीड़ा, शोथ और विवर्णता के साथ ज्वर को उत्पन्न करता है।" यथा—

"तत्राभिघातजो वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
स व्यथाशोथवैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरम्॥"

ज्वर के सामान्य लक्षण

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते॥ ३॥

पसीना न आना, अथवा अग्नि का दोषयुक्त होना, (अग्नि का अवरोध), संताप (देह, इन्द्रिय और मन में ताप होना), सब अंगों में पीड़ा होना, ये सब लक्षण एक साथ जिस रोग में हों उसे ज्वर कहते हैं। ३।

टिप्पणी—संताप शब्द देह, इन्द्रिय और मन तीनों के ताप के लिए आता है। आचार्य चरक ने ज्वर को स्पष्ट तीनों को तपानेवाला बतलाया है। बेचैनी, पीड़ा और ग्लानि ये तीन मानसिक ताप के लक्षण कहे हैं। एक साथ सब लक्षण मिलने पर ही ज्वर कह सकते हैं; क्योंकि स्वेद न आना तो कुष्ठ का पूर्वरूप होता है तथा सन्ताप, दाह रोग में होता है। मगर साथ-साथ होने से ज्वर के लक्षण प्रमाणित होते हैं।

स्वेदावरोध का अर्थ पसीना न आना के स्थान पर 'स्विद्यते अनेन' से अग्नि का अवरोध अर्थात् दोषों का व्याप्त होना ही उचित है। क्योंकि पित्तज्वर में स्वेद आते हैं जो इस लक्षण के विपरीत हैं।

ज्वर के (सामान्य) पूर्वरूप

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥ ४॥

जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ ५ ॥

थकावट मालूम होना, किसी काम में मन न लगना, शरीर मलिन हो जाना, मुँह का स्वाद खराब मालूम होना, आँसू आना, सर्दी गर्मी और वायु की कभी इच्छा होना और कभी इनसे कष्ट होना, जँभाई आना, अंगों का टूटना, देह में भारीपन मालूम होना, रोमांच होना, खाने की इच्छा न होना, तम (अँधेरे में घुसा हुआ व्यक्ति कुछ नहीं जानता ऐसा भाव मालूम देता हो), चित्त प्रसन्न न रहना, सर्दी लगना, ये सब लक्षण ज्वर के सामान्य पूर्वरूप हैं। इन लक्षणों से समझना चाहिए कि ज्वर आनेवाला है। ४-५।

विशिष्ट पूर्वरूप

(सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत् ॥ ६ ॥
रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ।
सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ ७ ॥)

(अब विशिष्ट पूर्वरूप (किस दोष के कारण ज्वर आनेवाला है उसे) कहते हैं। वातज ज्वर में पहले जँभाई बहुत आती है, पित्तज ज्वर में आँखों में जलन होती है और कफज ज्वर में खाने की इच्छा नहीं होती। यदि दो दोषों के लक्षण मिलते हों तो द्वन्द्वज और तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो सन्निपातज ज्वर का पूर्वरूप समझना चाहिए। ६-७।)

वातज्वर के लक्षण

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥८॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्मानं जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९॥

देह में कँपकँपी, ज्वर का वेग कभी अधिक कभी कम, गला और होठ का सूखना, नींद का न आना, छींक का रुकना, देह में रूखापन सिर, हृदय और देह में पीड़ा, मुँह का स्वाद खराब होना, मल का सूख जाना, पेट में पीड़ा और अफरा होना, जँभाई आना, ये लक्षण वातज्वर में होते हैं। ८-९।

पित्तज्वर के लक्षण

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥१०॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥११॥

ज्वर का वेग तीक्ष्ण होना, पतले दस्त आना, नींद कम आना, वमन होना, गला, होठ, मुख और नाक का पक जाना, पसीना आना, व्यर्थ बकना, मुँह में कड़ुवापन होना, बेहोशी आना, देह में जलन, नशा-सा चढ़ा रहना, प्यास अधिक लगना, मल-मूत्र और नेत्र पीले हो जाना, चक्कर आना, ये लक्षण पित्तज्वर में होते हैं। १०-११।

कफज्वर के लक्षण

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥
(नात्युष्णगात्रता छर्दिरङ्गसादोऽविपाकिता ।)
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
[स्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको लवणास्यता ।
नात्युष्णगात्रता च्छर्दिर्लालास्रावोऽविपाकता ॥]
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता १३

देह में मानों गीला कपड़ा लपेट दिया गया है ऐसा मालूम

देता हो। ज्वर का मन्द वेग, आलस्य, मुँह में मीठापन, मल-मूत्र सफ़ेद, देह जकड़ गई हो, पेट भरा हुआ मालूम हो (शरीर अधिक गर्म नहीं होता, वमन, शरीर में पीड़ा, भोजन नहीं पचता), देह भारी मालूम हो, सर्दी लगे, उबकाई आवे, रोमांच हो, नींद बहुत आवे, रसवाहिनी नाड़ियों में रुकावट हो, देह में कुछ कम पीड़ा हो, मुँह में पानी भरकर गिरता हो और मुँह का स्वाद नमकीन हो, देह बहुत कम गर्म हो, अन्न का परिपाक ठीक न हो, जुकाम रहे, खाने की इच्छा न हो, खाँसी आवे, आँखें सफ़ेद हों, ये लक्षण कफज्वर में होते हैं[1]। १२—१३।

वात-पित्तज्वर के लक्षण

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः॥ १४॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः।

प्यास बहुत लगे, बेहोशी हो, भ्रम (चक्कर) और दाह हो, नींद न आवे, सिर में पीड़ा हो, मुँह और गला सूखे, बहुत थूके, रोमांच हो, खाने की इच्छा न हो, आँखों के सामने अँधेरा छाया हो, जोड़ों में दर्द हो, जँभाई आवे, ये सब लक्षण वात-पित्तज्वर के हैं। १४।

वात-कफज्वर के लक्षण

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च॥१५॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम्।
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः॥ १६॥

देह गीले कपड़े से पोंछी-जैसी मालूम हो, जोड़ों में दर्द हो, नींद बहुत आवे, देह भारी मालूम हो, सिर में पीड़ा हो, नाक

१—श्लेष्मज्वर के लक्षण में बहुत सा पाठ सब ग्रन्थों में न मिलने से तथा पुनरुक्त होने के कारण ठीक नहीं मालूम देता है, अतः उसे कोष्ठकों में बन्द कर दिया है। यही क्रम आगे भी रहेगा।

बहे, खाँसी आवे, अकस्मात् सब शरीर में पसीना निकले, देह में ऊष्मा हो, ज्वर का वेग मध्यम हो, ये लक्षण वात-कफज्वर के हैं। १५—१६।

कफ-पित्तज्वर के लक्षण

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥१७॥

मुँह का स्वाद कड़ुवा और मुँह में कफ लिसा हुआ मालूम हो, तन्द्रा, मूर्च्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, कभी गरमी और सरदी मालूम हो, ये लक्षण कफ-पित्तज्वर के हैं। १७।

सन्निपातज्वर के लक्षण

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा ।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥१८॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः॥१९॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् ।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥२०॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ २१ ॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम् ।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥२२॥
मूकत्वं स्रोतसां कोपा गुरुत्वमुदरस्य च ।
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥२३॥

क्षण भर में गर्मी और क्षण भर में सर्दी मालूम हो, हड्डियों

और जोड़ों में पीड़ा हो, आँखें लाल, मैली, आँसुओं से भरी हुई और पुतली चढ़ी हुई हों, कानों में शब्द और पीड़ा हो, गले में जौ के काँटे से गड़ते हों, तन्द्रा, मूर्च्छा और अनाप-शनाप बकना, खाँसी, श्वास, भोजन में अरुचि, भ्रम, जीभ काली और खरदरी हो, सब अंगों में शिथिलता हो, रोगी रक्त, पित्त और कफ मिला हुआ थूकता हो, सिर हिलाता हो, प्यास लगती हो, नींद न आती हो, हृदय में पीड़ा हो, पसीना और मल-मूत्र विलम्ब से थोड़ा-थोड़ा आता हो, अंगों में बहुत कृशता न हो, गले में निरन्तर शब्द होता हो, लाल और काले मंडल (चकत्ते) निकल आवें जो कभी प्रकट हो जायँ कभी छिप जायँ । रोगी बहुत कम बोले, अथवा बोले ही नहीं, मुख, नाक और कान पक जायँ, पेट भारी हो जाय और दोष देर से पकें, ये सब लक्षण सन्निपातज्वर में होते हैं । १८—२३ ।

असाध्य सन्निपातज्वर के लक्षण

दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा २४

वातपित्त कफ दोष जकड़े हुए हों (मलबद्धता हो, ऐसा अर्थ भी ग्रहण करते हैं), अग्नि नष्ट हो गई हो, सब लक्षण पूरे प्रकट हो गये हों तो सन्निपातज्वर असाध्य हो जाता है । यदि ये लक्षण संपूर्ण न हों तो कष्टसाध्य सन्निपातज्वर[1] समझना चाहिए । असाध्य और कष्टसाध्य कहने से ज्ञात हुआ कि यह ज्वर सुखसाध्य नहीं होता । २४ ।

---

१. सन्निपातज्वर की चिकित्सा करना मृत्यु से युद्ध करने के समान है । जो वैद्य इसमें विजय पाता है वह सब रोगों को जीत सकता है । कहा भी है—"मृत्युना सह योद्धव्यं संनिपातं चिकित्सता । यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमय-संकुले ॥ संनिपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति"—इति ।

(सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ।
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ १ ॥
सप्तमी द्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा ।
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ २ ॥)

वात की अधिकता में सातवें दिन, पित्त की अधिकता में दसवें दिन और कफ की अधिकता में बारहवें दिन सन्निपातज्वर बहुत बढ़कर शान्त हो जाता है अथवा रोगी को मार डालता है। किसी आचार्य ने इसकी अवधि इस प्रकार बताई है—वात की उल्बणता में ७ अथवा १४ दिन, पित्त[1] की उल्बणता में ९ अथवा १८ दिन और कफ की उल्बणता में ११ अथवा २२ दिन इस ज्वर की अवधि है। इस अवधि में रोगी रोगमुक्त हो जाता है अथवा मर जाता है। १-२।

टिप्पणी—ये श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं क्योंकि कई प्रतियों में नहीं हैं और न आचार्य विजयरक्षित ने टीका की है; किन्तु उपयोगिता के कारण यहाँ ग्रहण किये हैं। यह मर्यादा धातुपाक और मलपाक के कारण परिणाम दिखाती है। धातुपाक होने पर मृत्यु हो जाती है, मलपाक होने पर अच्छा हो जाता है। यह पाक रोगी के कर्मानुसार होते हैं कोई प्रयत्न-साधक नहीं हैं। धातुपाक के लक्षण—निद्रानाश, हृदय का जकड़ना, विष्टम्भ, गुरुता, अरुचि, पीड़ा, बलहानि। मलपाक के लक्षण—जिस भाव में जाकर दोष ने रोग उत्पन्न किया हो उससे विपरीत होना, ज्वर और शरीर का हलका होना, इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के ग्रहण में समर्थ होना।

सन्निपातज्वर के उपद्रव

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥२५॥

सन्निपात ज्वर के अन्त में किसी-किसी को कान के नीचे दारुण शोथ

---

१. भावप्रकाश में पित्त की उल्बणता में १० अथवा २० दिन और कफ की उल्बणता में १२ अथवा २४ दिन कहा है।

हो जाता है, वह असाध्य होता है। इसमें शायद ही कोई रोगी जीवित बचता हो। २५।

अभिन्यासज्वर की संप्राप्ति और लक्षण

(त्रयः प्रकुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगामिनः ।
आमाभिवृद्ध्या ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोगताः ॥१॥

जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम् ।
श्रुतौ नेत्रे प्रसुप्तिःस्यान्न चेष्टां काञ्चिदीहते ॥२॥

न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने ।
न घ्राणं न च संस्पर्शं शब्दं वा नैव बुध्यते ॥३॥

शिरो लोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति ।
कूजति तुद्यते चैव परिवर्तनमीहते ॥४॥

अल्पं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते ।
प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठःकश्चिदेवात्र सिध्यति ॥५॥)

(कुपित हुए तीनों दोष उरःस्रोत (छाती अर्थात् फेफड़ों के स्रोत) में प्राप्त होकर, आमरस की वृद्धि से ग्रथित होकर तथा (बुद्धिवाही, इन्द्रियवाही, मनोवाही स्रोतों—कर्ण, नेत्र, नासा, त्वचा, जिह्वा—और मन) में प्राप्त होकर महाभयानक अभिन्यास ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। तब ये उपद्रव होते हैं – कान और आँखें शून्य हो जाती हैं, रोगी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करता, उसको दृष्टि देखने में असमर्थ हो जाती है और घ्राण-शक्ति नष्ट हो जाती है, स्पर्श का ज्ञान नहीं रहता, शब्द सुनने और समझने की भी शक्ति नहीं रहती। वह बार-बार सिर हिलाता है, खाने की इच्छा नहीं करता। गले में घुरघुराहट होती है। सुई चुभने की-सी पीड़ा होती है। करवट लेना चाहता है। किसी समय कुछ बोलता है (अथवा कुछ भी नहीं बोलता) इस त्रिदोषज्वर को अभिन्यास

कहते हैं। यह असाध्य होता है, इसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। इसमें शायद ही कोई रोगी बचता हो। (१-५।)

आगन्तुज्वर के लक्षण

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २६ ॥
श्यावास्यता विषकृते तथाऽतीसार एव च।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ २७ ॥

औषधगन्धज्वर के लक्षण

ओषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः।
कामजे[1] चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम् ॥२८॥
(हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति।)
भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः।
अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥२९॥
भूताभिषङ्गादुद्वेगो[2] हास्यरोदनकम्पनम्।

चोट लगने से, अभिचार अर्थात् मारण-मोहन आदि मन्त्रों के प्रभाव से, किसी के शाप से अथवा शोक, भय और काम के वेग से वातादि दोष कुपित होकर ज्वर उत्पन्न कर देते हैं, उसका नाम आगन्तुज्वर है। जिस कारण से आगन्तुज्वर हुआ हो उस कारण से कुपित होनेवाले दोष को समझना चाहिए। ये दोष ज्वर उत्पन्न होने के बाद कुपित होते हैं।

विषजन्य ज्वर के लक्षण—चेहरा सफेदी लिए काला पड़ जाता है, पतले दस्त होते हैं, खाने की इच्छा नहीं होती, प्यास बहुत लगती है, शरीर में सुई चुभने के समान पीड़ा होती है और मूर्च्छा आती है।

---

१. काम, भय, शोक, क्रोधज्वर (Pyrexia of emotions, Fever)
२. भूताभिषङ्गज्वर (Fever of Evil Spirits)।

औषधगन्धजन्य ज्वर के लक्षण—किसी तीक्ष्ण ओषधि की गन्ध से जो ज्वर होता है, उसमें मूर्च्छा, सिर में पीड़ा, वमन और छींकें आती हैं।

कामजन्य ज्वर के लक्षण—काम के वेग से जो ज्वर होता है, उसमें चित्तविभ्रंश (मन में अस्थिरता, स्मृति-बुद्धिनाशः और शोक भ्रम आदि), तन्द्रा, आलस्य और भोजन में अरुचि होती है। (हृदय में पीड़ा होती है और देह सूख जाती है)।

भय और शोकजन्य ज्वर—भय से जो ज्वर आता है उसमें रोगी बकता बहुत है। क्रोध से ज्वर आने पर प्रलाप और देह में कँपकँपी होती है। अभिचार अभिशापजन्य ज्वर—मारण-मोहन आदि मंत्रों के प्रभाव से अथवा किसी के शाप से जो ज्वर आता है, उसमें बेहोशी होती है और प्यास बहुत लगती है।

भूताभिषंगज ज्वर के लक्षण—भूतावेश से जो ज्वर आता है, उसमें रोगी बहुत घबराता है, कभी हँसता है और कभी रोता है और देह में कँपकँपी भी होती है। २६—२९।

आगंतुज्वर में दोषों का अनुबन्ध

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः॥ ३०॥
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः।

काम, शोक और भय से वायु, क्रोध से पित्त और भूत के आवेश से तीनों दोष कुपित होते हैं। जो दोष कुपित होता है उसके सामान्य लक्षण प्रकट होते हैं। (भूत-सामान्यलक्षण उन्माद-निदान में कहेंगे)। ३०-३१।

विषमज्वर की संप्राप्ति

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः॥३१॥
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्।
(सन्ततः सततोऽन्येद्यु स्तृतीयकचतुर्थकौ।)

ज्वर से मुक्त हुए मनुष्य के अल्प दोष अवशिष्ट रह जाने से,

अहित आहार-विहार करने पर वह दोष बढ़कर, रस-रुधिर आदि किसी धातु में व्याप्त होकर विषमज्वर कर देता है। (किसी-किसी को आरम्भ से ही विषमज्वर होता है वह बहुत खराब है)। (विषम-ज्वर पाँच प्रकार का होता है—सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चतुर्थक)।

टिप्पणी—जो ज्वर अनियमित समय पर सर्दी लगकर या गर्मी लगकर आये और जिसका वेग भी विषम हो उसको विषमज्वर कहते हैं। यह सामान्य लक्षण है।

धातुगत ज्वरों के नाम

सन्ततं रसरक्तस्थः, सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥३२॥
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि, त्वस्थिमज्जगतः पुनः।
कुर्याच्चतुर्थकं घोरमन्तकं रोगसंकरम् ॥३३॥

रस और रुधिर में प्राप्त हुए ज्वर को सन्तत और सतत ज्वर कहते हैं, अर्थात् रस में प्राप्त ज्वर सन्तत और रुधिर में प्राप्त ज्वर सतत कहलाता है। मांसगत ज्वर दूसरे दिन आता है, उसे अन्येद्यु ज्वर कहते हैं। मेदोगत ज्वर तीसरे दिन आता है, उसे तृतीयक ज्वर कहते हैं और अस्थिमज्जागत ज्वर चौथे दिन आता है, उसे चतुर्थक ज्वर कहते हैं। चतुर्थक ज्वर बड़ा कठिन होता है, उससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा वह मृत्यु के समान भयानक होता है। ३२-३३।

सन्ततज्वर की संप्राप्ति

(स्रोतोभिर्विसृता दोषा गुरवो रसवाहिभिः।
सर्वदेहानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ॥)

सन्ततज्वर के लक्षण

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥३४॥

सततकज्वर के लक्षण

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ।

अन्येद्युष्कज्वर के लक्षण

अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्र एककालं प्रवर्तते ॥३५॥

तृतीयक और चतुर्थक के लक्षण

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि, चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ।
केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥३६॥

(सम्पूर्ण शरीर में विचरनेवाले वातादि दोष जब अपने कारणों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं तो रसवाहिनी नाड़ियों द्वारा रस के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर में फैलकर तथा स्तब्ध होकर सन्तत ज्वर उत्पन्न कर देते हैं)। यह ज्वर निरन्तर बना रहता है, अवधि से पहले नहीं उतरता, इसीसे इसका नाम सन्तत है। यह सात दिन, दस दिन, अथवा बारह दिन तक लगातार बना रहता है। एक दोष के विकार से अथवा दो दोषों के विकार से यह ज्वर होता है तो सुख-साध्य होता है। सततज्वर दिन में दो बार अथवा रात्रि में दो बार, या दिन में एक बार और रात्रि में एक बार आता है। अन्येद्युज्वर दिन-रात में किसी समय एक बार आता है। तृतीयक-ज्वर तीसरे दिन एक बार और चतुर्थक ज्वर चौथे दिन एक बार आता है। कोई-कोई आचार्य भूतावेश से विषम ज्वर की उत्पत्ति कहते हैं। ३४-३६।

टिप्पणी—सन्ततज्वर की सात दिन की अवधि क्रमशः वात, पित्त और कफ आदि दोषों की अधिकता से है। आचार्य खरनाद इसे लगातार रहने के कारण विषमज्वर नहीं मानते हैं, किन्तु आचार्य चरक कहते हैं कि यह बारहवें दिन शान्त होकर फिर अस्फुट लक्षणोंवाला बहुत दिन तक कठिनता से शान्त होनेवाला होकर रहता है अतः विषम ही है। सततज्वर के दिन के पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और रात्रि के प्रदोष, अर्द्धरात्रि और अन्तिम प्रहर इस प्रकार ६ समय हैं और इन समयों में जिस दोष का

समय है उसी की प्रबलता से उसी समय होता है। सन्ततज्वर धातुपाक होने से रोगी को मार देता है। मलपाक होने से रोगी अच्छा हो जाता है।

तृतीयक और चतुर्थक के लक्षण

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥३७॥

चतुर्थको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः।
जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसंभवः ३८

तृतीयक ज्वर तीन प्रकार का होता है। कफ और पित्त के विकार से जो तृतीयक ज्वर होता है उसमें पहले कमर में त्रिक (तीन हड्डी जहाँ मिलती है) स्थान पर पीड़ा होती है, उसके बाद ज्वर चढ़ता है। वात और कफ के विकार से जो ज्वर होता है, उसमें पीठ में पहले पीड़ा होती है। और वात पित्तवाले तृतीयक में सिर में पहले पीड़ा होती है। चतुर्थक ज्वर दो प्रकार का अपना प्रभाव दिखाता है। जब कफ के विकार से होता है तो जाँघों में पीड़ा, और वात के विकार से होता है तो सिर में पीड़ा होती है, पीड़ा इन स्थानों से आरम्भ होकर देह भर में फैल जाती है। ३७-३८।

टिप्पणी—कुछ आचार्यों का मत है कि चतुर्थक ज्वर में पित्त का विकार नहीं होता, (जैसे पैत्तिक गलगण्ड नहीं होता) किन्तु इस बात से सब आचार्य सहमत नहीं हैं। बहुतों का कहना है कि चतुर्थक ज्वर पित्तज भी होता है। आचार्य हारीत और भेड़ पैत्तिक चतुर्थक स्वीकार करते हैं और नागभर्तृ तो उसका स्थान भी पूर्व मध्यकाय बतलाते हैं। किन्तु आचार्य चरक प्रायः वात और कफोल्वणता से होने के कारण पित्त-प्रभाव का विवरण नहीं बतलाते हैं। तृतीयक में त्रिक के वात स्थान होने से उसमें गये हुए पित्त और कफ दूसरे के स्थान में ठहरने के कारण दुर्बल होने से तीसरे दिन वेग करते हैं और यदि वे स्वस्थान पर हों तो सन्ततज्वर ही होगा। सतत विषमज्वर दोष का प्रकोपक समय तथा शेष अपने-अपने कफ-स्थान से आमाशय में पहुँचने का समय चाहते हैं; क्योंकि उनके दोष वेग के तत्काल बाद अपने-अपने स्थान पर आ जाते हैं अतः सर्वदा सतत आदि नहीं होते हैं।

चतुर्थक विपर्यय

विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः ।
स मध्ये ज्वरयत्यह्नी ह्यादावन्ते च मुञ्चति ॥ ३९ ॥

चतुर्थक ज्वर जब आदि में एक दिन छोड़कर दो दिन रहता है और चौथे दिन नहीं आता तब उसे चतुर्थकविपर्यय ज्वर कहते हैं, यह भी एक प्रकार का विषमज्वर है । ३९ ।

टिप्पणी—चतुर्थकज्वर के विपर्यय के समान ही सतत अन्येद्यु तृतीयक का विपर्यय भी होता है। यह दोषों के प्रकोप और स्थानगमन के कारण ही होता है ।

वातबलासक

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति ।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥४०॥

वातबलासक नाम का एक प्रकार का ज्वर होता है। इसका वेग मन्द होता है और ज्वर निरन्तर बना रहता है। देह में शोथ, पीड़ा और रूक्षता होती है । अंग जकड़ जाते हैं । कफ की वृद्धि होती है । ४० ।

टिप्पणी—बलासक कफ का नाम है। वात और कफ के विकार से यह ज्वर होता है इसी से इसका नाम वातबलासक है। यह प्रायः उपद्रव रूप में होता है।

प्रलेपक ज्वर

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ।
मन्दज्वरविलेपी च सशीतः स्यात्प्रलेपकः ॥४१॥

स्वेद या ऊष्मा से तथा भारीपन से शरीर के अंगों को लीपनेवाला मन्दज्वर विलेपी कहलाता है, जब यह शीतयुक्त होता है तो प्रलेपक कहलाता है । ४१ ।

टिप्पणी—यह कफपित्तजन्य होता है, भारीपन और ठंडे पसीने से शरीर लिपा हुआ सा मालूम देता है, यह ज्वर यक्ष्मा में होता है ।

विषमज्वर के विशेष भेद

अर्द्धाङ्ग-ज्वर

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ।
तेनार्धं शीतलं देहे चार्धं चोष्णं प्रजायते ॥ ४२ ॥
काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ।
तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ४३ ॥
काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् ।
शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥४४॥

अब अन्य प्रकार के विषमज्वर कहते हैं—अन्नरस के विदग्ध होने पर कफ और पित्त के क्रमशः स्थित होने पर आधी देह शीतल और आधी देह उष्ण रहती है। ४२ । जब कोष्ठ में पित्त दूषित होता है और हाथ-पैरों में कफ दूषित हो जाता है तो देह में उष्णता और हाथ-पैरों में शीतलता रहती है। ४३। यदि कोष्ठ में कफ और हाथ-पैरों में पित्त दूषित होता है तो हाथ-पैर गर्म और सब अंग शीतल रहते हैं। यह दोषों के प्रभाव से ही होता है और प्रत्येक विषमज्वर में हो सकता है। ४४।

शीतादिज्वर

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥४५॥

त्वचा (त्वचा में स्थित रस) में कफ और वायु के दूषित होने पर ज्वर के आदि में सरदी मालूम होती है। फिर ये दोनों दोष शान्त हो जाते हैं और अन्त में पित्त का प्रकोप होता है। उस समय देह में उष्णता होती है। इसे शीतादिज्वर कहते हैं। ४५।

दाहादिज्वर

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।
तस्मिन् प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥४६॥

इसी प्रकार त्वचा-गत रस में स्थित पित्त के कुपित होने पर ज्वर के आदि में त्वचा में दाह होता है। अन्त में पित्त शांत हो जाता है और वात-कफ की अधिकता होती है। उस समय देह में शीतलता मालूम होती है। इसे दाहादिज्वर कहते हैं। ४६।

शीतादि और दाहादि ज्वर के परिणाम

द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमश्च सः ॥ ४७ ॥

शीतादि और दाहादि ज्वर को मुनियों ने संसर्गज ज्वर कहा है। संसर्गज का अर्थ द्वंद्वज भी है और त्रिदोषज भी, किन्तु यहाँ त्रिदोषज समझना चाहिए। इनमें दाहादि ज्वर कष्टसाध्य है। इस ज्वर में रोगी बहुत कष्ट पाता है। इनके अतिरिक्त रात्रिज्वर और दिवाज्वर दो प्रकार के और भी विषमज्वर होते हैं। ४७।

टिप्पणी—जिस व्यक्ति के पित्त क्षीण और वातकफ सम है उसे प्रायः रात्रि को ज्वर आता है। जिस व्यक्ति के कफ क्षीण और वात-पित्त सम हैं उसे दिन में ज्वर आता है। सभी विषमज्वरों में वायु ही प्रधान है। ऋतु, दिन-रात्रि, दोष, मल और पूर्व कृत्यों की प्रबलता-निर्बलता से यथासम्भव एक दूसरे में परिवर्तित हो जाता है, जैसे ग्रीष्मऋतु में उत्पन्न वातप्रधान चातुर्थिक वर्षाऋतु को प्राप्त होता है तो ग्रीष्मऋतु में समृद्ध बलवाला तृतीय-कान्त, सन्तत आदि में से किसी में उत्कृष्ट होने के कारण बदल जाता है। एवं वर्षा ऋतु में उत्पन्न सन्तत जब शरद्ऋतु को प्राप्त होता है। तब अपकृष्ट होने के कारण संततादि में से किसी एक में बदल जाता है। इसी प्रकार शेष दिन रात्रि आदि का भी समझिए।

रसगत ज्वर के लक्षण

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ४८ ॥

ज्वर रस धातु में जब प्राप्त हो जाता है, तो देह में भारीपन, हृदय में पीड़ा, अंगों में शिथिलता, उबकाई, अरुचि और चित्त में

खेद होता है। (सभी ज्वर पहले रस को दूषित करते हैं, पर यह प्रधानता से)। ४८।

रक्तगत ज्वर के लक्षण

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिडिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥४६॥

रक्त में ज्वर के प्राप्त होने पर रोगी रुधिर थूकता है। दाह, मूर्च्छा, वमन और चित्त में भ्रम होता है। रोगी बकता बहुत है। देह में फुंसियाँ निकलती हैं और प्यास अधिक लगती है। ४६।

मांसगत ज्वर के लक्षण

पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
उष्माऽन्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिःस्यान्मांसगेज्वरे॥५०॥

मांसगत ज्वर में जाँघों (पिंडलियों) में डंडों से पीटने की सी पीड़ा, प्यास की अधिकता, मल-मूत्र की भी अधिकता, बाहर ऊष्मा, अन्तर्दाह (भीतर जलन), हाथ पैर पटकना और देह में ग्लानि होती है। ५०।

मेदोगत ज्वर के लक्षण

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ।
दौर्गन्ध्यारोचकौग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता॥५१॥

मेद में प्राप्त ज्वर में पसीना बहुत आता है, प्यास अधिक लगती है। मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, देह में दुर्गन्ध, अरुचि और देह में ग्लानि होती है तथा सहनशीलता नहीं रहती। ५१।

अस्थिगत ज्वर के लक्षण

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ।
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥५२॥

ज्वर जब हड्डियों में पहुँच जाता है तब हड्डियों में टूटने की सी

पीड़ा होती है, रोगी काँखता बहुत है, श्वास का वेग बढ़ जाता है, दस्त और क़ै होती है, रोगी हाथ-पाँव पटकता है। ५२।

मज्जागत ज्वर के लक्षण

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥५३॥

मज्जागत ज्वर में रोगी को अन्धकार में प्रवेश करने के समान मालूम होता है, हिचकी और खाँसी आती है, सरदी लगती है, वमन और अन्तर्दाह होता है, महाश्वास (जिसके लक्षण श्वास निदान में कहे जायँगे) और हृदय में छेदने की सी पीड़ा होती है। ५३।

शुक्रगत ज्वर के लक्षण

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे।
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥५४॥

शुक्रस्थानगत ज्वर असाध्य होता है। इस ज्वर में रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसमें वीर्यपात बहुत होता है और लिंग जड़ हो जाता है। ५४।

धातुगत ज्वरों की साध्यासाध्यता

(रसरक्ताश्रितः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः।
अस्थिमज्जगतःकृच्छ्रो शुक्रस्थस्तु न सिध्यति ॥१॥)

(रस, रुधिर, मांस और मेद में प्राप्त हुआ ज्वर साध्य होता है। अस्थि और मज्जागत ज्वर कष्टसाध्य तथा शुक्रगत ज्वर असाध्य हो जाता है ॥ १ ॥)

प्राकृत और वैकृत ज्वर

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रकृतश्चानिलोद्भवः ॥५५॥

वर्षाऋतु में वातज्वर, शरदऋतु में पित्तज्वर और वसन्तऋतु

में कफज्वर प्राकृत कहलाते हैं। इनके विपरीत अर्थात् शरद् ऋतु में कफज्वर और वसन्त में पित्तज्वर वैकृत कहलाते हैं। प्राकृत ज्वर साध्य और वैकृत ज्वर कष्टसाध्य होते हैं। किन्तु वर्षा ऋतु में यद्यपि वातज्वर प्राकृत है तो भी कष्टसाध्य होता है। ५५।

प्राकृत ज्वरों की उत्पत्ति

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम्।
कुर्यात्पित्तं च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥५६॥

तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम्।
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५७ ॥

वर्षाऋतु में वायु कुपित होकर ज्वर उत्पन्न करता है, पित्त और कफ उसके साथ प्रकुपित हो जाते हैं तथा शरद्‌ऋतु में पित्त के कुपित होने से ज्वर होता है और कफ का अनुबन्ध हो जाता है। वसन्तऋतु में कफ का प्रकोप होता है और वात-पित्त भी उसके साथ मिल जाते हैं। पित्त और कफ के स्वभाव से तथा विसर्गकाल होने से पित्त और कफ के ज्वर में लंघन करने से कोई भय नहीं होता (किन्तु वसंत में लघंन निर्भय न करना चाहिए।) । ५६—५७ ।

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ५८ ॥

वात आदि दोषों के प्रकोप के जो समय हैं, उनमें उस दोष के कारण ज्वर की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। जिस ऋतु में जो आहार-विहार दोषों को बढ़ानेवाले हैं, उनको अनुपशय कहते हैं, और जो दोषों के विपरीत हैं अर्थात् दोषों का शमन करनेवाले हैं उनको उपशय कहते हैं। ५८।

अन्तर्वेग और बहिर्वेग ज्वर के लक्षण

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ५९ ॥

अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ।
सन्तापोऽधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ॥६०॥
बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ।

उपर्युक्त ज्वरों में कोई ज्वर अन्तर्वेगी होता है और कोई बहिर्वेगी। अन्तर्वेगी ज्वर में ये लक्षण होते हैं—अन्तर्दाह होता है, प्यास बहुत लगती है, प्रलाप, श्वास और चित्त-भ्रम होता है, हड्डियों और जोड़ों में पीड़ा होती है, पसीना नहीं आता, मल और वायु का अवरोध हो जाता है। बहिर्वेगी ज्वर में देह का बाह्य संताप बढ़ जाता है, प्यास, श्वास, भ्रम आदि उपद्रव कम होते हैं। बहिर्वेगी ज्वर साध्य होता है और अन्तर्वेगी ज्वर कष्टसाध्य अथवा असाध्य होता है। ५९—६०।

आमज्वर के लक्षण

लालाप्रसेकोहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ ६१ ॥

तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता।
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः ॥६२॥

आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ६३ ॥

आमज्वर में ये लक्षण होते हैं—लार बहती है, उबकाई आती है, छाती पर बोझ-सा मालूम होता है, खाने की इच्छा नहीं होती, तन्द्रा और आलस्य रहता है, भोजन ठीक न पचने से पेट भरा सा मालूम होता है । मुँह में विरसता और देह में भारीपन रहता है। छींकें नहीं आतीं, पेशाब बहुत होता है, सब अंग जकड़ जाते हैं और ज्वर बलवान् रहता है । इस प्रकार के ज्वर में पाचन आदि औषध न देनी चाहिए। औषध देने से ज्वर और अधिक बढ़ जाता है। ६१—६३।

टिप्पणी—औषध न देने के सम्बन्ध में कई मत हैं । कोई सातवें दिन,

कोई आठवें, कोई दसवें दिन औषध देने की बात कहते हैं। रस औषधों के लिए इतना विरोध नहीं है जितना कषाय तथा अन्नयुक्त औषध का निषेध है।

पच्यमान ज्वर के लक्षण

ज्वरवेगोऽधिक तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥६४॥

ज्वर का वेग अधिक हो, प्यास, प्रलाप, श्वास और चित्तभ्रम भी हो, मलप्रवृत्ति हो, उबकाई आती हो, तो ज्वर की पच्यमान अवस्था समझनी चाहिए। ६४।

पक्वज्वर के लक्षण

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६५ ॥

जब क्षुधा लगे या छींकें आवें, देह दुर्बल हो जाय, अंगों में भारीपन न रहे ज्वर का वेग कम हो जाय, अधोवायु की प्रवृत्ति हो तब समझना चाहिए कि ज्वर पच गया। ये सब निरामज्वर के लक्षण हैं। ये लक्षण आठ दिन के बाद प्रकट होते हैं। ६५।

टिप्पणी—पुराने ज्वर के लक्षण भी सुविधा के लिए लिखते हैं—
तीन सप्ताह बीत जाने पर जो ज्वर सूक्ष्म (धातुओं में प्राप्त) होकर प्लीहा-वृद्धि और अग्निनाश करता है वह जीर्णज्वर कहलाता है।

साध्यज्वर के लक्षण

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योनुपद्रवः।

रोगी बलवान् हो, वातादि दोष स्वल्प हों और ज्वर के उपद्रव खाँसी आदि भी न हों तो ज्वर साध्य होता है।

टिप्पणी—ज्वर के उपद्रव-खाँसी, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, प्यास, अतिसार, मलावरोध, हिचकी, श्वास और अङ्गभेद (हड्‌ फूटन)।

असाध्य ज्वर के लक्षण

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥ ६६ ॥
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः।

जो ज्वर अनेक प्रबल कारणों से आया हो, वातादि सब दोष बलवान् हों, अतएव सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों, और शीघ्र ही रोगी की इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई हो, वह ज्वर असाध्य होता है। उस रोगी की मृत्यु हो जाती है। ६६।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घरात्रिकः ॥६७॥
असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ।

रोगी का शरीर ज्वर के कारण क्षीण हो गया हो, अंगों में शोथ हो गया हो, गम्भीर ज्वर के लक्षण मिलते हों, ज्वर बहुत दिनों का तथा बलवान् हो और रोगी के सिर के बालों में माँग सी बन गई हो, वह ज्वर असाध्य होता है। उसमें भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। ६७।

गम्भीरज्वर के लक्षण

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ॥६८॥
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ।

जिस ज्वर में प्यास बहुत लगती हो, अन्तर्दाह हो, अधोवायु और मल का अत्यन्त अवरोध हो, श्वास और खाँसी हो, उसे गम्भीर ज्वर जानना चाहिए। ६८।

अन्य असाध्य ज्वरों के लक्षण

आरम्भाद्विषमो यस्तु यश्च वा दैर्घरात्रिकः ॥६९॥
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् ।

जो गम्भीर ज्वर आरम्भ से ही विषमज्वर हो गया हो, जो बहुत दिनों से आता हो, क्षीण और अत्यन्त रूक्ष शरीरवाले को गम्भीर ज्वर हुआ हो तो इसमें भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। ६९।

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ॥७०॥
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ।

जिस ज्वर में रोगी विह्वल और बेहोश हो जाता है, उठने की शक्ति नहीं रह जाती, जो गिरते ही सोया सा मालूम देता है, बाहर से सरदी लगती है और अन्तर्दाह होता है, उसे भी असाध्य समझना चाहिए। उस ज्वर से भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। ७०।

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ ७१ ॥
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ।

रोमांच होता हो, आँखें लाल हो गई हों, हृदय में संघातशूल (चोट लगने की सी पीड़ा) हो, रोगी मुँह से ही श्वास लेता हो, नाक से श्वास न ले सकता हो (खर श्वास लेता हो) तो वह ज्वर भी रोगी को मार डालता है। ७१।

हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥ ७२ ॥
सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ।

जिस ज्वर में रोगी को हिचकी, श्वास और प्यास हो, बेहोशी हो, नेत्र भ्रमित हो गये हों, रोगी निरन्तर लम्बी श्वास छोड़ता हो और क्षीण हो गया हो, वह ज्वर भी रोगी को मार डालता है। ७२।

हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम् ॥ ७३ ॥
गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ।

जिसकी कान्ति नष्ट हो गई हो, इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हों, खाने की बिलकुल इच्छा न होती हो, ज्वर में ये लक्षण होने पर तथा गम्भीरज्वर से पीड़ित और तीक्ष्ण वेगवाले ज्वर से पीड़ित रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। यह ज्वर भी असाध्य होता है। ७३।

ज्वरमुक्ति के पूर्वरूप

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पविड्भेदसंज्ञिता ।
कूजनं चास्यवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ७४ ॥

दाह, पसीना, भ्रम, प्यास, कंप, मलभेद, मूर्च्छा, काँखना और देह में दुर्गन्ध होना, ये लक्षण ज्वर उतरने के पहले होते हैं । ७४ ।

ज्वरमुक्ति के लक्षण

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च ।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥७५॥

पसीना, हलकापन, सिर में खुजली, मुँह का पक जाना, छींके आना, खाने की इच्छा होना, ये लक्षण ज्वर उतरने पर होते हैं । ७५ ।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ज्वरनिदानं समाप्तम् । २ ।

अतीसारनिदानम्

अतीसार के कारण

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ।
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥२॥
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः क्रिमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

गुरु (भारी) भोजन करने से (अर्थात् मात्रा में गुरु तथा स्वभाव से गुरु अथवा गुण या पाक में गुरु अन्न खाने से), अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूक्ष, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त द्रव, अत्यन्त स्थूल, अत्यन्त शीतल तथा विरुद्ध भोजन (संयोग देश मात्रा और काल-विरुद्ध जैसे क्षीर-मत्स्यादि) करने से, अजीर्ण में भोजन करने से, अपक्व भोजन करने से, विषम भोजन करने से, अधिक अल्प और

असमय भोजन करने से, स्नेहन, वमन, विरेचन आदि के अतियोग, मिथ्यायोग अथवा हीनयोग से, स्थावरविष अथवा दूषीविष खा लेने से, बहुत शोक करने से, दूषित जल, शुद्ध जल अथवा शुद्ध मदिरा भी अधिक पीने से, प्रकृति के विरुद्ध तथा ऋतु के विपरीत आहार करने से, जल में अधिक समय तक क्रीड़ा करने से, मल-मूत्र और अधोवायु के वेग रोकने से, क्रिमियों के कारण पक्वाशय दूषित होने से मनुष्यों को अतीसार रोग होता है। आगे उसके लक्षण कहते हैं। १-३।

अतीसार की संप्राप्ति

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः
शकृन्मिश्रो वायुनाऽधःप्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहु-
र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति॥
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः
शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः॥४॥

बढ़े हुए द्रव धातु (कफ, पित्त, रस, रुधिर आदि) जठराग्नि को मन्द करके, वायु के द्वारा प्रेरित होकर मल के साथ अतिमात्रा में बार-बार निकलते हैं। इस दारुण रोग को अतीसार कहते हैं। अतीसार छः प्रकार का होता है—वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार सन्निपातातीसार, शोकातीसार और आमातीसार। ४।

टिप्पणी—चरकसंहिता में भय और शोकजन्य अतीसार अलग-अलग कहे हैं। वास्तव में दोनों ही भय को प्रभावित करनेवाले होने से एक ही में आ जाते हैं।

अतीसार के पूर्वरूप

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोद-
गात्रावसादानिलसन्निरोधाः।

विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको
भविष्यतःतस्य पुरःसराणि ॥५॥

हृदय, नाभि, गुदा, पेट और कोख में कोंचने की-सी पीड़ा तथा देह में टूटने की-सी पीड़ा होना, अधोवायु और मल का अवरोध होना, पेट फूलना और अन्न ठीक तरह से न पचना, ये अतीसार के पूर्वरूप हैं। ५।

वातातीसार के लक्षण

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥६॥

दस्त लाल रंग का हो, फेना भी मिला हो, रूखा और बारबार थोड़ा-थोड़ा हो, बिना पचा हुआ दस्त हो, दस्त होने के समय शब्द और पीड़ा हो तो समझना चाहिए कि वातातीसार है। ६।

पित्तातीसार के लक्षण

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा
तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम्।

पीला, नीला अथवा कुछ लाल दस्त हो, प्यास बहुत लगती हो, मूर्च्छा और दाह हो, गुदा पक गई हो, ये लक्षण पित्तातीसार के हैं।

कफातीसार के लक्षण

शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं
विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥७॥

दस्त सफेद और गाढ़ा हो, कफ मिला हुआ दस्त हो, दस्त में आमगन्ध हो और शीतल दस्त हो, दस्त होते समय रोमांच होता हो तो समझना चाहिए कि कफातीसार है। ७।

सन्निपातातीसार के लक्षण

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम्।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥८॥

सुअर की चर्बी के रंग का दस्त हो, मांस के धोवन के समान दस्त हो, वात, पित्त और कफ के अतीसार के जो लक्षण बता चुके हैं वे सब लक्षण मिलते हों तो समझना चाहिए कि सन्निपातातीसार है। यह कष्टसाध्य होता है। ८।

शोकातीसार के लक्षण

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य
बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् ॥९॥

निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा
निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः।
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं
रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥१०॥

धन अथवा कुटुम्ब के विनाश आदि के कारण जिस मनुष्य को अत्यन्त शोक होता है और शोक के कारण भोजन कम करता है, उसके शरीर की बाष्पोष्मा कोष्ठ में प्राप्त होकर, जठराग्नि को मन्द करके, रुधिर को क्षोभित कर देती है, तब घुँघची के समान लाल रुधिर मल के साथ अथवा मल के बिना, निर्गन्ध अथवा दुर्गन्ध-युक्त, निकलने लगता है। शोक से उत्पन्न यह अतीसार अति दुःसाध्य होता है, क्योंकि शोक के दूर हुए बिना केवल औषध से लाभ नहीं होता। वैद्यों ने इसे बहुत कठिन रोग बताया है। ९—१०।

टिप्पणी—भयजन्य अतीसार की सम्प्राप्ति और लक्षण भी इसी प्रकार के होते हैं।

आमातीसार के लक्षण

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः
कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च।
नानावर्णं नैकशः सारयान्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

अन्न के ठीक न पचने से वातादि दोष कुपित होकर कोष्ठ में रस, रुधिर आदि धातुओं को और मल को दूषित करके बार-बार निकालने लगते हैं। दस्त अनेक रंग के होते हैं और दस्त के समय पीड़ा होती है। इसे आमातीसार कहते हैं। ११।

टिप्पणी—भय, स्नेहाजीर्ण, विषूचिका, अर्श, अजीर्ण आदि से उत्पन्न होनेवाले अतीसार अलग नहीं है, प्रत्युत वे दोषों में अन्तर्गत होकर ही इन छः के अन्तर्गत हो जाते हैं।

आम तथा पक्व के लक्षण

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥१२॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै।
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥१३॥

ऊपर कहे हुए वातादि अतीसार के लक्षणों से युक्त दस्त हों, पानी में छोड़ने से मल यदि नीचे बैठ जाय, मल चिकना हो और दुर्गन्ध बहुत हो, पिच्छिल छिछड़ेदार हो तो अतीसार को आमदोषयुक्त समझना चाहिए। यदि इसके विपरीत लक्षण हों अर्थात् पानी में छोड़ने से मल नीचे न बैठे, चिकनापन और दुर्गन्ध भी न हो, छिछड़ेदार न हो, मल विशेषकर हल्का हो, तो अतीसार के पक्व लक्षण समझना चाहिए। (चिकित्सा के लिए यह विचार बहुत आवश्यक है।)१२--१३।

असाध्य अतीसार के लक्षण

पक्वजाम्बवसंकाशं यकृत्खण्डनिभं तनु।
घृततैलवसामज्जवेशवारपयोदधि ॥ १४ ॥

मांसधोवनतोयाभ कृष्णं नीलारुणप्रभम् ।
मेचकं स्निग्धकर्बूरं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥ १५ ॥

कुणपं मस्तुलुङ्गाभं सुगन्धि कुथितं बहु ।
तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥१६॥

संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् ।
प्रलापयुक्तं च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं दूराध्मातमुपद्रुतम् ।
गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारकिणं त्यजेत् ॥१८॥

श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥

अतीसार रोग जब असाध्य हो जाता है तो ये लक्षण प्रकट होते हैं–दस्त का रंग पके जामुन के समान काला और चिकना अथवा यकृत् के टुकड़े समान लाल और काला, घी, तेल, चर्बी अथवा मज्जा के समान, वेशवार (अस्थिरहित, कुटकर पकाये हुए मांस) के रंग के समान अथवा दूध या दही के समान, मांस के धोवन के समान, काला, नीला या लाल रंग का, मोरपंख के रंग का, चिकना और अनेक रंग का, अर्थात् चितकवरा, गाढ़ा और मुर्दे की सी गन्धवाला, मस्तलुङ्ग मस्तकाभ्यन्तर स्नेह के समान, तथा दुर्गन्ध-युक्त सड़ा हुआ, और अधिक मात्रा में दस्त हों। प्यास, दाह, श्वास, अरुचि, हिचकी, पसलियों और हड्डियों में पीड़ा, मूर्च्छा, अरति (बेचैनी), संमोह (इन्द्रियों में शिथिलता), गुदा के भीतर पक जाना, प्रलापयुक्त रोगी को असाध्य समझना चाहिए। गुदा का मार्ग खुला रहना, शरीर का क्षीण हो जाना, पेट फूलना, और शोथ आदि उपद्रव हों, गुदा पक गई

हो, जठराग्नि मन्द हो गई हो अथवा शरीर ठंडा हो गया हो, तो असाध्य अतीसार समझना चाहिए। देह में पीड़ा, श्वास, प्यास, ज्वर हो तथा रोगी दुर्बल, बालक अथवा वृद्ध हो, इस प्रकार के अतीसार के रोगी नहीं बचते। १४—१६।

टिप्पणी—अन्य आचार्यों ने कुछ और लक्षण भी लिखे हैं—सूजन, शूलज्वर, पिपासा, श्वास, खाँसी, अरुचि, वरन मूर्च्छाहिचकीयुक्त अतीसार के रोगी को देखते ही छोड़ देना चाहिए।

रक्तातीसार के लक्षण

पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्बणः॥ २०॥

पित्तातीसार का रोगी, अथवा पित्तातीसार के पूर्व रूप प्रकट हुए हों वह मनुष्य, यदि पित्त बढ़ानेवाले पदार्थ निरन्तर अधिक खाता रहता है तो उसे महान् रक्तातीसार हो जाता है। २०।

प्रवाहिका (Dysentery) की संप्राप्ति

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं
नुदत्यधस्तादहिताशनस्य।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं
प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥२१॥

जो मनुष्य अपथ्य भोजन करता है उसके कोष्ठ में संचित हुआ कफ कुपित वायु द्वारा नीचे को प्रेरित होकर, अपानवायु के साथ बार-बार थोड़ा-थोड़ा (कफ) मल के साथ निकलता है। उसे प्रवाहिका (पेचिश) कहते हैं। (हारीत ने इसे निश्चारक और भोज आदि ने विस्रंसि कहा है।) २१।

वातादिभेद से प्रवाहिका के लक्षण

प्रवाहिका वातकृता सशूला
पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च।

सशोणिता शोणितसंभवा च
ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ।
तासामतीसारवदादिशेच्च
लिंगं क्रमं चामविपक्वतांच ॥ २२ ॥

वात की प्रवाहिका में पीड़ा के साथ, पित्त की प्रवाहिका में दाह के साथ, कफ की प्रवाहिका में कफ के साथ और रुधिर की प्रवाहिका में रुधिर के साथ मल का प्रवाह होता है। वायु की प्रवाहिका रूक्ष अन्न अधिक खाने से, कफ की प्रवाहिका स्निग्ध पदार्थ अधिक खाने से तथा पित्त और रुधिर की प्रवाहिका तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थ अधिक खाने से होती है । वातादिभेद से अतीसार के समान इनके लक्षण जानना चाहिए तथा आम और पक्व का भेद भी अतीसार के समान समझकर चिकित्साक्रम निश्चित करना चाहिए। २२।

अतीसारनिवृत्ति के लक्षण

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य गितस्तस्योदरामयः ॥ २३ ॥

जब मल के विना मूत्र की प्रवृत्ति हो, अधोवायु का अवरोध न रहे, जठराग्नि दीप्त हो, पेट हलका रहे, तो समझना चाहिए कि अतीसार रोग नहीं रहा । २३ ।

ज्वरातीसार के लक्षण

(ज्वरातीसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक् पृथक् ।
तत्स्याज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितं पुनः ॥१॥)

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽतीसारनिदानं समाप्तम् । ३ ।

(ज्वर और अतीसार के जो निदान और लक्षण आदि अलग-अलग कहे गये हैं, वे एक साथ प्रकट हों, तो ज्वरातीसार (एक और तीसरा रोग) समझना चाहिए । वे निदान ऊपर कह चुके हैं. इसलिए यहाँ ज्वरातीसार रोग का निदान फिर नहीं कहते । १ ।

ग्रहणीरोगनिदान

ग्रहणीरोग की संप्राप्ति

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः सदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

अतीसार के निवृत्त होने पर भी अग्नि के मन्द रहते हुए, जो मनुष्य अपथ्य भोजन करता है, उसकी जठराग्नि और भी मन्द हो जाती है। अग्नि के फिर दूषित होने से ग्रहणी भी दूषित हो जाती है और ग्रहणी के दूषित होने से ही ग्रहणी रोग होता है। १।

टिप्पणी—मूल में 'अपि' शब्द होने से यह भी ज्ञात होता है कि जिसे अतीसार निवृत्त नहीं हुआ है, अथवा बिना अतीसार हुए अपने कारणों से भी ग्रहणी रोग होता है। मन्दग्निवाला मनुष्य यदि अपथ्य भोजन करता है तो जठराग्नि अत्यन्त दूषित होकर ग्रहणी को दूषित कर देती है। पित्तधरा नाम की छठी कला जो पक्व और आमाशय के बीच में है, ग्रहणी कहलाती है।

(सु० उ० तं० अ० ४०)

पाश्चात्य शारीर शास्त्रानुसार कविराज गणनाथसेनजी क्षुद्रांत्र के प्रारम्भिक भाग को १२ अंगुल लम्बा कहा है। यह तिरछा होकर अग्न्याशय को लपेटता हुआ फैलकर बृहदंत्र के पश्चिमी भाग को स्पर्श करता है। यहाँ पित्तकोष से पाचक पित्त और अग्न्याशय से आग्नेस रस आकर मिलते हैं और अर्धपक्व अन्न को अच्छी तरह से पचाते हैं। वैद्यक ग्रन्थों में प्रत्यक्षशारीर आशय खंड पित्तधरा कलासंज्ञक ग्रहणी से समग्र क्षुद्रांत्र की भीतरी कला का ग्रहण किया गया है। कविराजजी ने लिखा है—ग्रहणीपदे क्वचित् समग्रक्षुद्रान्त्राभ्यन्तरीयां कलामपि लक्षयति वैद्यकग्रन्थेषु, साऽसौ 'पित्तधरा' कलासंज्ञाऽपि।

संप्राप्ति और सामान्य लक्षण

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ २ ॥

पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥३॥

अत्यन्त कुपित वातादि दोष अलग-अलग अथवा सब मिलकर ग्रहणी को दूषित कर देते हैं। तब भोजन किये हुए अन्न को ग्रहणी पचा हुआ या बिना पचा ही बारबार छोड़ देती है। दस्त के समय पीड़ा होती है, दस्त में दुर्गन्ध आती है, बंधा हुआ (वात से) अथवा पतला (पित्त से) दस्त बारबार आता है, इस रोग को वैद्य लोग ग्रहणीरोग कहते हैं। २-३

ग्रहणी के पूर्वरूप

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णाऽऽलस्यं बलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥४॥

प्यास लगती हो, आलस्य रहता हो, बल क्षीण होता जाता हो, अग्निमान्द्य के कारण आहार विदग्ध होता हो, अतएव अन्न देर में पचता हो और देह में भारीपन हो तो समझना चाहिए कि ग्रहणी-रोग होनेवाला है। ४।

वातज ग्रहणी के निदान और लक्षण

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः ।
प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ५ ॥

मारुतः कुपितं वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ।
तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥६॥

कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विसूचिका ॥७॥

हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका ।
गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा ॥ ८ ॥

जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च।
स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः ॥ ९ ॥

चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत्।
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥१०॥

कड़वे, तीखे, कसैले, अत्यन्त रूखे अथवा दूषित पदार्थ खाने से, अल्प भोजन करने से, उपवास करने से, अधिक मार्ग चलने से, मल-मूत्र आदि का वेग रोकने से अथवा अधिक मैथुन करने से कुपित वायु जठराग्नि को दूषित करके ग्रहणीरोग उत्पन्न कर देती है। इस रोग में अन्न कठिनता से पचता है या अम्लपाक होता है। देह की त्वचा खरदरी हो जाती है। आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है। मुँह और गला सूखता है। भूख प्यास अधिक लगती है, दृष्टि मन्द हो जाती है, कानों में सनसनाहट होती है। पसलियों, जाँघों और जाँघों के जोड़ों में पीड़ा होती है। हृदय और गले में भी पीड़ा होती है। विसूचिका अर्थात् पेट में सुई कोंचने की सी पीड़ा होती है और ऊपर तथा नीचे से कच्चा अन्न गिरने लगता है। शरीर दुबला और कमज़ोर हो जाता है, मुँह में विरसता रहती है, गुदा में कतरने की सी पीड़ा होती है। खट्टी, मीठी सब रस की चीज़ें खाने की इच्छा होती है। चित्त खिन्न रहता है। भोजन पचने पर या पचते समय पेट फूलता है और भोजन करने पर आराम मिलता है। रोगी अपने शरीर में वातगुल्म, हृद्रोग और प्लीहा रोग का सन्देह करता है। कभी गाढ़ा, कभी पतला, शब्द और फेन के साथ, विना पचा हुआ, थोड़ा-थोड़ा दस्त बहुत देर तक बारबार होता है। श्वास फूलती है और खाँसी आती है। ये लक्षण वातज ग्रहणी में होते हैं। ५-१०।

पित्तज ग्रहणी के निदान और लक्षण

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम्।
आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥

सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् ।
पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥ १२ ॥

कड़वी चीजें बहुत खाने से, अजीर्ण रहने से, दाह पैदा करनेवाली चीज़ों के खाने से, अम्ल और क्षार (सोडा आदि आदि शब्द से नमकीन और बहुत गर्म) चीज़ों के खाने से पित्त बढ़ जाता है और जठराग्नि को उसी प्रकार बुझा देता है, जैसे गर्म पानी अग्नि को बुझा देता है । उस मनुष्य का शरीर पीला हो जाता है और बिना पचे हुए नीले, पीले, पतले, दुर्गन्धयुक्त दस्त होने लगते हैं । खट्टी डकारें आती हैं, हृदय और गले में जलन होती है, अरुचि और तृषा होती है । ये पित्त की ग्रहणी के लक्षण हैं । ११-१२ ।

कफज ग्रहणी के निदान और लक्षण

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् ।
भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥१३॥
तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः ।
आस्योपदेहमाधुर्यं कासष्ठीवनपीनसाः ॥ १४ ॥
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ।
दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्तनम् ।
अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥१६॥

अधिक भारी, स्निग्ध, शीतल, पिच्छिल और मधुर पदार्थ अधिक खाने से, अधिक मात्रा में भोजन करने से, भोजन करके दिन में सोने से कफ कुपित होकर जठराग्नि को बुझा देता है (ग्रहणी कला दूषित हो जाती है) । तब उस मनुष्य को भोजन कष्ट से पचता है । उबकाई, वमन और अरुचि होती है । मुँह में कफ लिसा हुआ और मिठास

मालूम होती है। खाँसी आती है। बहुत थूकता है, और उसे पीनस (जुकाम) हो जाता है। हृदय जकड़ा हुआ, पेट कड़ा और भारी मालूम होता है मीठी और खराब डकारें आती हैं, अंगों में पीड़ा होती है, स्त्री-प्रसंग की इच्छा नहीं होती। आम (बिना पचा) और कफ मिला हुआ बधा दस्त होता है, आलस्य रहता है। पुष्ट मनुष्य भी निर्बल हो जाता है। ये लक्षण कफ की ग्रहणी के हैं। १३–१६।

त्रिदोषज ग्रहणी के लक्षण

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे।
त्रिदोषं निर्दिशेदेवं, तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥१७॥

वातादि पृथक्-पृथक् दोषों से उत्पन्न ग्रहणीरोग के जो निदान और लक्षण बताये हैं, वे सब यदि मिलते हों तो त्रिदोषज ग्रहणी समझना चाहिए। 'तेषां वक्ष्यामि भेषजम्' यह पद यहाँ अनावश्यक है। किन्तु माधव कर ने सम्पूर्ण श्लोक लिखने के लिए इसे भी उद्धृत किया है। १७।

संग्रहग्रहणी और घटीयंत्र के लक्षण

(अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा।
द्रवं शीतं घनं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् ॥ १ ॥
आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम्।
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाऽप्यथ मुञ्चति ॥ २ ॥
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा।
दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ॥३॥
सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता।
स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः।
तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ ४ ॥)

(आँतों में शब्द होता हो, आलस्य (कार्य करने की सामर्थ्य होते

हुए भी कार्य के प्रति अनुत्साह), दुर्बलता, अंगों में पीड़ा गाढ़ा, पतला, चिकना, शीतल, बिना पचा हुआ लुवाबदार, शब्द और कमर की पीड़ा के साथ अधिक मात्रा में दस्त होना, दस दिन में, पन्द्रह दिन में, महीने भर में अथवा नित्य दस्त आना, दिन में रोग का बढ़ना, और रात्रि में शान्त होना ये लक्षण संग्रहग्रहणी के हैं। यह रोग कठिनता से समझ में आता है और बहुत दिनों तक रहता है। आमवात से इसकी उत्पत्ति होती है और यह दुःसाध्य होता है। १-३।

चारपाई पर लेटने पर पसलियों में पीड़ा हो, (दस्त होते समय) पानी से भरे हुए घड़े से जल गिरने का-सा शब्द हो तो उसे घटीयन्त्र कहते हैं। यह ग्रहणीरोग असाध्य होता है। ४।)

दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ॥ १८ ॥

ग्रहणी की साध्यता और असाध्यता

लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो
यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत् ।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो
हत्वा तनूं नैव निवर्तते च ॥ १९ ॥

अतीसार रोग के साम और निराम जानने के जो उपाय बताये गये हैं, उन्हीं से ग्रहणीरोग भी साम और निराम मालूम करना चाहिए। जिन लक्षणों से अतीसार रोग असाध्य समझा जाता है, उन्हीं से ग्रहणीविकार को भी असाध्य समझना चाहिए। वृद्ध मनुष्य को यदि ग्रहणीविकार होता है तो उसके प्राण लिये बिना नहीं छोड़ता। १८-१९।

(बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता ।
वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ १ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ग्रहणीनिदानं समाप्तम् । ४ ।

(ग्रहणीरोग बालकों का साध्य, युवा पुरुषों का कष्टसाध्य और वृद्ध मनुष्यों का असाध्य होता है, यह धन्वन्तरि का मत है । १ ।)

अर्शनिदान

अर्श के भेद

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों से अलग-अलग अर्थात् वातज, पित्तज, कफज तथा तीनों दोषों से अर्थात् सन्निपातज, रुधिर से और सहज अर्थात् जन्म ही से उत्पन्न छः प्रकार की बवासीर होती है । यह रोग गुदा की त्रिवली (गुदा के आँटों की तीन परतें ४½ अंगुल लम्बी हैं) में होता है । १ ।

संप्राप्ति और स्वरूप

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि तान् जगुः ॥२॥

वातादि दोष त्वचा, मांस, रुधिर और मेदा को दूषित करके गुदा में मांस के अंकुर उत्पन्न करते हैं । उसे अर्श (बवासीर) कहते हैं । २ ।

टिप्पणी—मूल में 'अपानादि' शब्द होने से नासिका आदि में भी अर्श की उत्पत्ति समझनी चाहिए, किन्तु कायचिकित्सक अन्य स्थलों में होनेवाले मांसाङ्कुरों (मस्सों) को अधिमांस कहते हैं ।

वातार्श के निदान

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ।
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यमैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥

लंघनं देशकालौ च शीतो व्यायामकर्म च ।
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

कसैली, कड़वी, तीखी, रूक्ष, शीतल और हलकी चीजें बहुत खाने से, परिमित और अल्प भोजन करने से, तेज मदिरा पीने से, अति मैथुन करने से, उपवास करने से, शीतल देश में रहने और शीतल ऋतुओं के कारण, अधिक व्यायाम करने से, बहुत शोक करने से, वायु और धूप में बहुत रहने से वातार्श (वात की बवासीर) हो जाती है। ३—४ ।

पित्तार्श के निदान

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः ।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥
विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम् ।
पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ६ ॥

कड़वी, खट्टी, नमकीन और गर्म चीजें अधिक खाने से, अधिक व्यायाम करने से, आँच और धूप में अधिक रहने से, गर्म देशों में रहने से ग्रीष्म और शरद् ऋतु के कारण, बहुत क्रोध करने से, बहुत मदिरा पीने से, ईर्ष्या-द्वेष करने से, दाह पैदा करनेवाले अथवा तीक्ष्ण, उष्ण अन्न और औषध खाने-पीने से पित्त कुपित होकर अर्श उत्पन्न करता है। ५—६ ।

कफार्श के निदान

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ।
अव्यायामो दिवास्वप्नः शय्यासनसुखे रतिः ॥७॥
प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् ।
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥८॥

मधुर, स्निग्ध, शीतल, नमकीन, खट्टी और भारी चीजें बहुत खाने

से, व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, सुखपूर्वक सदैव आसन और शय्या पर बैठे और पड़े रहने से, पूर्व की वायु का अधिक सेवन करने से, शीतल देशों में रहने से और शीतल ऋतुओं के कारण तथा निश्चिन्तता से कफ कुपित होकर अर्श उत्पन्न करता है। ७—८।

द्वन्द्वजार्श के निदान

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानि च।

दो दोषों के निदान और लक्षण मिलते हों तो द्वन्द्वज अर्श समझना चाहिए।

त्रिदोषजार्श के निदान

सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम्॥ ९॥

तीनों दोषों के निदान और लक्षण मिलते हों तो सन्निपातज अर्श समझना चाहिए। सहज और सन्निपातज अर्श के निदान और लक्षण एक ही समान होते हैं। ९।

वातार्श के लक्षण

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः।
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः।
बिम्बीखर्जूरकर्कन्धूकार्पासीफलसन्निभाः॥११॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः।
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाद्यधिकव्यथाः॥१२॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः।
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः॥ १३ ॥
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्।
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते॥ १४ ॥

कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ।
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥ १५ ॥

वात की अधिकता से जो अंकुर (मस्से) गुदा में निकलते हैं, उनमें कुछ चुनचुनाहट (कीड़ों के काटने के समान पीड़ा) होती है। वे स्रावरहित रूखे, मुर्झाये हुए, काले या लाल, दृढ़, गौर, कठिन, खरदरे, छोटे-बड़े, टेढ़े, नुकीले, खुले मुँह के और कुँदरू, खजूर, जंगली बेर अथवा जंगली कपास के फल के आकार के, कोई कदम्ब के फूल के आकार के और कोई सफेद सरसों के आकार के होते हैं। सिर में, पसलियों में, कमर में, कन्धों में, जाँघों और जाँघों के जोड़ों में बहुत पीड़ा होती है। छींकें और डकारें आती हैं, कब्ज रहता है, हृदय जकड़ा-सा रहता है, भोजन में अरुचि रहती है, खाँसी और श्वास आने लगती है, जठराग्नि विषम हो जाती है, कानों में सन-सनाहट होती है, चित्त में भ्रम हुआ करता है। दस्त बहुत कड़ा, थोड़ा-थोड़ा और शब्द के साथ होता है। वायु की प्रवाहिका के समान लक्षण होते हैं। दस्त के समय पीड़ा होती है, कभी कुछ पतला दस्त और फेना भी मिला होता है, कभी बँधा हुआ दस्त भी होता है। रोगी की त्वचा, नख, आँखें, मुँह और मल-मूत्र का रंग काला होता है। वातार्श से गुल्म, प्लीहा, उदररोग और अष्ठीला रोग भी हो जाते हैं। १०—१५।

पित्तार्श के लक्षण

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ।
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ १६ ॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः ।
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ॥ १७ ॥
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ।
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥

पित्त की बृद्धि से गुदा में जो अंकुर निकलते हैं, उनके मुँह नीले रंग के होते हैं। मस्सों का रंग लाल, पीला या काली कान्ति का होता है। उनमें से पतला रुधिर निकलता है। मस्से गन्धयुक्त, पतले, कोमल और लम्बे होते हैं। आकार तोते की जीभ के समान, यकृत् खंड के समान अथवा जोंक के मुँह के समान होता। पित्तार्श के रोगी को दाह; मुख, नाक आदि का पकना; ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह आदि उपद्रव होते हैं। नीला, पीला, लाल, गर्म, पतला, बिना पचा हुआ आमयुक्त दस्त होता है। मस्से छूने से गर्म मालूम होते हैं। कोई जौ के समान मध्य में स्थूल होते हैं। रोगी का मुँह, नेत्र, त्वचा, नख और मल-मूत्र हरा, पीला (हरताल के समान) या हल्दी के रंग का होता है। १६—१८।

कफार्श के लक्षण

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः।
उत्सन्नोपचितस्निग्धस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ १६ ॥
पिच्छिलाःस्तिमिताःश्लक्ष्णाःकण्ड्वाढ्याःस्पर्शनप्रियाः
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥
वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः।
सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः।
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥
वसाभसकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः।
न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥२३॥

कफ की अधिकता से उत्पन्न बवासीर में मस्से गहरी और फैली हुई जड़वाले, थोड़ी-थोड़ी पीड़ायुक्त, सफेद रंग के, ऊँचे उठे हुए, मोटे चिकने, जकड़े हुए, गोल, भारी, अचंचल, लिबलिबे, गीले कपड़े से

पोंछ दिये हों ऐसे चमकदार, कोमल, खुजलीयुक्त होते हैं। इनके छूने से सुख मिलता है। ये आकृति में करील (टेंटी) या बाँस के अंकुर के समान, कटहल की गुठली या दाख (या बिना ब्याई गौ के स्तनों) के समान होते हैं। जाँघों की सन्धियाँ जकड़ जाती हैं। गुदा, मूत्राशय और नाभि में खींचने के समान पीड़ा होती है। श्वास, खाँसी, उबकाई, मुख से लार गिरना, अरुचि, पीनस (जुकाम रहना), प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शिर में भारीपन, शीतज्वर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, वमन, अतिसार, ग्रहणी आदि आमजन्य रोग हो जाते हैं। और कफ, चर्बी मिला हुआ मल प्रवाहिका के रूप में आता है। मस्सों से न रक्त निकलता है, न वे फूटते हैं, त्वचा (नख, मुख, नेत्र और मलमूत्र) आदि पाण्डु वर्ण (सफेद-पीले) और चिकने हो जाते हैं। १९-२३।

त्रिदोषज और सहज अर्श के लक्षण

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च।

ऊपर कहे हुए वात, पित्त और कफ से उत्पन्न अर्श के सब मिले हुए लक्षण सहज और सन्निपातज अर्श में भी मिलते हैं।

रक्तार्श के लक्षण

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥२४॥
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः।
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः॥ २५ ॥
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः।
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥२६॥
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः।
विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते॥ २७ ॥

रक्तार्श में पित्तज बवासीर के समान लक्षण होते हैं। मस्से बरगद की बरोह के समान, घुँघची या मूँगे के समान लाल रंग के होते

हैं। मल बहुत कड़ा निकलने के कारण मस्सों पर दबाव पड़ने से दूषित और उष्ण रुधिर निकलता है। बहुत रुधिर निकल जाने से रोगी मेंढक के समान पीला हो जाता है तथा रक्तक्षय, त्वचा में कठोरता, खट्टे, ठंडे पदार्थों की इच्छा, शिराओं की शिथिलता आदि उपद्रवों से दुखी होता है। बल, ओज, उत्साह और वर्ण कम हो जाता है, इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं। मल कठोर, काला और रूखा होता है। अपानवायु नहीं निकलती। २४-२७।

वातादि भेद से रक्तार्श के लक्षण

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम्।
कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥२८॥
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम्।
शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् २९
यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम्।
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम्।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः॥ ३० ॥

रुधिर कुछ फेन मिला हुआ, लाल और थोड़ा निकलता हो; जाँघों में, गुदा में और कमर में पीड़ा होती हो; दुर्बलता बहुत बढ़ गई हो तो वात के अनुबन्ध से रक्तार्श समझना चाहिए। रूक्ष पदार्थों का सेवन इसका कारण है। यदि मल शिथिल, सफ़ेद, पीला, चिकना, शीतल और भारी होता हो; मस्सों से रुधिर चिकना, गाढ़ा, पीला और तन्तु के समान लिबलिबा निकलता हो; गुदा चिकनी (भात का माड़ लगा हो ऐसी) और गीली (ठंडी-सी) बनी रहती हो, तो कफ के अनुबन्ध से रक्तार्श समझे। चिकने और भारी द्रव्यों के सेवन से यह बवासीर होती है। (पित्तानुबन्ध रक्तार्श के लक्षण पित्तार्श के समान

होते हैं और तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थों का सेवन उसका कारण होता है)। २८-३०।

अर्श के पूर्वरूप

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥३१॥
ग्रहणीदोषपाण्ड्वर्तेराशङ्का चोदरस्य च ।
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥३२॥

आमाशय में अन्न का देर तक रुका रहना, निर्बलता, कोख में गुड़गुड़ाहट, शरीर का दुबला होना, डकारें बहुत आना, जाँघों में पीड़ा, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, ग्रहणी-विकार पाण्डुरोग और उदररोग की आशंका, ये लक्षण अर्शरोग के पूर्वरूप हैं। इन लक्षणों से समझना चाहिए कि अर्शरोग की उत्पत्ति हो रही है। ३१-३२।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम् ।
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ३३ ॥
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च ।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ३४ ॥

गुदा में मस्सों के निकलने पर पाँचों वायु, पाँचों पित्त और पाँचों कफ कुपित हो जाते हैं। गुदा की त्रिवली में विकार हो जाता है। इसलिए अर्शरोग बहुत दुःख और अनेक रोगों का कारण है। इसमें सब अंगों में व्यथा होती है। यह रोग प्रायः कष्टसाध्य होता है। ३३-३४।

साध्यासाध्य अर्श के लक्षण

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥३५॥

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥३६॥
सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् ।
जायन्तेऽर्शांसिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ३७॥

गुदा की बाह्यवलि अर्थात् संवरणी वलि में, एक दोषोल्बण अर्श (बवासीर) यदि एक वर्ष से अधिक समय की न हो तो सुखसाध्य होती है । अधिक समय होने पर कष्टसाध्य हो जाती है । गुदा की बाह्यवलि में दो दोषोल्बण अर्श कष्टसाध्य और त्रिदोषोल्बण अर्श याप्य होती है । दूसरी अर्थात् (सर्जनी) वलि में एक दोषोल्बण कष्टसाध्य, दो दोषोल्बण याप्य और त्रिदोषोल्बण असाध्य होती है । तीसरी अर्थात् प्रवाहिणी वलि में एक दोषोल्बण याप्य तथा दो दोषों अथवा तीन दोषों से उत्पन्न असाध्य होती है । सहज अर्श भी असाध्य होती है । ३५-३७ ।

असाध्य के दो भेद

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पाद[1]समन्विते ।
याप्यन्तेदीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥३८॥

असाध्य के दो भेद हैं—याप्य और प्रत्याख्येय । रोगी की जठराग्नि दीप्त हो, चारों पाद (वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी) अनुकूल हों और उसकी आयु भी हो तो चिकित्सा करने से अच्छा हो सकता है । इसको याप्य कहते हैं । यदि जठराग्नि मन्द

१. पादचतुष्टयं यथा—रोगी, भिषक्, परिचारकः, औषधं च । यदा रोगी भिषग्वाक्यकृदाढ्यो जितेन्द्रियः, वैद्यः शास्त्रे कर्मणि कुशलो निर्लोभः सत्यधर्मपरश्च, परिचारक आप्तःकुलीनोऽनलसः आतुरच्छन्दानुवर्ती च, औषधं नवं रसवीर्यादिसम्पन्नं च । तदुक्तं—"वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः । एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी विशारदः । सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक्पाद उच्यते ॥ आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि । उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् । अल्पमात्रं

होती है, चारों पाद भी अनुकूल नहीं होते तो वह रोगी अच्छा नहीं होता। उसे प्रत्याख्येय कहते हैं, ऐसे रोगी की औषध न करनी चाहिए। ३८।

असाध्य अर्श के उपद्रव

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा।
शोथोहृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥३९॥
हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः।
तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥ ४०॥
तृष्णारोचकशूलार्तमति प्रस्रुतशोणितम्।
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि॥ ४१॥

जिसके हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अंडकोष में शोथ हो, हृदय और पसलियों में पीड़ा हो, वह रोगी असाध्य हो जाता है। अथवा यदि हृदय और पसलियों में पीड़ा, मूर्च्छा, वमन, देह में पीड़ा, ज्वर और प्यास बहुत हो, गुदा पक गई हो तो वह रोगी बच नहीं सकता। अथवा प्यास बहुत हो, भोजन में रुचि न हो, रोगी पीड़ा से व्याकुल हो, रुधिर वहुत निकल गया हो, शोथ और अतीसार हो तो भी उसे असाध्य समझना चाहिए। ऐसा रोगी नहीं बचता। ३९—४१।

लिंगार्श इत्यादि

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च।
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥४२॥

लिंग आदि में भी अर्शरोग होता है, उनके लक्षण आगे

महावीर्यं गन्धवर्णरसान्वितम्॥ दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्यये। समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं पाद उच्यते॥ स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान् युक्तो व्याधितरक्षणे। वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः परिचरः स्मृतः" इति। एषा चतुष्पादसंपत्तिः। सा चायुषः शेषत्वाद्घटते। (आ० द०)

कहेंगे। नाभि में जो अर्शरोग होता है, अर्थात् नाभि में जो मांस के अंकुर निकलते हैं, वे कोमल, लिबलिबे और आकार में केंचुए के मुख के समान होते हैं। ४२।

चर्मकील की संप्राप्ति

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः॥ ४३ ॥

जब व्यान वायु दूषित होकर कफ को भी दूषित कर देता है तो त्वचा में कील के समान मांस के अंकुर निकलते हैं, उनको चर्म-कील कहते हैं। वे स्थिर और खरदरे होते हैं। (कुछ आचार्यों का मत है कि चर्मकील गुदा के समीप निकलते हैं, अन्यत्र नहीं निकलते)। ४३।

चर्मकील के लक्षण

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्त्रता।
श्लेष्मणा स्निग्धता चास्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥४४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽर्शोनिदानं समाप्तम् ॥ ५ ॥

वायु के विकार से जो चर्मकील निकलते हैं, वे कठोर होते हैं और उनमें पीड़ा होती है। पित्त के विकार से जो निकलते हैं, उनका मुँह कुछ काला होता है। कफ के विकार से जो निकलते हैं, वे चिकने होते हैं। उनका आकार गाँठ के समान और रंग देह के समान होता है। ४४।

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक और विलम्बिकानिदान

जठराग्नि चार प्रकार की होती है—

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

पाचकाग्नि चार प्रकार की होती है—मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम। कफ की अधिकता से मन्दाग्नि, पित्त की अधिकता से तीक्ष्णाग्नि, वायु की अधिकता से विषमाग्नि और तीनों दोषों की समता से समाग्नि होती है। १।

विषमादि अग्नि के लक्षण

विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान्।
करोत्यग्निस्तथा मन्दोविकारान्कफसंभवान् ॥२॥

पाचकाग्नि के विषम होने से वातज रोग, तीक्ष्ण होने से पित्तज रोग और मन्द होने से कफज रोग उत्पन्न होते हैं। २।

समाग्नि आदि के लक्षण

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते।
स्वल्पाऽपि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥३॥

कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते।
मात्राऽतिमात्राऽप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते।
तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥४॥

समाग्नि होने से उचित मात्रा में किया हुआ भोजन ठीक-ठीक पच जाता है। मन्दाग्नि में थोड़ा भोजन भी नहीं पचता। विषमाग्नि में कभी ठीक पच जाता है और कभी नहीं पचता। तीक्ष्णाग्नि में मात्रा से अधिक भी किया हुआ भोजन सुख से पच जाता है। इनमें समाग्नि श्रेष्ठ है। तीक्ष्णाग्नि से भस्मक रोग का ग्रहण नहीं करना चाहिए। भस्मक रोग अत्यन्त तीक्ष्णाग्नि से होता है। ३-४।

टिप्पणी—भस्मक रोग में कफ के क्षीण होने पर वात का अनुगामी होकर कुपित हुआ पित्त अग्निस्थान पर जाकर अग्नि को अत्यन्त तीव्र करके खाये हुए अन्न को बार-बार जल्दी-जल्दी पचा देता है। अन्न के पच जाने पर अग्नि रक्त आदि धातुओं को पचाना (जलाना) शुरू कर देती हैं, इससे दिन-दिन दुर्बलता होकर अंत में रोगी की मृत्यु हो जाती

है। इसमें भोजन करने पर शान्ति मिलती है और अन्न पच जाने पर क्षीणता होती है। इससे पिपासा, खाँसी, दाह, मूर्च्छा आदि व्याधियाँ होती हैं। यथा—

"नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम्। स्वोष्मणा पावकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति॥ तदा लब्धोबलो देहं विरुजेत् सानिलोऽनलः। अभिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः॥ पक्त्वाऽन्नं स ततो धातून् शोणितादीन् पचत्यपि। ततो दौर्बल्यमातङ्कान् मृत्युं चोपानयेन्नरम्॥ भुक्तेऽन्ने लभते शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति। तृट्कासदाहमूर्च्छाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः॥" —(च० चि० स्था० अ० १५)

अजीर्ण रोग के भेद

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः[1]॥५॥
अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्॥६॥

(अग्निमान्द्य और अजीर्ण परस्पर एक दूसरे की उत्पत्ति के कारण हैं, अतएव इसी प्रसंग में अजीर्ण के निदान कहते हैं।) पृथक् पृथक् दोष के विकार से तीन प्रकार के अजीर्ण होते हैं—कफ के विकार से आम, पित्त के विकार से विदग्ध और वायु के विकार से विष्टब्ध अजीर्ण होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि भोजन के ठीक न पचने से जो रस बनता है, वह रसशेष नाम का चौथा अजीर्ण है। यदि दिन-रात में भोजन-

१. उक्तंहि सुश्रुते—"उद्गारशुद्धावपि भक्तकांक्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य। रसावशेषेण तु सप्रसेकं चतुर्थमेतत्प्रवदन्त्यजीर्णम्" ॥ इति। रसशेषत इति रसाय शेषो रसशेषः, प्रकृतिविकृतिभावे चतुर्थी, यथा—यूपाय दारु, यूपदारु, अथवा रसशब्देन रसवानाहारोऽभिप्रेतो लक्षणया, तेन रसशब्देन रसवानाहारोऽभिधीयते, तस्य शेषोऽपरिणतिलक्षणो रसशेषः इति जेज्जटः। अथवा रसे शेषो रसशेषः, आहारजनिते रसे शेष आहारावयवोऽनुप्रविष्टोऽलक्ष्यमाणः क्षीरे नीरमिव रसशेषः इति गदाधरः।

पचे (और अफरा आदि कोई उपद्रव पेट में न हों) वह दिन-पाकि नाम का पाँचवाँ अजीर्ण है। जो अजीर्ण नित्य स्वाभाविक बना रहता हो वह प्राकृत नाम का छठा अजीर्ण है। (इस अजीर्ण में भी पेट में कोई उपद्रव नहीं होता। वामपार्श्व[1] शयन आदि इसके उपचार हैं)।५-६।

अजीर्ण के निदान

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च
संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्त-
मन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ७ ॥
ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन
लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान-
मन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ८ ॥
(मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः ॥ ९ ॥)

बहुत पानी पीने से, असमय में भोजन करने से, अधिक कुसमय अथवा स्वल्प भोजन करने से, मलमूत्र आदि का वेग रोकने से, दिन में सोने से अथवा रात में जागने से अजीर्ण हो जाता है। तब ठीक समय पर, अनुकूल और हल्का भोजन करने से भी वह नहीं पचता। (अब मानस दोष से उत्पन्न अजीर्ण के निदान कहते हैं) ईर्ष्या, भय, क्रोध,

---

१. उक्तं हि सुश्रुते—"भुक्त्वा पादशतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्। शब्दरूपरसस्पर्शगन्धांश्च मनसः प्रियान्। भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥"

२. 'बहु स्तोकमकाले वा भोजनं विषमाशनम्।'

लोभ और द्वेष से तथा पीड़ा और दुःख से भी भोजन ठीक नहीं पचता। ७-८। (चिन्ता, शोक, भय, क्रोध और दुःख से पीड़ित होने से तथा शय्या पर पड़े रहने से, अथवा जागरण करने से उचित मात्रा में किया हुआ पथ्य भोजन भी नहीं पचता। ९।)

आमाजीर्ण के लक्षण

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ॥ १० ॥

आमाजीर्ण में शरीर और हृदय भारी मालूम होता है, उबकाई आती है, गाल और आँखों के गोलक सूज जाते हैं और जैसा अन्न खाया जाता है वैसी ही अविदग्ध (खट्टापन-रहित) डकारें आती हैं। १०।

विदग्धाजीर्ण के लक्षण

बिदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ ११ ॥

विदग्धाजीर्ण में भ्रम, प्यास, मूर्च्छा आदि पित्त से होनेवाले अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं। खट्टी और धुवाँइँध डकारें आती हैं। पसीना आता है और जलन होती है। ११।

विष्टब्धाजीर्ण के लक्षण

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ १२ ॥

विष्टब्धाजीर्ण में शूल और अफरा आदि सब वातज वेदनाएँ होती हैं। मल और अपान वायु की रुकावट, शरीर का जकड़ जाना, मूर्च्छा और अंगों में पीड़ा, ये लक्षण होते हैं। १२।

रसशेषाजीर्ण के लक्षण

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।

रसशेष अजीर्ण में खाने की इच्छा नहीं होती, हृदय में घबराहट और भारीपन रहता है।

अजीर्ण के उपद्रव

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ।। १३ ।।

मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, लार का वहना, देह में पीड़ा और भ्रम, ये उपद्रव अजीर्ण में होते हैं, और अजीर्ण की अतिवृद्धि होने पर मृत्यु भी हो जाती है। १३।

अधिक भोजन करना अजीर्ण का हेतु है: —

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ।। १४ ।।

जो मूर्ख मनुष्य पशुओं की तरह अपरिमित, पेट की मात्रा से बहुत अधिक भोजन, करते हैं, उनको विसूचिका आदि अनेक रोगों का कारण अजीर्ण हो जाता है। १४।

अजीर्ण से होनेवाले रोग

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ।। १५ ।।

आम, विष्टब्ध और विदग्ध, ये तीन प्रकार के जो अजीर्ण ऊपर कह चुके हैं, इनसे विसूची, अलसक और विलम्बिका रोग हो जाते हैं। १५।

विसूची शब्द की निरुक्ति

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ।
यत्राजीर्णेन सा वद्यैर्विसूचीति निगद्यते ।। १६ ।।
न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ।। १७ ।।

जिस रोग में अजीर्ण के कारण वायु कुपित होकर देह भर में सुई कोंचने के समान पीड़ा उत्पन्न कर देती है, उसको वैद्य विसूचिका[१] कहते हैं। १६। (आहार विधि के ज्ञाता) विद्वान् व्यक्ति, जो नियमानुसार उचित मात्रा में भोजन करते हैं, उनको विसूचिका रोग नहीं होता। परन्तु मूर्ख, भोजन के लोभी, इन्द्रियाँ जिनके बश में नहीं हैं, उनको यह रोग हो जाता है। १७।

विसूची रोग के लक्षण

मूर्च्छाऽतिसारो वमथुः पिपासा
शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च
भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥१८॥

विसूचिका के लक्षण—बेहोशी, बारबार दस्त आना, वमन, पिपासा, देह में शूल, शिर में चक्कर, जाँघों में ऐंठन, जँभाई, जलन, शरीर के अंगों का रंग बदल जाना, कँपकँपी, हृदय और शिर में पीड़ा। १८।

अलसक के लक्षण

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति।
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति॥ १६ ॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥२०॥

अलसक के लक्षण—पेट का अत्यन्त फूलना, मूर्च्छा, पीड़ा से

---

१. यदुक्तं तन्त्रान्तरे—'विविधैर्वेदनाभेदैर्वाय्वादेभृ शकोपतः। सूचीभिरिव गात्राणि भिनत्तीति विसूचिका' इति।

२. यदुक्तं तन्त्रान्तरे—"प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न विपच्यते। आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः॥"

चिल्लाना, अपानवायु रुकने से कुक्षि का ऊपर को उठ जाना, मल, मूत्र, अपानवायु तथा उद्गारों की अत्यन्त रुकावट। १६।२०।

टिप्पणी—अन्य आचार्य अलसक के सम्बन्ध में कहते हैं कि 'आहार न ऊपर जाता है (न वमन) न नीचे उतरता है (न दस्त) पचता है। आलसी की तरह आमाशय में ही पड़ा रहता है।

विलम्बिका के लक्षण

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां
प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य।
विलम्बिकां[1] तां भृशदुश्चिकित्स्या-
माचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥ २१॥

जिस मनुष्य का खाया हुआ अन्न कुपित वायु और कफ के कारण दूषित होकर ऊपर और नीचे न जा सके, अर्थात् न वमन हो और न दस्त होकर नीचे उतरे, उसे प्राचीन आयुर्वेदशास्त्रज्ञ विलम्बिका रोग कहते हैं। इसका उपाय बहुत कठिन है। २१।

अजीर्णजन्य आम के अन्य कार्य

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः।
दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च॥२२॥

वायु द्वारा प्रेरित आम (आहार का अपक्वरस) जिस स्थान में स्थित हो जाता है, वहाँ विशेष पीड़ा उत्पन्न करता है। और (इससे) शरीर में वातादि जो दोष प्रकुपित होते हैं उनके लक्षण (पीड़ा, दाह, भारीपन आदि) तथा आम से उत्पन्न विकार (अजीर्ण, अलसक आदि के लक्षण) प्रकट होते हैं। २२।

---

१. विलम्बिका और अलसक दोनों रोगों में वात और कफ की प्रबलता होती है, दोनों में आहार का न अधः और उर्ध्व-गमन होता और न पचता है। किन्तु भेद यह है कि अलसक में तीव्र पीड़ा आदि अन्य उपद्रव भी होते हैं। यदुक्तं —"पीडितं मारुतेनान्नं श्लेष्मणा रुद्धमन्तरा। अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम्। शूलादीन् कुरुते तीव्रांश्छर्द्यतीसारवर्जितान्।"

विसूची और अलसक के असाध्य लक्षण

य: श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो
वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्र: ।
क्षामस्वर: सर्वविमुक्तसन्धि-
र्यायान्नर: सोऽपुनरागमाय ॥ २३ ॥

जिसके दाँत, ओष्ठ और नख काले पड़ गये हों, चेतना-शक्ति कम हो गई हो, वमन होता हो, आँखों की पुतलियाँ चढ़ गई हों (नेत्र गढ़े में घुस गये हों), स्वर क्षीण हो गया हो, हड्डियों की सन्धियाँ शिथिल हो गई हों, वह विसूचिका और अलसक का रोगी नहीं बचता । २३ ।

आहार जीर्ण होने के लक्षण

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचित: ।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥२४॥

डकार ठीक आवे, धुवाँइँध या खट्टी डकारें न हों, शरीर और मन में उत्साह हो, मल-मूत्र वेग के साथ और आहार के अनुरूप हो, शरीर और कोष्ठ हल्का हो, भूख और प्यास लगे, ये लक्षण भोजन पच जाने के हैं । २४ ।

विसूचिका के घोर उपद्रव

निद्रानाशोऽरति: कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता ।
अमी ह्युपद्रवा घोरा विसूच्यां पञ्च दारुणा: ॥२५॥

निद्रा न आवे, मन किसी विषय में न लगे, कम्प, मूत्राघात (पेशाब का रुक जाना) और बेहोशी हो ये विसूचिका के पाँच उपद्रव बड़े भयानक होते हैं । २५ ।

अजीर्ण प्राय: आहार की विषमता से होता है—

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ।
तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥२६॥

प्रायः आहार की विषमता से मनुष्यों को अजीर्ण होता है। वह बहुत से रोगों का मूल कारण है। उसका विनाश होने से उसके द्वारा उत्पन्न सब रोग नष्ट होते हैं। २६।

अजीर्ण के सामान्य लक्षण

ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः।
विबन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥२७॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽग्निमान्द्याजीर्णविसूचिकालसकविलम्बिकानिदानं समाप्तम्। ६।

देह में आलस्य और भारीपन, मल और अधोवायु का अवरोध, देह में चक्कर आना, दस्त होना अथवा न होना, ये अजीर्ण के सामान्य लक्षण हैं। २७।

क्रिमिनिदान

क्रिमि रोग के भेद

क्रिमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥
नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः।

शरीर में दो प्रकार के कीड़े उत्पन्न होते हैं—एक बहिर्भाग में और दूसरे अभ्यन्तर भाग में। जन्मभेद से वे चार प्रकार के होते हैं—शरीर के ऊपर के मैल से, कफ से, रुधिर से और विष्ठा से उनका जन्म होता है। नामभेद से वे २० प्रकार के हैं। इनके नाम आगे कहेंगे। बाह्यक्रिमि शरीर के ऊपर के मैल से उत्पन्न होते हैं। १।

टिप्पणी—इन २० क्रिमियों के अतिरिक्त और क्रिमि भी होते हैं, किन्तु ये कोई उपद्रव नहीं करते और अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। चरकसंहिता में कहा भी है "इह खल्वग्निवेश ! विंशतिविधाः क्रिमयः नानाविधेन प्रविभागेनान्यत्र सहजेभ्यः।" (च० चि० स्था० अ० ७)

बाह्य क्रिमियों के लक्षण

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ २ ॥

बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः ॥
द्विधा ते कोठपिडकाकण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ॥३॥

शरीर के ऊपर के मैल से जो कीड़े उत्पन्न होते हैं उनको जूँ और लीख कहते हैं। वे तिल के बराबर होते हैं, उनका रंग और आकार भी तिल के ही समान होता है। वे कपड़ों और बालों में रहते हैं। जूँ के कई पैर होते हैं और लीख बहुत छोटी होती है। नामभेद से ये दो प्रकार के हुए। इनके काटने से खुजली होती है, चकत्ते पड़ जाते हैं, फुंसियाँ और दाने निकलते हैं। २-३।

क्रिमिरोग के निदान

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो
द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ।
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो
विरुद्धभुक् संलभते क्रिमींस्तु ॥४॥

अजीर्ण में भोजन करने से, नित्य खट्टी और मीठी चीजें अधिक खाने से, पतली चीजें बहुत खाने से, आटे और गुड़ से बने हुए पुआ आदि अधिक खाने से, किसी प्रकार का व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, परस्पर विरुद्ध (जैसे एक साथ दूध और मछली आदि) भोजन करने से, अभ्यन्तर (भीतरी) क्रिमि उत्पन्न होते हैं। ४।

किन कारणों से कैसे क्रिमि उत्पन्न होते हैं:—

माषपिष्टाम्ललवणगुडशाकैः पुरीषजाः ।
मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ ५ ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ।

उड़द की पिट्ठी से बनी हुई चीजें, खटाई, नमक, गुड़ और कच्चा हरा (चने आदि का) साग अधिक खाने से (पक्काशय में) विष्ठा में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। मांस, मछली, गुड़, दूध, दही अथवा सिरका अधिक खाने से (आमाशय में) कफ में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। परस्पर विरुद्ध भोजन करने से, अजीर्ण में भोजन करने से अथवा चने आदि का हरा साग अधिक खाने से रुधिर में कीड़े उत्पन्न होते हैं।५।

आभ्यन्तर क्रिमि के लक्षण

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ ६ ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्चसंजातक्रिमिलक्षणम् ।

ज्वर, विवर्णता (शरीर का रंग पीला या काला हो जाना), आमाशय या पक्काशय में पीड़ा होना, हृद्रोग (उबकाई आदि), अंगों में पीड़ा, चक्कर आना, अरुचि होना, दस्त आना, ये लक्षण भीतर कीड़े उत्पन्न होने पर होते हैं। ६।

कफज क्रिमि के लक्षण

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ॥ ७ ॥
पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ।
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ॥ ८ ॥
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ।
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः ॥ ९ ॥
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ।

हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ॥ १० ॥
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ।

कफ से आमाशय में उत्पन्न कीड़े बढ़ने पर ऊपर-नीचे सब ओर फैल जाते हैं। उनमें कोई तो चर्मलता (ताँति) के समान, कोई केंचुए के समान, कोई धान के अंकुर के समान, (परिधि में) छोटे, (लम्बाई में) कम और अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। उनका रंग सफेद या लाल होता है। नामभेद से वे सात प्रकार के होते हैं—अन्त्राद, हृदयाद, महागुद, चुरु, दर्भकुसुम और सुगन्ध। इन कीड़ों के उत्पन्न होने पर ये उपद्रव होते हैं—उबकाई आती है, कभी-कभी मूर्च्छा आ जाती है, वमन और ज्वर होता है, पेट फूलता है, शरीर कृश हो जाता है, छींकें आती है और पीनस हो जाता है। ७–१०।

टिप्पणी—सामान्य क्रिमियों की संख्या २० होने के विषय में तो आचार्य चरक और सुश्रुत में कोई भेद नहीं है; परन्तु सुश्रुत ने कफज ६, पुरीषज ७ और रक्तज ७ माने हैं एवम् परस्पर के नामों का भी भेद है। जैसे सुश्रुत में कफज क्रिमियों के नाम—दुर्गपुष्पा, महापुष्पा, प्रलूना, पिच्चिरा, पिपीलिका, दारुणा। पुरीषज के नाम—अजवा, विजवा, किप्पा, चिप्पा, गण्डूपद, चुरव, विमुख। रक्तज के नाम—केशाद, रोमाद, नखाद, दन्ताद, किक्किसा, कुष्ठजा, परिसर्प। इनके सम्बन्ध में अन्य आचार्य कहते हैं कि दोनों में नाममात्र का अंतर है, वास्तव में एक हैं। परन्तु यह उचित नहीं मालूम देता। वास्तव में कुछ तो एक हैं और कुछ भिन्न है। इसमें कोई दोष नहीं आता; क्योंकि बहुत प्रकार के तो दोनों स्वीकार करते हैं। कुछ का अन्वेषण आचार्य चरक ने किया, कुछ का सुश्रुत ने। और कोई भेद नहीं हैं।

रक्तज क्रिमि के लक्षण

रक्तवाहिशिरास्थानरक्तजा जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ।
केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः समसौरसमातरः ॥ १२ ॥

रुधिर से जो कीड़े उत्पन्न होते हैं वे रक्तवाहिनी नाड़ियों में रहते हैं (बड़े होने पर सब तरफ फल जाते हैं)। वे बहुत छोटे और गोल होते हैं। रंग ताँबे के समान होता है। उनके पैर नहीं होते। कोई-कोई इतने छोटे होते हैं कि देखे नहीं जा सकते। नामभेद से वे छः प्रकार के होते हैं—केशाद, रोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और माता। इन कीड़ों के उत्पन्न होने पर कुष्ठ रोग हो जाता है। ११-१२।

पुरीषज क्रिमि के लक्षण

पक्काशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः।
प्रवृद्धाः स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥१३॥
तदाऽस्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ १४ ॥
ते पञ्च नाम्नः क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः।
सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति हि ॥१५॥
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः।
रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने क्रिमिनिदानं
समाप्तम् ॥ ७ ॥

पक्काशय में विष्ठा से कीड़े उत्पन्न होते हैं और विष्ठा के साथ निकलते हैं; किन्तु जब बढ़ जाते हैं तो ऊपर चढ़कर आमाशय में पहुँचते हैं। तब डकार और श्वास की वायु में विष्ठा की सी दुर्गन्ध आती है। वे कीड़े लम्बे, गोल, पतले, मोटे, नीले, पीले, सफेद और काले होते हैं। नाम-भेद से ये पाँच प्रकार के होते हैं—ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, सशूल और लेलिह। जब ये कीड़े आमाशय में पहुँचते हैं तब ये उपद्रव होते हैं—पतले दस्त आते हैं, नाभि के नीचे पीड़ा होती है, दस्त साफ नहीं होता,

शरीर दुर्बल हो जाता है, त्वचा रूखी और कठोर हो जाती है, देह पीली पड़ जाती है, रोमांच होता है, मन्दाग्नि होती है, गुदा में खुजली होती है। १३-१६।

टिप्पणी—इन सब क्रिमियों के नाम कुछ निरर्थक और कुछ सार्थक होते हैं।

पाण्डुरोग, कामला, कुम्भकामला और हलीमकनिदान

पाण्डुरोग के भेद

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः।
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः॥ १॥

पाण्डुरोग पाँच प्रकार का होता है—वात के प्रकोप से, पित्त के प्रकोप से, कफ के प्रकोप से, तीनों दोषों के कुपित होने से और मिट्टी खाने से पाण्डुरोग होता है। १।

पाण्डुरोग की संप्राप्ति

व्यायाम[1]मम्लं लवणानि मद्यं
मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्तं
दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति॥ २॥

अधिक व्यायाम करने से, खटाई, नमक और खार अधिक खाने से, मदिरा अधिक पीने से, मिट्टी खाने से, दिन में सोने से, अत्यन्त तीक्ष्ण वस्तुएँ (राई और मिर्च आदि) अधिक खाने से तीनों दोष कुपित होकर रुधिर को (त्वचा, रस और मांस को भी) दूषित करके त्वचा को पाण्डुवर्ण कर देते हैं। २।

१, 'व्यवायमम्लं' इति पाठान्तरम्। व्यवायः का अर्थ स्त्रीसम्भोग है।

पाण्डुरोग के पूर्वरूप

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसाद-
मृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

पाण्डुरोग होने के पहले ये लक्षण होते हैं—त्वचा फटती है, थूक आता है, अंगों में पीड़ा होती है, मिट्टी खाने की इच्छा होती है, आँखों के नीचे सूजन होती है, मल-मूत्र पीला होता है, भोजन ठीक नहीं पचता, इन लक्षणों से पाण्डुरोग का आरम्भ समझना चाहिए। ३।

वातज पाण्डुरोग के लक्षण

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता ।
वातपाण्ड्वामये तोदकम्पानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

वातज पाण्डुरोग में त्वचा, मूत्र और नेत्र आदि रूक्ष, काले या कुछ लाल हो जाते हैं (किन्तु पीलापन अवश्य रहता है), मल भी ऐसा ही होता है। देह में पीड़ा और कँपकँपी होती है, भ्रम आदि (भेदन और शूल आदि) होते हैं और पेट फूलता है। ४।

पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥५॥

पित्त के विकार से जिसको पाण्डुरोग होता है उसके नेत्रों का और मल-मूत्र का रंग पीला होता है, दाह, प्यास और ज्वर होता है। पतले (फटे से) दस्त होते हैं, रोगी अत्यन्त पीला हो जाता है। ५।

कफज पाण्डुरोग के लक्षण

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

कफ के विकार से जिसे पाण्डुरोग होता है उसे कफ बहुत निकलता है, देह में शोथ, तन्द्रा, आलस्य और भारीपन होता है। त्वचा, मूत्र, नेत्र और मुख का रंग सफेद हो जाता है। ६।

सन्निपातज पाण्डुरोग

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ७

ज्वर, अरुचि, उबकाई, वमन, प्यास, अनायास थकावट, क्षीणता और इन्द्रियों की शक्ति का विनाश, ये उपद्रव हों। तीनों दोषों[१] के प्रकोप से पाण्डुरोग हुआ हो तो रोग असाध्य समझना चाहिए। बुद्धिमान् वैद्य उस रोगी की चिकित्सा न करे। ७।

मृत्तिकाजनित पाण्डुरोग की संप्राप्ति

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः ।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ ८ ॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं च रूक्षयेत् ।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यौजसी तथा ।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥

मिट्टी खाने का स्वभाव जिसे पड़ जाता है उसके तीनों दोषों में से कोई दोष कुपित हो जाता है। जैसे कसेली मिट्टी खाने से वायु कुपित होता है, खारी मिट्टी खाने से पित्त और जिसमें मधुर

---

१. उक्तं हि चरके—"सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम्। त्रिलिंगं प्रकुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम्" इति।

रस अधिक होता है, उस मिट्टी के खाने से कफ कुपित होता है। मिट्टी में रूक्ष गुण होता है, इसलिए वह खाये हुए अन्न को और रस रुधिर आदि धातुओं को रूक्ष कर देती है। भोजन ठीक नहीं पचता, इसलिए अपक्व रस, रसवाहिनी नाड़ियों में जाकर, रुक जाता है। और इन्द्रियों का बल नष्ट करके तेज (कान्ति या ऊष्मा), वीर्य और ओज[1] (सब धातुओं का सार) शक्ति का विनाश करता है। तब बल, वर्ण और जठराग्नि को नष्ट करनेवाले पाण्डुरोग की शीघ्र उत्पत्ति हो जाती है। ८-१०।

मृत्तिकाजनित पाण्डुरोग के लक्षण

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः।
क्रिमिकोष्ठोऽतीसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥११॥

किसी प्रकार का भी पाण्डुरोग होने पर जब कोष्ठ में कीड़े पैदा हो जाते हैं तब ये लक्षण[2] प्रकट होते हैं। आँखों के नीचे, भौंह, गाल, नाभि, लिंग और पैरों में सूजन हो जाती है। रुधिर और कफ मिला हुआ दस्त होता है। ११।

टिप्पणी—यह 'जेज्जट आचार्य' का मत है। अन्य आचार्यों के मत से ये लक्षण मृत्तिकाजनित पाण्डुरोग के हैं, क्योंकि यह श्लोक मृत्तिकाजनित पाण्डुरोग की संप्राप्ति के अनन्तर पढ़ा गया है।

आचार्य विदेह ने मृत्तिकाभक्षणजन्य पाण्डुरोग के ये लक्षण कहे हैं—तन्द्रा, आलस्य, श्वास, कास, शोष (शरीर का सूख जाना), चक्कर, अरुचि, पैर, मुख और हाथों पर सूजन, दुबलापन और मन्दाग्नि।

असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति।
कालप्रकर्षाच्छूनानां यो वा पीतानि पश्यति ॥१२॥

---

१. ओजः सर्वधातुसारभूतं हृदयस्थमिति पराशरः।

२. विदेह ने मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डुरोग के लक्षण इस प्रकार कहे हैं—"मृद्भक्षणाद् भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीडितः। सश्वासकासशोषार्शः सादारुचिसमन्वितः। शूनपादाननकरः कृशाङ्गः कृशपावकः॥"

बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते ।
दीनः श्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृडर्दितः ॥१३॥
स नास्त्यसृक्क्षयाद्यश्च पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात् ।
पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत् ।
पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥१४॥

अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं
म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् ।
गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च
शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् ॥
विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी
तथाऽतिसारज्वरपीडितं च ॥ १५ ॥

पाण्डुरोग पुराना होने पर सब धातुएँ जब रूक्ष हो जाती हैं तो रोग असाध्य हो जाता है। ऊपर कहे हुए अंगों में जब शोथ हो जाय और रोगी सब वस्तुओं को पीले रंग की देखने लगे तब चाहे रोग शीघ्र ही क्यों न हुआ हो उसे भी असाध्य समझना चाहिए। दस्त बँधा हुआ, (कठिन) थोड़ा, हरा और कफ मिला हुआ होता हो तो भी असाध्य लक्षण हैं। रोगी शिथिल हो गया हो, देह कुछ श्वेत हो गई हो, वमन, मूर्च्छा और प्यास अधिक हो तो भी असाध्य समझना चाहिए। रुधिर के क्षीण हो जाने से जिस पाण्डुरोगी की देह में कुछ श्वेतता आ गई हो वह भी रोगी नहीं बचता। जिसके दाँत, नख और नेत्र पीले हो गये हों, सब वस्तुओं को पीली देखता हो, उस पाण्डुरोगी की मृत्यु हो जाती है। बाहु, जंघा और शिर में शोथ हो गया हो और देह का मध्यभाग दुर्बल हो, अथवा देह के मध्यभाग में शोथ हो, सिर, जंघा और बाहु में दुर्बलता हो तो भी रोग असाध्य समझना चाहिए। गुदा, लिंग,

अंडकोष में शोथ हो, बेहोशी हो जाती हो, उस समय रोगी मुर्दे के समान हो जाता हो, तो भी असाध्य है। जिस पाण्डुरोगी को ज्वर और अतिसार हो वह भी असाध्य है। यश चाहनेवाले चिकित्सक को ऊपर कहे हुए असाध्य लक्षणों से युक्त पाण्डुरोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। १२-१५।

कामला के लक्षण

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥१६॥
हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ १७ ॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ १८ ॥

जो पाण्डुरोगी पित्त बढ़ानेवाली वस्तुओं का अधिक सेवन करता है उसका पित्तदोष रुधिर और मांस को दूषित करके कामलारोग उत्पन्न कर देता है। उसके नेत्र, त्वचा, नख और मुख हल्दी के समान पीले हो जाते हैं। मल-मूत्र लाल और पीला मिला हुआ होता है, रोगी मेंढक के समान पीला हो जाता है, तब ये उपद्रव होते हैं—इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है, दाह, अन्न का न पचना, दुर्बलता, देह में पीड़ा और अरुचि होती है। यह कामला-रोग पित्त की अधिकता से होता है। इसका स्थान कोष्ठ और रुधिर आदि धातुएँ हैं, अतः यह रोग कोष्ठाश्रय और शाखाश्रय भेद से दो प्रकार का है। १६-१८।

टिप्पणी—स्वतंत्र भी कामलारोग होता है। पित्त बढ़ानेवाले पदार्थों का अधिक सेवन करने से (पाण्डुरोग न होने पर भी) कामला रोग हो जाता है! "भवेत् पित्तोल्बणस्यासौ पाण्डुरोगादृतेऽपि च"—वा० नि० स्था० अ० १३।

कुम्भकामला के लक्षण

कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ।

कोष्ठाश्रय कामलारोग बहुत दिनों तक बना रहने पर तथा धातुओं के रूक्ष हो जाने पर कष्टसाध्य हो जाता है, इसे कुम्भकामला कहते हैं । 'कुम्भ' कोष्ठ का नाम है और कोष्ठ इस रोग का स्थान है, इसलिए इस रोग का नाम कुम्भ-कामला है ।

असाध्य कामला के लक्षण

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ॥ १६ ॥
सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ।
दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥ २० ॥
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ।

जिस कामलारोगी का मल-मूत्र काला और पीला मिला हुआ होता हो, अंगों में शोथ हो गया हो, मुख और नेत्र लाल हो गये हों, वमन और मलमूत्र का रंग भी लाल हो, रोगी बेहोश हो जाता हो तो उसे असाध्य समझना चाहिए । दाह, अरुचि और प्यास अधिक हो, पेट फूलता हो, हर वक्त नींद सी लगी रहती हो, मोह होता हो, जठराग्नि और चेतना नष्ट हो गई हो, वह भी रोगी असाध्य होता है । शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है । १६-२० ।

असाध्य कुम्भकामला के लक्षण

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ॥ २१ ॥
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ।

वमन, अरुचि, उबकाई, ज्वर, अनायास थकावट, श्वास, खाँसी और दस्त जिसे आते हों वह कुम्भकामला का रोगी असाध्य होता है । २१ ।

हलीमक के लक्षण

यदा तु पाण्डूवोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः २२॥
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ।
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः ।
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने पाण्डुरोगकामला-
कुम्भकामलाहलीमकनिदानं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जब पाण्डुरोगी के देह का रंग हरा (शाक के पत्ते का सा), नीला या पीला हो गया हो, बल और उत्साह नष्ट हो गया हो, तन्द्रा (हर वक्त नींद-सी लगी रहती हो), मन्दाग्नि और मन्द ज्वर हो, स्त्री-प्रसंग की इच्छा न होती हो, अंगों में पीड़ा, दाह, प्यास, अरुचि और भ्रम हो तो उसे हलीमक रोग समझना चाहिए । यह वात और पित्त के प्रकोप से होता है । २२-२३ ।

रक्तपित्तनिदान

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरातसेवितैः ।
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥

संप्राप्ति

पित्तं विदग्धंस्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ।
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्योनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

धूप में बहुत रहने से, अधिक व्यायाम अथवा परिश्रम करने से, अधिक शोक करने से, अधिक मार्ग चलने से, बहुत मैथुन करने से, तीक्ष्ण पदार्थ (मिर्च आदि) बहुत खाने से, आग तापने से, क्षार,

नमक, खटाई और लाल मिर्च बहुत खाने से पित्त कुपित हो जाता है और वह अपने गुणों (तीक्ष्ण आदि गुणों) के कारण रुधिर को भी शीघ्र ही कुपित कर देता है। तब वह रक्त और पित्त ऊपर या नीचे के मार्गों से निकलने लगता है। ऊपर के मार्ग नाक, आँख, कान और मुँह तथा नीचे के मार्ग पुरुषों के लिंग और गुदा, स्त्रियों की योनि और गुदा से निकलता है। पित्त का अधिक प्रकोप होने से रोमकूपों से भी रुधिर निकलने लगता है। इस रोग को रक्तपित्त कहते हैं। १-३।

रक्तपित्त के पूर्वरूप

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः।
लौहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति॥४॥

इस रोग के उत्पन्न होने के पहले ये लक्षण प्रकट होते हैं—अंगों में पीड़ा होती है, ठंढी चीजें खाने और ठंढक में रहने की इच्छा होती है, गले में धुआँ भरा सा मालूम देता है, और वमन होती है, लोह को तपाने के समय जैसी गन्ध होती है वैसी गन्ध रोगी के श्वास में आती है। ये रक्तपित्त के पूर्वरूप हैं। ४।

कफज रक्तपित्त के लक्षण

सान्द्रं सपाण्डुसस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम्।

गाढ़ा, चिकना, पाण्डुवर्ण (सफेद और पीला मिला हुआ), पिच्छिल और कफयुक्त रुधिर निकलता हो तो कफज रक्तपित्त समझना चाहिए।

वातज रक्तपित्त के लक्षण

श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम्॥५॥

नीले रंग का अथवा अरुण (हल्का लाल) रंग का, फेन सहित, पतला, और रूक्ष रुधिर निकलता हो तो वातज रक्तपित्त समझना चाहिए। ५।

पैत्तिक रक्तपित्त के लक्षण

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंन्निभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥
संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।

रुधिर वटादि क्वाथ के समान रंग का हो अथवा कोयले के समान काला हो, गोमूत्र के समान अथवा चिकना और काला हो, घर के धुएँ के समान अथवा अंजन (सुरमा) के समान हो तो पित्तज रक्तपित्त समझना चाहिए । यदि दो दोषों के लक्षण मिलते हों तो द्वन्द्वज और तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो सान्निपातिक रक्तपित्त जानना चाहिए । ६ ।

संसर्गविशेष से मार्गभेद

ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम् ।
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते ॥ ७ ॥

इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण पित्तदोष का विकार है। पित्त के साथ जब कफ का संसर्ग होता है तब मुँह-नाक आदि ऊपर के मार्गों से रुधिर निकलता है । यदि पित्त के साथ वायु का संसर्ग होता है तो अधोभाग अर्थात् लिंग और गुदा (स्त्रियों की योनि और गुदा) से रुधिर निकलता है । यदि पित्त के साथ कफ और वायु दोनों का संसर्ग होता है तो ऊपर और नीचे के सब मार्गों से रुधिर निकलता है । ७ ।

साध्यासाध्य विचार

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ।

नाक-कान आदि ऊपर के मार्गों से रुधिर निकलता हो तो रोग साध्य, गुदा आदि अधोमार्ग से निकलता हो तो याप्य और ऊपर-नीचे सब मार्गों से निकलता हो तो असाध्य समझना चाहिए ।

साध्य रक्तपित्त के लक्षण

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥ ८ ॥

रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ।

रोगी बलवान् हो, रोग थोड़े दिनों का हो, रुधिर मुँह-नाक आदि ऊपर के एक ही मार्ग से निकलता हो; रुधिर का वेग अधिक न हो, शिशिर अथवा हेमन्तऋतु हो, ११ वें श्लोक में कहे हुए दुर्बलता आदि उपद्रव न हों तो रोग साध्य समझना चाहिए । ८ ।

टिप्पणी—एक दोषानुग और अल्प लक्षणयुक्त हो तभी एक मार्ग आनेवाला साध्य है । परन्तु दो दोषानुग और बहुत लक्षणयुक्त एक मार्ग से आने पर भी साध्य नहीं है । अधोमार्गगामी रक्तपित्त एक दोषानुग और अल्प लक्षणयुक्त होने पर भी याप्य है और जब अधोगामी रक्तपित्त बहुत उपद्रव युक्त पुराना हो तथा त्रिदोषज भी हों तो असाध्य है ।

दोषभेद से साध्यासाध्य विचार

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥ ९ ॥
यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥१०॥

एक दोष की अधिकता से रोग साध्य, दो दोषों की अधिकता से याप्य और तीनों दोषों की अधिकता से असाध्य होता है । यदि रोगी की जठराग्नि मन्द हो गई हो, रुधिर अत्यन्त वेग से निकलता हो, व्याधियों के कारण शरीर क्षीण हो गया हो, रोगी वृद्ध हो और भोजन न करता हो तो भी असाध्य समझना चाहिए । ९-१० ।

रक्तपित्त के उपद्रव

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छाः
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।
तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं
भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ११

शरीर दुर्बल हो जाता हो, श्वास, खाँसी और ज्वर आता हो, तो उबकाई आती हो, (धतूरे का फल खाने के समान) नशा बना रहता

हो, पांडु (देह का रंग कुछ पीला और सफेद हो जाना), दाह और मूर्च्छा होती हो, भोजन के बाद दाह बहुत बढ़ जाता हो, घबराहट होती हो, हृदय में अत्यन्त पीड़ा निरन्तर होती हो, प्यास, पतले दस्त, सिर में जलन, थूक में दुर्गन्ध आती हो, भोजन में अरुचि रहती हो, खाया हुआ अन्न पचता नहीं हो, ये रक्तपित्त के उपद्रव हैं इसमें रक्त विकृत वर्ण का निकलता है। ११।

असाध्य रक्तपित्त के लक्षण

मांसप्रक्षालनाभं कुथितमिव च यत्कर्दमाम्भोनिभंवा,
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्।
यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति१२
येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः।
पश्येद्दृश्यं वियच्चापि यच्चासाध्यमसंशयम्॥ १३॥
लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः।
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः॥ १४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने रक्तपित्तनिदानं समाप्तम्॥ ९॥

मांस के धोवन के समान विकृत रुधिर निकले और उसमें सड़ जाने की सी दुर्गन्ध भी आवे, रक्त कीचड़ मिले हुए पानी के समान हो, मेद अथवा पीब मिला हुआ रुधिर निकले, यकृत् के रंग का अथवा पके हुए जामुन के रंग का रुधिर निकले, अंजन (सुरमा) के समान अत्यन्त काला अथवा अत्यन्त नीला, मुर्दे की गन्ध के समान दुर्गन्धवाला रुधिर निकले अथवा इन्द्र-धनुष के समान अनेक रङ्ग का रुधिर निकले और ऊपर कहे हुए दुर्बलता आदि उपद्रव भी हों तो असाध्य रक्तपित्त समझना चाहिए। रक्तपित्त के रोगी को यदि सब पदार्थ रक्तवर्ण दीखते हों, आकाश भी रक्तवर्ण जान पड़ता हो तो निस्सन्देह वह रोगी असाध्य है। जिसकी आँखें लाल हों, जो

बार-बार रुधिर का वमन करता हो और जिसकी डकार के साथ रुधिर निकलता हो वह रोगी बच नहीं सकता। १२---१४।

टिप्पणी—कई आचार्य "पश्येद्दृश्यं वियच्चापि" इस पद का अर्थ 'दृश्य पदार्थों तथा आकाश को नहीं देखता' है और कई, आकाश को भी साक्षात् देखना, वह असाध्य है, ऐसा कहते हैं।

राजयक्ष्मक्षतक्षीणनिदान

राजयक्ष्मा के निदान

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्॥ १॥

मल-मूत्र और अधोवायु के वेग रोकने से, धातुओं के क्षीण होने से, साहस के काम (बलवान् के साथ मल्लयुद्ध आदि) और विषम भोजन करने से, इन चार कारणों से तीनों दोष कुपित होकर यक्ष्मारोग उत्पन्न करते हैं। १।

राजयक्ष्मा की संप्राप्ति

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु।
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः॥ २॥

कफप्रधान दोषों के कोप से रसवाहिनी नाड़ियों का मार्ग रुक जाता है। इससे सभी धातुएँ (पोषक पदार्थों के अभाव से) क्षीण हो जाती हैं। तब मनुष्य सूख जाता है। इसे अनुलोमक्षय कहते हैं। अथवा अति मैथुन से वीर्य क्षीण हो जाने के बाद पूर्ववर्ती सब धातुएँ क्षीण हो जाती हैं, तब मनुष्य सूख जाता है। यह प्रतिलोम-क्षय है। २।

टिप्पणी—रसवाहिनियों के रुकने से हृदयस्थ रस वहीं ठहरा हुआ विकृत होकर मुख द्वारा निकलता है, अर्थात् मार्ग रुकने से हृदयस्थ रस

विदग्ध हो जाता है। वह पिच्छिल, दुर्गन्धित, हरित, पीत या सफेद रंगवाला होकर खाँसी के वेग के साथ मुख से निकलता है। इसी कारण रस धातु के क्षीण होने पर, पोषण का अभाव होने से रक्त आदि धातुएँ भी क्षीण होने लगती हैं। वह अनुलोम क्षय है। अति मैथुन से वीर्य क्षीण होकर वायु कुपित होती है और वह कुपित वायु पास की धातु मज्जा को सुखाती है। इसके बाद दूसरी धातुएँ, एक के सूखने पर पास की सूखती ही है। जैसे गर्म लोहे के गोले को पृथ्वी पर रखने से समीप की गीली भूमि भी सूख जाती है। इस प्रकार दो मार्ग से क्षय होता है।

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप

श्वासाङ्गमर्दकफसंस्रवतालुशोष-
वम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥३॥
स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठा
गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ।
तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्ये-
च्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च² ॥४॥

यक्ष्मारोग उत्पन्न होने के पूर्व ये लक्षण प्रकट होते हैं—श्वास,

१. शरीर में सात धातुएँ हैं—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य। ये इसी क्रम से बनती हैं।

२. चकारात्तृणकेशनिपातादयो द्रष्टव्याः। यदुक्तं चरके—"पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम्। अदोषेष्वपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम्। घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः। स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने॥ मक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च। प्रायोऽन्नपाने, केशानां नखानां चातिवर्धनम्॥ पतत्त्रिभिः पतङ्गैश्च श्वापदैश्चाभिधर्षणम्। तत्र श्वापदाः व्याघ्रादयः। स्वप्ने केशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम्॥ जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि। शुष्कतां क्षीयमाणानां पततां चापि दर्शनम्॥ प्राग्रूपं बहुरूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः॥

अंगों का टूटना, खाँसी के साथ कफ थूकना, तालु का सूखना, वमन, मन्दाग्नि, मद (नशा सा चढ़ा रहना), जुकाम, खाँसी और नींद का अधिक आना। रोगी की आँखें सफेद हो जाती हैं, मांस खाने और स्त्री-प्रसंग करने की इच्छा होती है। वह स्वप्न में अपने को कौआ तोता, शल्लकी (साही) नीलकंठ (मयूर), गिद्ध, वन्दर और गिरगिट पर बैठकर जाता हुआ देखता है। नदियाँ सूखी हुईं और वृक्ष सूखे हुए, आँधी से गिरे हुए, धुएँ से झुलसे हुए अथवा आग से जले हुए देखता है। ३-४।

टिप्पणी—अन्य आचार्यों ने पूर्वरूप में कुछ चिह्न अधिक भी बतलाये हैं। जैसे—शरीर का विकृत दीखना, मद्य-मांस और शृंगार में रुचि, भोजन में मक्खी, तिनका, घुन, बाल आदि का निकलना, बाल और नाखूनों का अधिक बढ़ना, स्वप्न में बाल, हड्डी और राख के ढेर पर चढ़ना, बाघ आदि द्वारा खिंचना आदि।

राजयक्ष्मा के मुख्य तीन लक्षण

अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः॥ ५॥

कन्धों और पसलियों में पीड़ा, हाथों और पाँवों में जलन और सब अंगों में ज्वर, ये तीन मुख्य लक्षण राजयक्ष्मा के हैं। ५।

राजयक्ष्मा के छः लक्षण

(भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपं राजयक्ष्मणि॥)

(सुश्रुत में ये छः लक्षण मुख्य बताये गये हैं—भोजन से द्वेष, ज्वर, श्वास, खाँसी, खाँसने पर रुधिर का निकलना और स्वरभंग, ये छः रूप राजयक्ष्मा के हैं।)

दोषभेद से राजयक्ष्मा के ११ लक्षण

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः॥ ६॥

शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ।
कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥७॥

त्रिदोषज राजयक्ष्मा के ग्यारह लक्षणों में से यदि वायु का प्रकोप अधिक होता है तो स्वरभंग, कन्धों और पसलियों में संकोच और पीड़ा, ये तीन लक्षण होते हैं। पित्त की उल्बणता होती है तो ज्वर, देह में जलन, पतले दस्त और खाँसी में रुधिर, ये चार लक्षण होते हैं। कफ का प्रकोप अधिक होने से सिर में भारीपन, भोजन में अरुचि, खाँसी और गला बैठ जाना, ये चार लक्षण होते हैं। ६—७।

राजयक्ष्मा के असाध्य लक्षण

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम् ।
कासातीसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ८ ॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैः कासश्वासासृगामयैः ।
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः ॥९॥
सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये ।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥१०॥
महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥
शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहुमेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥१२॥

ऊपर कहे हुए ११ लक्षण, वा ६ लक्षण, अथवा खाँसी, अतीसार, पसलियों में पीड़ा, स्वरभंग, अरुचि और ज्वर ये छः लक्षण अथवा खाँसी और श्वास हो, खाँसी के साथ रुधिर आता हो ये

तीन लक्षण हों, रोगी का मांस और बल क्षीण हो गया हो, ऐसे रोगी की चिकित्सा यश चाहनेवाले वैद्य को न करनी चाहिए। किन्तु यदि रोगी बलवान् हो, शरीर दुर्बल न हुआ हो तो चाहे ये सम्पूर्ण लक्षण मिलते भी हों, उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि यक्ष्मा का रोगी भोजन तो बहुत करता हो पर शरीर क्षीण ही रहता हो तो भी असाध्य समझना चाहिए। यक्ष्मा के रोगी को बहुत दस्त होते हों अथवा आँखें सफेद हो गई हों, अथवा भोजन में अश्रद्धा हो, अथवा ऊर्ध्वश्वास से पीड़ित हो अथवा कष्ट के साथ बहुत शुक्रपात होता हो, ये प्रत्येक लक्षण असाध्य यक्ष्मा के हैं। असाध्य यक्ष्मा रोग मनुष्य को मार डालता है। ८—१२।

चिकित्सायोग्य राजयक्ष्मा

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम्॥ १३॥

रोगी बलवान् हो, चिकित्सा की क्रिया सह सकता हो, ज्वर का अनुबन्ध न हो, (लगातार न रहता हो), जठराग्नि दीप्त हो, रोगी धैर्यवान् हो और शरीर बहुत कृश न होगया हो, तो अन्य सब लक्षण मिलने पर भी उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। १३।

शोथ के भेद

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान्।
व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणो लक्षणैः शृणु॥ १४॥

व्यवायशोष, शोकशोष, वार्धक्यशोष, व्यायामशोष, अध्वशोष, व्रणशोष, उरःक्षतशोष, ये सात प्रकार के शोषरोग होते हैं। इनके लक्षण कहते हैं, सुनो। (इनमें वात, पित्त और कफ के लक्षण नहीं होते। ये अपने-अपने कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। इनमें धातुओं का क्षय होता है, इसलिए इनको क्षयरोग कहते हैं)। १४।

व्यवायशोष के लक्षण

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १५ ॥

व्यवायशोष (अत्यन्त मैथुन करने से उत्पन्न हुए शोष) में वीर्य क्षय के लक्षण (अंड और शिश्न में पीड़ा, मैथुन में अशक्ति या देर से वीर्यपात और वीर्य में रक्त आना) प्रकट होते हैं। रोगी की देह पाण्डुवर्ण (कुछ पीला और सफेद मिला हुआ रंग) हो जाती है और उसकी धातुएँ यथापूर्व[1] (वीर्य से मज्जा, मज्जा से अस्थि आदि) क्षीण होती हैं। १५।

शोकशोष के लक्षण

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ।

अत्यन्त शोक करने से शोकशोष हो जाता है। इसमें रोगी के सब अंग शिथिल हो जाते हैं। व्यवायशोष के समान इसमें भी सब धातुएँ क्षीण हो जाती हैं, किन्तु वीर्यक्षत के विकार (लिंग और अंडकोष में पीड़ा आदि) इसमें नहीं होते। रोगी सदा शोक किया करता है और जिस बात का शोक है उसी का ध्यान हर समय रहता है।

वार्धक्यशोष के लक्षण

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १६ ॥
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ।
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः ॥ १७ ॥
संप्रस्रुतास्यनासाक्षिः शुष्करूक्षमलच्छविः ।

१, वीर्य के क्षीण होने पर मज्जा, मज्जा के क्षीण होने पर अस्थि, अस्थि के क्षीण होने पर मेद, मेद के क्षीण होने पर मांस, मांस के क्षीण होने पर रुधिर और रुधिर के क्षीण होने पर रस, इस प्रतिलोम क्रम से सब धातुएँ क्षीण होती हैं।

बुढ़ापे के शोष में रोगी का शरीर कृश हो जाता है। वीर्य, बल, बुद्धि और इन्द्रियाँ मन्द पड़ जाती हैं, अंग काँपने लगते हैं। भोजन की इच्छा नहीं होती, फूटे कांस्यपात्र के शब्द के समान उसका स्वर हो जाता है। थूक में कफ नहीं निकलता। देह भारी मालूम होती है, मन प्रसन्न नहीं रहता, बेचैनी रहती है। मुँह, नाक और आँखों से पानी बहता है। मल सूख जाता है। देह की कान्ति रूखी हो जाती है। १६–१७।

अध्वशोष के लक्षण

अध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः ॥ १८ ॥
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ।

अध्वशोष (बहुत मार्ग चलने से उत्पन्न शोष) में भी रोगी के अंग शिथिल हो जाते हैं। देह का रंग भुने हुए पदार्थ के समान हो जाता है। रोगी को अंगों के स्पर्श का ज्ञान नहीं होता। क्लोम (पिपासास्थान), गला और मुँह शुष्क बना रहता है। १८।

टिप्पणी—क्लोम स्थान पर तालु पाठान्तर भी है और इस स्थान पर तालु सूखना ही अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है।

व्यायामशोष के लक्षण

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
लिंगैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ १९ ॥

व्यायामशोष में अध्वशोष के सब लक्षण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, और व्रण को छोड़कर उरःक्षत के भी सब लक्षण होते हैं। १९।

व्रणशोष के लक्षण

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥२०॥

रुधिर बहुत निकल जाने के कारण, वेदना होने के कारण तथा भोजन कम करने के कारण व्रणवाले मनुष्य को शोष हो जाता है। इसे व्रणशोष कहते हैं। यह असाध्य होता है। २०।

उरःक्षत के निदान

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् ।
युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २१ ॥
वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं वाऽन्यं निगृह्णतः ।
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥२२॥
अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ।
महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ २३ ॥
सहसोत्पततो दूरं तूर्णं वाऽपि प्रनृत्यतः ।
तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥२४॥
विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ।
स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥२५॥

संप्राप्ति

उरो विभज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विरुज्यते ।
प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ २६ ॥
क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ।
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदाग्निवधावपि ॥२७॥
दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहु ।
कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्तते ॥२८॥
स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ।

पूर्वरूप

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥२९॥

---

१. 'विड्भेदोऽग्निवधादपि' इति पाठान्तरं अग्निवधाद्धेतोर्विड्भेदो भवतीत्यर्थः ।

धनुष खींचने का अत्यन्त परिश्रम करने से, भारी बोझ ले चलने से, बलवान् के साथ युद्ध करने से, ऊँची-नीची भूमि में अथवा ऊँचे से गिरने से, दौड़ते हुए बैल या घोड़े को रोकने से, अथवा उनके पीछे बहुत दौड़ने से, अथवा और किसी पशु को पकड़ने के लिए उसके पीछे बहुत दौड़ने से, किसी को मारने के लिए शिला, काष्ठ, पत्थर, निर्घात (अस्त्र-विशेष) आदि बहुत जोर से फेकने से शत्रुओं को मारने से, बहुत ऊँचे स्वर से पढ़ने से, बहुत दूर और बहुत शीघ्र चलने से, बड़ी नदी को तैरने से, घोड़े के साथ बहुत दौड़ने से, सहसा बहुत दूर कूदने से, बड़ी शीघ्रता से नाचने से, अथवा मल्लयुद्ध आदि में क्रूर मनुष्य द्वारा अत्यन्त पीड़ित किये जाने से फेफड़े में घाव हो जाता है और उससे बलवान् रोग (उरःक्षत) उत्पन्न होता है । स्त्रियों के साथ अत्यन्त रमण करने से, रूक्ष, अल्प अथवा बहुत थोड़ा भोजन करने से वक्षःस्थल फट जाता है । ऐसी पीड़ा होती है मानों उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। तब पँसलियों में पीड़ा होने लगती है, शरीर सूख जाता है, अंग काँपने लगते हैं । वीर्य, बल, वर्ण, रुचि और अग्नि क्रमशः क्षीण हो जाते हैं। ज्वर, देह में पीड़ा, मन में दीनता, मलभेद और मन्दाग्नि हो जाती है । खाँसी आती है। काला, पीला, दुर्गन्ध, गाढ़ा अथवा गाँठदार कफ रुधिर के साथ बार-बार निकलता है । रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। इसी प्रकार अत्यन्त मैथुन आदि करने से वीर्य और ओज का नाश होने पर भी क्षती मनुष्य क्षीण होता है। जब तक लक्षण पूरी तरह से प्रकट नहीं होते, वे पूर्वरूप समझे जाते हैं। २१-२९ ।

क्षत और क्षीण के भेदबोधक लक्षण

उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते ।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३० ॥

क्षत में छाती में पीड़ा, रक्त की उलटी (दूषित काला कफयुक्त कास), अथवा अधिक खाँसी आती है। क्षीण में लाल रंग का या रक्त-युक्त मूत्र आता तथा पसली, पीठ और कमर में दर्द होता है । ३०।

क्षत और क्षीण के साध्य लक्षण

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः ।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं तु वर्जयेत् ॥३१॥

इति श्रीमाधवकरविरचते माधवनिदाने राजयक्ष्मक्षतक्षीण-
निदानं समाप्तम् । १० ।

रोग के अल्प लक्षण पाये जाते हों, रोगी बलवान् हो, जठराग्नि दीप्त हो, और रोग नया हो तो साध्य, और एक वर्ष का हो गया हो तो याप्य समझना चाहिए । यदि सब लक्षण मिलते हों, तो नया होने पर भी असाध्य होता है । वैद्य को उस रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए । ३१ ।

कासनिदान

कास के निदान, संप्रप्ति और लक्षण

धूमोपघाताद्रसतस्तथैव
व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य
वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥

प्राणोह्यु दानानुगतः प्रदुष्टः
स भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो
मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥२॥

मुँह और नाक द्वारा धुआँ जाने से, प्रकुपित वायु द्वारा आम (अपक्व) रस ऊपर चढ़ने से, अथवा 'रजस', इस पाठान्तर के अनुसार

मुख और नाक के द्वारा धूल जाने से, अति शीघ्र भोजन करने के कारण भोजन विमार्गगामी होने से, अधिक व्यायाम करने से, रूखे (चना कोदों आदि) अन्न लगातार बहुत दिनों तक खाते रहने से, मल-मूत्र और छींक आदि के वेग रोकने से उदान वायु कुपित हो जाती है और उसके साथ प्राणवायु कफ और पित्त के साथ मुँह से निकलती है। उसका शब्द फूटे हुए कांस्यपात्र के समान होता है। इसका नाम विद्वानों ने कास (खाँसी) रोग रक्खा है। १-२।

कास की संख्या

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः।
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

खाँसी पाँच प्रकार की होती है—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज। ये क्रम से उत्तरोत्तर बलवान् होती हैं। वातज की अपेक्षा पित्तज, पित्तज की अपेक्षा कफज, कफज की अपेक्षा क्षतज (उर:क्षत रोग की खाँसी) और क्षतज की अपेक्षा क्षयज (धातुओं के क्षीण होने से जो खाँसी आती है) बलवान् होती है। खाँसी चाहे जिस दोष विकार से हो, यदि उसकी दवा नहीं की जाती तो क्षयरोग उत्पन्न होने की आशंका रहती है। ३।

कास के पूर्वरूप

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥४॥

कास रोग होने के पहले ये लक्षण होते हैं मुख और गले में काँटे के समान गड़ते हैं और खुजली होती है। भोजन में अरुचि आदि अथवा गले में व्यथा होने के कारण भोजन करने में कष्ट होता है। ४।

वातिक कास के लक्षण

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली
क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः।

प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन
भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

हृदय, कनपटी, सिर, उदर और पसलियों में पीड़ा, मुँह सूखना, बल, स्वर और ओज (देह की कान्ति) का क्षीण होना, खाँसी वेग से आना, स्वरभंग, सूखी खाँसी आना, कफ न निकलना, ये लक्षण वायु के विकार से उत्पन्न (वातज) खाँसी के हैं। ५।

पैत्तिक कास के लक्षण

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषै-
रभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि
कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ ६ ॥

हृदय में दाह, ज्वर, मुँह सूखना, मुँह में कड़वापन, प्यास की अधिकता, खाँसी के साथ पित्त मिला हुआ पीला और कड़वा कफ निकलना, देह में जलन और कुछ पीलापन होना, (नेत्र आदि में भी पीलापन होना), ये लक्षण पित्त की (पित्तज) खाँसी के हैं। ६।

कफज कास के लक्षण

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन्
शिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः।
अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः
कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

मुँह में कफ लिसा हुआ मालूम हो, अंगों में पीड़ा हो, शिर में भी पीड़ा हो, देह कफ से पूर्ण होने के कारण भारी मालूम हो, भोजन में अरुचि हो, गले में खुजली मालूम हो, खाँसी बहुत आती

हो, और गाढ़ा कफ निकलता हो तो कफ के प्रकोप से उत्पन्न (कफज) खाँसी समझनी चाहिए । ७ ।

क्षतज कास के निदान और लक्षण

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः ।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमाचरेत् ॥ ८ ॥

स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् ।
कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥ ९ ॥

सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥

पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

अत्यन्त मैथुन करने से, भारी बोझ उठाने से, शीघ्रता से, बहुत दूर मार्ग चलने से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करने से, हाथी या घोड़े को बलपूर्वक रोकने से, वायु कुपित होकर रूखे शरीरवाले मनुष्य के उरःक्षत रोग उत्पन्न कर देता है और खाँसी आने लगती है। पहले सूखी खाँसी आती है, फिर रुधिर मिला हुआ कफ निकलता है। कंठ में बहुत पीड़ा होती है, वक्षःस्थल में सुई कोंचने की सी पीड़ा होती है अथवा ऐसा मालूम होता है मानों वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया हो। पँसलियों में भी बहुत पीड़ा होती है। पँसलियों का स्पर्श भी नहीं सहा जाता। जोड़ों में पीड़ा, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभंग, ये सब लक्षण क्षतज खाँसी का वेग होने पर प्रकट होते हैं। खाँसने का शब्द कबूतर के बोलने के समान होता है। ८—११ ।

क्षयज कास के निदान और लक्षण

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ।

घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ।
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्
प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ।
शुष्यन्विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु
प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥
तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं
चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥१३॥

विषम[1] भोजन, असाध्य भोजन (असात्म्य भोजन) और अति मैथुन करने से, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से, अथवा अत्यन्त घृणा करने से, अत्यन्त चिन्ता करने से (अथवा भोजन न मिलने से) जठराग्नि मन्द हो जाती है, तब तीनों दोष कुपित हो जाते हैं और क्षयज कास उत्पन्न कर देते हैं । यह खाँसी देह का क्षय करने-वाली है । १२ ।

इस खाँसी में ये उपद्रव होते हैं—देह में पीड़ा, ज्वर, दाह और मूर्च्छा होती है, शरीर सूखता जाता है, दुर्बलता हो जाती है, मांस क्षीण हो जाता है, रोगी रुधिर और पीव मिला हुआ थूकता है । जब इसके सब लक्षण प्रकट होते हैं तो औषध से लाभ होना कठिन हो जाता है । वैद्य लोग इसे क्षयज कास कहते हैं । १३ ।

साध्यासाध्य लक्षण

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेव क्षतोत्थितः १४
नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ ।

---

१. 'बहुस्तोकमकाले च तज्ज्ञेयं विषमाशनम् ।' बहुत भोजन करना, बहुत कम भोजन करना अथवा अकाल में भोजन करना विषम भोजन है ।

स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ।
त्रीन् पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् १५

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने कासनिदानं समाप्तम् ॥ ११ ॥

यदि रोगी बहुत दुर्बल होता है तो क्षयज कास उसका विनाश कर देती है । और यदि रोगी बलवान् होता है तो किसी को साध्य और किसी को याप्य होती है । उरःक्षत कास भी किसी को साध्य और किसी को याप्य होती है । यदि चारों पाद[1] अनुकूल होते हैं और क्षतज अथवा क्षयज खाँसी थोड़े दिनों की होती है तो कदाचित् साध्य होती है । बुढ़ापे के कारण धातुओं के क्षीण हो जाने पर जो खाँसी होती है वह सबको याप्य होती है । ऊपर कह चुके हैं कि खाँसी पाँच प्रकार की होती है, उनमें तीन प्रकार की खाँसी (वातज, पित्तज और कफज) साध्य तथा क्षतज और क्षयज खाँसी याप्य होती है । १४-१५ ।

हिक्काश्वासनिदान

हिक्काश्वास

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ।
शीतपानाशनस्थानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

---

१. रोगी, वैद्य, औषध और रोगी की सेवा करनेवाला, चिकित्सा के ये चार पाद हैं । रोगी धैर्यवान् और वैद्य की आज्ञा से चलनेवाला हो । वैद्य अनुभवी हो । औषधें अच्छे स्थान में उत्पन्न हुई और नई हों । रोगी की सेवा करनेवाला मनुष्य चतुर और सावधान हो ।

दाह पैदा करनेवाली चीजें (मिर्च और मदिरा आदि) अधिक खाने-पीने से, भारी, विष्टम्भी (चना आदि), रूक्ष (कोदों आदि), अभिष्यन्दी (उड़द और मछली आदि) अधिक खाने से, शीतल जल बहुत पीने से, शीतल भोजन करने और शीतल स्थान में रहने से, मुँह और नाक के द्वारा धूलि और धुआँ जाने से, धूप और वायु में बहुत रहने से, व्यायाम अधिक करने से, भारी बोझ उठाने से, बड़ी शीघ्रता से, बहुत दूर मार्ग चलने से, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से, भूख-प्यास रोकने से, हिचकी, श्वास और खाँसी पैदा हो जाती है । १-२ ।

हिक्का के स्वरूप और निरुक्ति

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो
यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
स घोषवानाशु[1] हिनस्त्यसून् यत-
स्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥३॥

प्राण और उदान वायु कुपित होकर यकृत्, प्लीहा और अंतड़ियों को मुख की ओर उछालता हुआ हिक्-हिक् शब्द के साथ बार-बार ऊपर को चलता है । यह वायु शीघ्र ही प्राणों का नाश कर देता है, इसलिए वैद्यों ने इसका नाम हिक्का (हिचकी) रक्खा है ('हिनस्त्यसून् प्राणान्' इति हिक्का, पृषोदरादिना रूपसिद्धिः । अथवा 'हिगिति कृत्वा कायति शब्दं करोति' इति हिक्का ।) । ३ ।

हिक्का की संप्राप्ति

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥४॥

कुपित वायु कफ के अनुबन्ध से पाँच प्रकार की हिक्का

---

१. 'स घोषवानाशु' के स्थान में 'स दोषवानाशु' पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है । उसका अर्थ है—"दोषवान् कफेनानुगतः सः वायुः ।"

उत्पन्न कर देता है । उनके ये पाँच नाम हैं—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती । ४ ।

हिक्का के पूर्वरूप

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

कंठ और छाती में भारीपन, मुँह का स्वाद कषाय और पेट भरा हुआ मालूम होना, ये हिक्का के पूर्वरूप हैं । हिक्का होने के पहले ये सब लक्षण प्रकट होते हैं । ५ ।

अन्नजा हिक्का के लक्षण

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥६॥

अति शीतल जल पीने और शीतल भोजन करने से, हृदय में स्थित प्राणवायु सहसा कुपित होकर और ऊर्ध्वगति होकर हिक्का उत्पन्न करता है । वैद्य इस हिक्का को अन्नजा हिक्का समझें । ६ ।

यमला हिक्का के लक्षण

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्तते ।
कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥७॥

यदि दो-दो हिचकी एक साथ देर में आवें, सिर और गले को हिला दें, उसे यमला हिक्का समझना चाहिए । (इस हिक्का में ये उपद्रव होते हैं—प्रलाप, मूर्च्छा, वमन, प्यास, भ्रम, जँभाई, आँखों की पुतली का चढ़ जाना और मुँह सूखना, यह चरक में लिखा है ।) । ७ ।

क्षुद्रा हिक्का के लक्षण

प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधाविता ॥८॥

जो हिक्का जत्रुमूल (कंठ और हृदय की सन्धि) से उठे और मन्द वेग से देर तक आती रहे उसका नाम क्षुद्रिका है । ८ ।

गम्भीरा हिक्का के लक्षण

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

जो हिक्का नाभि से उठती है, जिसका शब्द गम्भीर होता है, जिसमें अनेक उपद्रव (प्यास और ज्वर आदि) होते हैं, उसका नाम गम्भीरा है । ९ ।

महती हिक्का के लक्षण

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रविकम्पिनी ॥ १० ॥

जो हिक्का मर्म स्थानों (बस्ति, हृदय और सिर) को पीड़ित करती हुई लगातार आती रहे, जिससे देह भर काँपने लगे, उसे महाहिक्का समझना चाहिए । १० ।

असाध्य हिक्का के लक्षण

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो
दृष्टिश्चोर्ध्वं नाम्यते यस्य नित्यम् ।
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं
तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ ११ ॥

अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ।
यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

जिस हिक्का में देह का विस्तार और संकोच होता हो, रोगी ऊपर को देखता हो, वह हिक्का असाध्य होती है। तथा जिस हिक्का के रोगी का शरीर क्षीण हो गया हो, कुछ खाने की इच्छा न होती हो और छींकें बहुत आती हों, वह भी असाध्य है। ये असाध्य लक्षण अन्नजा, यमला और क्षुद्रा के हैं। गम्भीरा और महती हिक्का तो स्वभावतः असाध्य होती हैं। वैद्य को ऐसे रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। ऊपर कही हुई साध्य (अन्नजा, यमला और क्षुद्रा) हिक्का भी यदि ऐसे मनुष्यों को हो, जिन्हें दोषों का अति संचय हुआ हो, भोजन में रुचि न हो, रोगी दुर्बल हो, अथवा रोगों के कारण जिसका शरीर क्षीण हो गया हो, वृद्ध हो, अथवा मैथुन बहुत करता हो तो असाध्य समझना चाहिए। हिक्का ऐसे रोगी का जीवन शीघ्र नष्ट कर देती है। अन्नजा और क्षुद्रा हिक्का भी यदि वेग से दो-दो एक साथ आवें और प्रलाप, देह में पीड़ा, मूर्च्छा तथा प्यास अधिक हो तो भी असाध्य समझना चाहिए। यदि रोगी बलवान् और प्रसन्न हो, उसकी धातुएँ और इन्द्रियाँ स्थिर हों तो (अन्नजा और क्षुद्रा) साध्य हैं, अन्यथा असाध्य हैं। ११-१४।

श्वास के भेद

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥१५॥

श्वास रोग एक होने पर भी निदान और लक्षण के भेद से पाँच प्रकार का है—महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास। १५।

(वाताधिको भवेत् क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः।
कफवाताधिकश्चैव संसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः।
श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः ॥ १ ॥)

(वात की अधिकता से क्षुद्रश्वास, कफ की अधिकता से

तमकश्वास, कफ और वात दोनों की अधिकता से छिन्नश्वास तथा वायु के प्रकोप से ऊर्ध्वश्वास और महाश्वास उत्पन्न होता है। ११)

श्वास के पूर्वरूप

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च ॥ १६ ॥

हृदय और पेट में पीड़ा, अफरा, पेट में वायु का अवरोध और गुड़-गुड़ाहट (मल-मूत्र का रुकना), मुँह में विरसता और कनपटियों में पीड़ा ये श्वास के पूर्वरूप हैं। श्वासरोग होने के पहले ये लक्षण होते हैं। १६।

श्वास की संप्राप्ति

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः ॥१७॥

कफपूर्वक कुपित वायु जब अन्न, जल और प्राणवायु के मार्गों को रोक देता है और कफ के द्वारा स्रोतों के मार्ग रुद्ध होने पर वायु सब ओर से विमार्गगामी हो जाता है तब श्वास रोग उत्पन्न होता है। १७।

महाश्वास के लक्षण

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥१८॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः।
विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥१९॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्।
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ २० ॥

श्वास ऊपर को चले, श्वास में शब्द हो, रोगी दुखित हो, (शब्दयुक्त वायु को श्वास के रूप में बाहर निकालने के लिए ऊपर खींचता हुआ) मदमत्त बैल की तरह लगातार लम्बी श्वास छोड़ता हो, ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो गया हो, नेत्र चंचल हो गये हों, मुँह फैलाये रहता हो, आँखें फैली हुई हों, मल-मूत्र का अवरोध हो, बोलने की शक्ति न हो अथवा धीरे-धीरे बोलता हो, मन प्रसन्न न रहता हो, श्वास का शब्द दूर से सुनाई देता हो, ये महाश्वास के लक्षण हैं। ऐसे रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। १८-२०।

टिप्पणी—यह श्वास अन्तिम समय में होता है। इस स्थिति को पाश्चात्य चिकित्सक श्वास और हृदयक्रिया बन्द होने के चिह्न कहते हैं।

ऊर्ध्वश्वास के लक्षण

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ २१ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः ।
प्रमुह्यन् वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥२२॥
ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते ।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ २३॥

श्वास देर तक ऊपर को चलती हो, उतनी देर तक नीचे को न जाती हो, मुख सम्बन्धी स्रोतों में कफ रुका हुआ हो, रोगी वायु के प्रकोप से पीड़ित हो, ऊपर को देखता हो, चंचल नेत्रों से इधर-उधर देखता हो, रोगी मूर्च्छित हो जाता हो और पीड़ा के मारे बहुत दुःखित हो, मुँह सूखता ('शुक्लास्य' पाठ भी है जिसका अर्थ मुँह सफेद हो जाता है) हो, किसी विषय में मन न लगता हो, ऊर्ध्वश्वास के प्रकोप से अधःश्वास का अवरोध हो गया हो तथा ग्लानियुक्त होकर मूर्च्छा आती हो, ऐसे ऊर्ध्वश्वास में रोगी की मृत्यु हो जाती है। २१-२३।

छिन्नश्वास के लक्षण

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ।। २४ ।।
आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ।। २५ ।।
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ।।२६।।

रोगी ठहर-ठहरकर सम्पूर्ण शक्ति लगाकर बड़े दुःख से श्वास लेता हो, अथवा दुःख के मारे श्वास ही न ले सकता हो, मर्मस्थान (हृदय, मूत्राशय और सिर) में पीड़ा हो, पेट फूलता हो, पसीना आता हो, मूर्च्छा आती हो, मूत्राशय में जलन होती हो, (इससे पित्त का अनुबन्ध समझना चाहिए ।) नेत्र चंचल हो गये हों अथवा नेत्रों में आँसू भरे रहते हों, शरीर क्षीण हो गया हो, एक नेत्र लाल हो गया हो (रोग के प्रभाव से, क्योंकि दोष के प्रभाव से दोनों नेत्र लाल हो जाते हैं) घबराहट हो, मुख सूखता हो, शरीर विवर्ण हो गया हो, रोगी वृथा बकता हो, संधियाँ शिथिल हो गई हों, ये लक्षण छिन्नश्वास के हैं। छिन्न श्वास से पीड़ित रोगी शीघ्र ही प्राण त्याग देता है । २४-२६ ।

तमकश्वास के लक्षण

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ।। २७ ।।
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ।
अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ।। २८ ।।
प्रताम्यति स वेगेन तृष्यते सन्निरुध्यते ।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ।। २९ ।।

श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दुःखितः ।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ ३० ॥
तथाऽस्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ।
न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीडितः ॥ ३१ ॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ ३२ ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ ३३ ॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ३४

जब वायु की गति प्रतिलोम होकर कंठ और सिर को ग्रहण करके स्रोतों में व्याप्त हो जाती है और कफ को भी ऊपर ले जाकर कंठ को अवरुद्ध कर देती है तो पीनस रोग (जुकाम) हो जाता है। कफयुक्त वायु से गले में 'घुरघुर' शब्द होने लगता है, श्वास अत्यन्त तीव्र वेग से चलता है, हृदय में पीड़ा होती है, श्वास के वेग के कारण रोगी मानों अन्धकार में प्रवेश करता है, ऐसा अनुभव करता है। प्यास लगती है, चेतना नष्ट हो जाती है अथवा श्वास में रुकावट होती है, ('सन्निरुध्यते' का अर्थ किसी आचार्य ने 'श्वास का अवरोध' और किसी ने 'निश्चेष्ट होना' लिखा है) खाँसते-खाँसते बार-बार मूर्च्छा आती है, कफ नहीं निकलता, इसलिए रोगी बहुत कष्ट पाता है, जब कफ निकल जाता है तो थोड़ी देर (जब तक गले में फिर कफ नहीं रुकता) तक सुख मिलता है, गले में खुजली होती है, इसलिए रोगी बड़े कष्ट से बोलता है, श्वास से पीड़ित होने के कारण नींद नहीं आती, लेटने से वायु पसलियों में पीड़ा उत्पन्न करता है, बैठने से कुछ आराम मिलता है, उष्ण उपचार

से भी सुख मिलता है, आँखों के नीचे शोथ होता है, मस्तक में पसीना बहुत आता है, मुँह सूखता है, बार-बार श्वास के वेग होते हैं और श्वास लेने में रोगी का शरीर (हाथी पर बैठे हुए मनुष्य के समान) काँपता है, बादल होने से, पानी बरसने से, सर्दी से और पूर्व की वायु चलने तथा कफ बढ़ानेवाले पदार्थों के सेवन से रोग बढ़ता है, ये लक्षण तमकश्वास के हैं। तमकश्वास याप्य होता है (देर में अच्छा होता है)। थोड़े ही दिनों से आरम्भ हुआ हो तो साध्य होता है। २७-३४।

प्रतमकश्वास के लक्षण

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्।
उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः॥ ३५॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्संतमकं तु तम्॥ ३६॥

तमकश्वास में पित्त के अनुबन्ध से यदि ज्वर और मूर्च्छा भी आने लगे तब उसे प्रतमक श्वास कहते हैं। इसके अन्य कारण और लक्षण भी कहते हैं—उदावर्त से, धूलि से, अजीर्ण रहने से, विदग्धान्न होने से, मल-मूत्र आदि के रोकने से अथवा वृद्धापन के कारण भी इस रोग की उत्पत्ति होती है। अन्धकार से अथवा तमोगुण (क्रोध आदि मानस दोष) से यह अत्यन्त बढ़ता है, शीतल उपचार से शीघ्र शान्त होता है। रोगी अन्धकार में डूबा-सा रहता है। इस रोग को संतमक भी कहते हैं। ३५-३६।

क्षुद्रश्वास के लक्षण

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥३७॥
हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे।
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम्॥३८॥

नेन्द्रियाणां व्यथां नापि कांचिदापादयेद्रुजम् ।
स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥३९॥
क्षुद्रः साध्यो मतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ।
त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥४०॥

रूक्ष अन्न खाने और अधिक परिश्रम करने से उत्पन्न अल्प निदान और लक्षणोंवाला वायु कोष्ठ में ऊपर की ओर चलकर क्षुद्रश्वास को उत्पन्न करता है। क्षुद्रश्वास कोष्ठ में वायु को ऊर्ध्व गति कर देता है। यह क्षुद्रश्वास पीड़ा से अंगों में अधिक विकार नहीं करता, ऊर्ध्वश्वास आदि के समान दुःख नहीं देता, भोजन-पान की उचित गति को नहीं रोकता, इन्द्रियों को पीड़ित नहीं करता, अन्य कोई रोग भी नहीं उत्पन्न करता। यह रोग साध्य कहा गया है। (अल्प निदान और अल्प लक्षण होने से इसका नाम क्षुद्रश्वास है)। महाश्वास आदि अन्य श्वास में भी यदि सब लक्षण प्रकट न हुए हों और रोगी बलवान् हो तो साध्य समझना चाहिए। क्षुद्रश्वास साध्य होता है, तमकश्वास कष्टसाध्य होता है, (संपूर्ण लक्षणों से युक्त) महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वास असाध्य होते हैं। यदि रोगी दुर्बल हो तो तमकश्वास भी असाध्य होता है। ३७–४०।

हिक्का और श्वास शीघ्र ही मारक होते हैं

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु च ॥४१॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने हिक्काश्वास-
निदानं समाप्तम् ॥ १२ ॥

यद्यपि सन्निपातज्वर आदि अनेक रोग प्राणघातक हैं, किन्तु हिक्का और श्वास के समान प्राणघातक वे भी नहीं। ये दोनों रोग तो शीघ्र ही प्राणों का नाश कर देते हैं। ४१।

स्वरभेदनिदान

स्वरभेद की निदानपूर्वक संप्राप्ति

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात-
संदूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतस्सु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥१॥
(वातादिभिः पृथक् सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च ।)

अत्यन्त उच्च स्वर से भाषण अथवा (वेद आदि का पाठ) अध्ययन करने से, विष पीने से, कंठ में किसी प्रकार की चोट लगने से अथवा अपने-अपने कारणों से पवन आदि तीनों दोष कुपित होकर शब्दवाही चारों[1] स्रोतों में स्थित होकर अथवा वृद्धि को प्राप्त होकर स्वरभेद कर देते हैं । स्वरभेद छः प्रकार का होता है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षयज और मेदोज । १ ।

वातज स्वरभेद के लक्षण

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा
भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत् खरं च ।

वातज स्वरभेद में रोगी के नेत्र, मुख, मूत्र और मल का रंग काला होता है । रोगी का स्वर टूटा हुआ और धीमा होता है अथवा गधे के स्वर के समान कर्कश हो जाता है ।

पित्तज स्वरभेद के लक्षण

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा
ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥२॥

---

१. स्वरवाही स्रोत चार होते हैं । दो से भाषण होते हैं और दो से घोष किया जाता है ।

पित्तज स्वरभेद में नेत्र, मुख, मूत्र और मल का रंग पीला होता है। बोलने के समय गले में जलन होती है। २।

कफज स्वरभेद के लक्षण

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात्।

कफज स्वरभेद में रोगी का कंठ निरन्तर कफ से रुँधा रहता है, रोगी धीमे स्वर से बोलता है और बहुत कम बोलता है। दिन में कुछ अधिक बोल सकता है; क्योंकि दिन में सूर्य की ऊष्मा से कफ का प्रकोप कम रहता है।

सन्निपातज स्वरभेद के लक्षण

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंप-
त्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥३॥

सान्निपातिक स्वरभेद में उपर्युक्त वातादि स्वरभेद के सब लक्षण प्रकट होते हैं, इस स्वरभेद को ऋषियों ने असाध्य बताया है। ३।

क्षयज स्वरभेद के लक्षण

धूप्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च
वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः।

क्षयज स्वरभेद में वाणी के साथ धुआँ-सा निकलता है, बोलने में कष्ट होता है, वाणी क्षीण हो जाती है; यदि ओज का क्षय होने से रोगी हतवाक् हो गया हो, अर्थात् बोलने की शक्ति नष्ट हो गई हो तो असाध्य समझना चाहिए।

मेदोज स्वरभेद के लक्षण

अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण
मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥४॥

मेदोज स्वरभेद में रोगी बहुत देर में बोलता है और ऐसा बोलता

है कि गले से बाहर स्वर नहीं निकलता, स्पष्ट न होने से सुननेवालों की समझ में नहीं आता। गले में मेद या कफ लिसा रहता है। मेद से स्रोत रुद्ध हो जाने के कारण प्यास बहुत लगती है। ४।

स्वरभेद के असाध्य लक्षण

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य वाऽपि
चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च
स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ॥१३॥

क्षीण शरीरवाले का, वृद्ध और दुर्बल मनुष्य का, बहुत दिनों का पुराना, जन्म से ही उत्पन्न, स्थूल शरीरवाले का तथा सब लक्षणों से युक्त अर्थात् सन्निपातज स्वरभेद असाध्य होता है। ५।

अरोचकनिदान

वातादिभिः शोकभयातिलोभ-
क्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः।
अरोचकाः स्युः,

वातादि दोषों से उत्पन्न अरोचक के वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज नाम हैं तथा शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, मन को अप्रसन्न करनेवाले अन्न, रूप और गन्ध से उत्पन्न अरोचक आगन्तुज कहलाते हैं, क्योंकि इन सबके लक्षण एक-से होते हैं। इस प्रकार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुज, इन भेदों से अरोचक पाँच प्रकार का है। सुश्रुत ने भी कहा है—"भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति।"

वातज अरुचि के लक्षण

परिहृष्टदन्तः
कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

दाँत खट्टे रहते हों (जैसे खटाई खाने से खट्टे हो जाते हैं) और मुँह का स्वाद कसैला हो तो वातज अरुचि समझना चाहिए । १ ।

पित्तज अरुचि के लक्षण

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति
पित्तेन विद्यात्

मुँह का स्वाद कडुवा, खट्टा, उष्ण और नीरस हो. मुँह से दुर्गन्ध आवे तो पित्तज अरुचि समझना चाहिए ।

कफज अरुचि के लक्षण

लवणं च वक्त्रम् ।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्य-
विबद्धसंबद्धयुतं कफेन ॥ २ ॥

मुँह खारा, (विदग्ध कफ में लवण रस होता है, इसलिए मुँह में खारीपन मालूम होता है) मीठा, पिच्छिल, भारी, शीतल, विबद्धता (भोजन करने में असमर्थता के कारण) और कफ से लिसा हुआ-सा हो तो कफ की अरुचि समझना चाहिए । २ ।

आगन्तुज अरुचि के लक्षण

अरोचके शोकभयातिलोभ-
क्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध आदि से तथा अहृद्य और अशुचि गन्ध के कारण जो आगन्तुज अरुचि उत्पन्न होती है, उसमें मुँह का स्वाद स्वाभाविक रहता है तथा इसमें अरुचि अधिक रहती है ।

त्रिदोषज अरुचि के लक्षण

त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

सन्निपातज अरुचि में वातादि दोषों के (कषाय आदि) सब रस मुँह में मालूम होते हैं । ३ ।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन, पित्ता-
त्तृड्दाहचोषबहुलं, सकफप्रसेकम् ।
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्या-
द्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽरोचकनिदानं समाप्तम् ॥ १४ ॥

वातज अरुचि में हृदय में पीड़ा, पित्तज अरुचि में तृषा, दाह और शरीर में चूसने को सी पीड़ा, कफज अरुचि में कफ का निकलना और त्रिदोषज अरुचि में वातादिजन्य अनेक प्रकार की पीड़ा होती है । आगन्तुज अरुचि में मन में व्याकुलता, मोह और जड़ता होती है । ४ ।

टिप्पणी—अरोचक, भक्तद्वेष और अभक्त-छन्द, ये तीन भेद अरुचि के हैं। अरोचक—जिस व्यक्ति के मुख में बार-बार अन्न गया भी स्वादिष्ट नहीं लगता वह अरोचक है। जिस व्यक्ति का मन अन्न का ध्यान, दर्शन और श्रवण करते ही उद्विग्न हो जाता हो वह भक्तद्वेष है। क्रोध, भय और अभिचार से ग्रस्त जिस रोगी की अन्न में श्रद्धा न हो उस होनेवाले रोग को अभक्तच्छन्द कहते हैं।

छर्दिनिदान

छर्दि के निदान और निरुक्ति

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोचनादिभिः ।
छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥२॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः ।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ।
छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ४ ॥

छर्दि पाँच प्रकार की होती है। कुपित वातादि दोषों से पृथक् पृथक् ३, तीनों दोषों के प्रकोप से १, तथा बीभत्सजा आदि आगन्तुज १, छर्दि के ये पाँच भेद हैं। अब उनके लक्षण कहते हैं। अत्यन्त पतले पदार्थ, अत्यन्त चिकनी, हृदय को अप्रिय और खारी वस्तुएँ अधिक खाने से, अकाल में अथवा अधिक मात्रा में भोजन करने से, अपथ्य भोजन करने से, अधिक परिश्रम, भय, घबराहट, अजीर्ण और क्रिमिदोष से, गर्भवती स्त्रियों को, बहुत शीघ्र भोजन करने से, घृणा उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं के देखने, अथवा सूँघने से छर्दि[1] (वमन) होती है। उदान वायु कुपित होकर बलपूर्वक ऊपर को चढ़ती है, मुख को आच्छादित कर देती है, और किये हुए भोजन को मुख के द्वारा निकाल देती है, देह में पीड़ा होती है और अंग टूटते हैं। छर्दि की निरुक्ति है—मुख को आच्छादित तथा अंगों को अर्दित करनेवाली छर्दि होती है। १-४।

छर्दि के पूर्वरूप

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्तनुः ।
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

(१. जैसे छादयति मुखं अर्दयति चांगानीति छर्दिः। 'छद' अपवारणे, 'अर्द' हिंसायाम्, अनयोः पृषोदरादित्वेन रूपसिद्धिः।)

उबकाई आना, डकार का रुकना, मुँह में पानी आना और कुछ खारीपन मालूम होना, खाने-पीने में अधिक अरुचि होना, ये वमन के पूर्वरूप हैं। ५।

वातज छर्दि के लक्षण

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्ष-
नाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः।
उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं
विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम्।
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगे-
नार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥६॥

हृदय, पार्श्व, नाभि और सिर में पीड़ा हो, मुँह सूखता हो, खाँसी, स्वरभंग और देह में सुई कोंचने की-सी पीड़ा हो, डकार का शब्द जोर से हो, वमन में फेन आवे, रुक-रुककर वमन हो, पतली, कसैला और काले रंग का हो, बड़े वेग और दुःख से थोड़ा वमन हो तो उसे वात का वमन समझना चाहिए। ६।

पित्तज छर्दि के लक्षण

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्ध-
ताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः।
पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं
धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥

मूर्च्छा, प्यास और मुखशोष हो, मस्तक, तालु और नेत्रों में दाह हो, आँखों के सामने अँधेरा हो जाय, भ्रम हो, पीला, बहुत गरम, हरा, कड़वा और धुएँ से युक्त वमन हो तथा कण्ठ में दाह हो तो पित्त का वमन समझना चाहिए। ७।

कफज छर्दि के लक्षण

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेक-
सन्तोषनिद्राऽरुचिगौरवार्तः ।
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं
सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥

तन्द्रा, मुंह में मिठास, थूक में कफ निकलना, तृप्ति, खाने की इच्छा न होना, निद्रा, अरुचि, देह में भारीपन, तथा रोमांच होना, ये कफ के वमन के लक्षण हैं। कफ की वमन में वमन करते समय कष्ट कम होता है। वमन चिकना, गाढ़ा, मीठा और सफेद होता है। ८।

त्रिदोषज छर्दि के लक्षण

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णा-
श्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम् ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनील-
सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥९॥

देह में पीड़ा, अन्न का अच्छे प्रकार न पचना, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास और लगातार प्रबल मूर्च्छा का आना, ये लक्षण त्रिदोष के वमन के हैं। त्रिदोष का वमन खारी, खट्टा, नीले रंग का, गाढ़ा, गरम और रुधिरयुक्त होता है। ९।

छर्दि के असाध्य लक्षण

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः
स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति ।
उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं
दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥१०॥

विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं
तृट्श्वासहिक्कार्तियुतं प्रसक्तम् ।
प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगा-
त्तयाऽर्दितश्चाशु विनाशमेति ॥११॥

वायुदोष जब मल, मूत्र, पसीने और जल के बहनेवाले स्रोतों को रोक देता है और कोष्ठ से कफ, पित्त और मल आदि दोषों को ऊपर ले जाकर वमन कराता है तो वमन में मल-मूत्र के समान गन्ध आती है और रंग भी मल-मूत्र के ही समान हो जाता है। पिपासा, श्वास और हिचकी आती है। कष्ट के साथ बड़े वेग से वमन होता है। तब रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है। यह वमन असाध्य होता है। कोई आचार्य इसे त्रिदोष का वमन कहते हैं। १०-११।

टिप्पणी—किन्तु अन्य आचार्यों का कहना है कि सब प्रकार का वमन प्रबल होता है। पर ये लक्षण असाध्य के हैं।

आगन्तुज छर्दि के लक्षण

बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च
ह्यसात्म्यजा च क्रिमिजा च या हि ।
सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च
दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

बीभत्स[1]जा, दौर्हृद[2]जा आम[3]जा, असात्म्य[4]जा और क्रिमि[5]जा, ये पाँच आगन्तुज वमन हैं। १. बीभत्स वस्तुओं—जैसे मल-मूत्र, रुधिर, पीब आदि के देखने से जो वमन हो वह बीभत्सज है। २. गर्भवती स्त्रियों का वमन दौर्हृदज है। ३. भोजन का परिपाक ठीक न होने से जो वमन हो वह आमज है। ४. अहितकर भोजन करने से जो वमन हो वह असात्म्यजा है। ५. पेट में कीड़े उत्पन्न होने से जो वमन हो वह क्रिमिज है। इनमें ऊपर कहे हुए जिस दोष के लक्षण मिलते हों, उसी दोष का विकार समझना चाहिए। इस श्लोक में

'सा पञ्चमी' का यह भी अर्थ हो सकता है कि इनमें पाँचवीं क्रिमिजा है। उसमें ऊपर कहे हुए जिस दोष के लक्षण मिलते हों, उस दोष का विकार समझना चाहिए। १२।

क्रिमिजा छर्दि के लक्षण

शूलहृल्लासबहुला क्रिमिजा च विशेषतः।
क्रिमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

पेट में पीड़ा और उबकाई बहुत हो, क्रिमिज हृद्रोग के समान लक्षण मिलते हों। १३।

असाध्य छर्दि के लक्षण

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता
सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता।
सचन्द्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां,
साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥१४॥

यदि क्षीण शरीरवाले मनुष्य को बार-बार वमन हो, आगे कहे हुए सब उपद्रव भी हों, वमन में रुधिर और पीब भी मिला हुआ हो, मोरपुच्छ के समान चमक हो, वह वमन असाध्य होता है। उपद्रव न हों तो साध्य है। उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। १४।

छर्दि के उपद्रव

(कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने छर्दिनिदानं समाप्तम् ॥ १५ ॥

(खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, भ्रम, हृद्रोग और तमक श्वास, ये वमन के उपद्रव हैं। १५।)

तृष्णानिदान

तृष्णा के निदान और सम्प्राप्ति

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा
ह्यूर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च ।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां
तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ।
स्रोतस्स्वपांवाहिषु दूषितेषु
दोषैश्च तृट् संभवतीह जन्तोः ॥१॥

भय और परिश्रम के कारण, बल का क्षय होने के कारण अथवा पित्त को बढ़ानेवाली कड़वी, खट्टी और गरम वस्तुएँ खाने से, क्रोध और उपवास आदि करने से, अपने स्थान में संचित पित्त वायु के साथ कुपित होकर तालु (क्लोमादि) में प्राप्त होता है और प्यास उत्पन्न करता है। अन्न, कफ और आम से, (अथवा वात, पित्त और कफ से) जलवाहक मार्गों के दूषित होने पर प्यास उत्पन्न होती है। १।

तृष्णा के भेद

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी
क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ।
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां
निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥

तृष्णा सात प्रकार की है, पृथक्-पृथक् तीनों दोषों से ३, क्षत से चोट लगने या घाव होने से १, क्षय (रस आदि धातुओं के क्षीण होने) से १, आमदोष से १, और (अहित) भोजन करने से १, ये तृष्णा के सात भेद हैं। अब क्रम से इनके लक्षण कहते हैं। २।

टिप्पणी—आचार्य दृढ़बल ने कफ, पित्त, क्षय, आम और उपसर्गज ये पाँच तृष्णाएँ कही हैं। वहाँ कफजा, आमजा में क्षतजा, वातजा और भक्त में (क्योंकि भक्तवरण से वायुप्रकोप होता है) या पित्तजा में (क्योंकि विदाह से पित्त कुपित होता है) सुश्रुतोक्त मद्यजा तृष्णा भी वातपित्तजा में ही सम्मिलित समझिए।

वातजा तृष्णा के लक्षण

क्षामास्यता मारुतसंभवायां
तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं
शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

मुँह सूखा और दीन हो, शिर और कनपटी में पीड़ा हो, जल और रस बहनेवाले मार्गों में अवरोध हो, मुख में विरसता हो, शीतल जल पीने से प्यास बढ़ती हो तो वायु के दोष से तृष्णा समझनी चाहिए। ३।

टिप्पणी—आचार्य चरक ने निद्रानाश, शिर में चक्कर, गले-तालू का सूखना, ये लक्षण बतलाए हैं।

पित्तजा तृष्णा के लक्षण

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा
रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः।
शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च
पित्तात्मिकायां परिदूयनं च ॥ ४ ॥

अरुचि, प्रलाप, दाह, अधिक प्यास, शीतेच्छा, मुँह में कड़वापन, देह में उत्ताप और आँखों का लाल हो जाना हो तो पित्त के प्रकोप से तृष्णा समझनी चाहिए। ४।

टिप्पणी—मूल श्लोक में चकार का प्रयोग होने से मल-मूत्र और नेत्रों में पीतवर्ण समझना चाहिए। परिधूमन पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ है गले से धुआँ निकलना, अन्तर्दाह।

कफजा तृष्णा के लक्षण

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ
तृष्णा बलासेन भवेत्तथा तु ।
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च
तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥५॥

अपने कारणों से कुपित हुआ कफ जठराग्नि को आच्छादित कर लेता है और कफ के अवरोध से उत्पन्न हुई जठराग्नि की ऊष्मा अधोगत होकर जलवाहिनी नाड़ियों का शोषण कर लेती है, तब तृष्णा उत्पन्न होती है। इसमें नींद बहुत आती है, देह में भारीपन और मुँह का स्वाद मीठा रहता है। इस तृष्णा से पीड़ित मनुष्य अत्यन्त कृश हो जाता है, क्योंकि जठराग्नि के दूषित होने से धातुओं का संचय नहीं होता । ये लक्षण कफ की तृष्णा के हैं ।५।

क्षतजा तृष्णा के लक्षण

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां
तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ।

चौथी क्षतजा तृष्णा है । चोट लगने और रुधिर निकल जाने से यह तृष्णा उत्पन्न होती है ।

क्षतजा तृष्णा के लक्षण

रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा
तयाऽभिभूतश्च निशादिनेषु ॥६॥
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति
तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ।
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि
तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥७॥

रस का क्षय होने से जो तृष्णा होती है, उसे क्षयजा कहते हैं। इसमें मनुष्य बार-बार जल पीता है, और जल से तृप्ति नहीं होती। कोई आचार्य इसकी उत्पत्ति तीनों दोषों के प्रकोप से बताते हैं। सुश्रुत में कहे हुए रसक्षय के हृत्पीड़ा, कम्प, शोष, शून्यता, पिपासा आदि सम्पूर्ण लक्षण इस तृष्णा में होते हैं । ६-७ ।

आमजा तृष्णा के लक्षण

त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च
हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ।

अजीर्ण से उत्पन्न तृष्णा में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। हृत्शूल, बार-बार थूकना और देह में पीड़ा ये उपद्रव होते हैं।

भुक्तोद्भवा तृष्णा के लक्षण

स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं
गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ८ ॥

खटाई, नमक, चिकनी (और कड़वी) चीजें तथा गुरु (स्वभाव से गुरु, गुण में अथवा मात्रा में गुरु) अन्न खाने से शीघ्र ही तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। यह सातवीं तृष्णा है । ८ ।

उपसर्गजा तृष्णा के लक्षण

दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनः संशुष्कवक्त्रगलतालुः ।
भवति खलु योपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥९॥

किसी रोग के कारण जो तृष्णा उत्पन्न होती है, वह बहुत कष्ट-साध्य होती है। उसमें धातुओं का शोषण होता है, स्वर क्षीण हो जाता है, मूर्च्छा आती है, शरीर क्लान्त रहता है, मुख, तालु और कंठ सूखता है। इसे उपसर्गजा (रोग से उत्पन्न) तृष्णा कहते हैं । ९ ।

असाध्य तृष्णा के लक्षण

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रयुक्तानाम् ।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ १० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने तृष्णानिदानं समाप्तम् ॥ १६ ॥

ज्वर, मूर्च्छा, क्षय, कास, श्वास और अतीसार आदि के रोगी की तृष्णा कष्टसाध्य होती है। अत्यन्त बढ़ी हुई तृष्णा ऊपर कही हुई वातजा आदि में से चाहे जिस प्रकार की हो, असाध्य होती है। रोग के कारण जो मनुष्य दुर्बल हो गया हो, अथवा जिसे वमन होता हो उसको भी तृष्णा असाध्य होती है। जिस तृष्णा में ऊपर कहे हुए मुखशोष आदि सब उपद्रव हों उसे भी असाध्य समझना चाहिए।१०।

मूर्च्छा, भ्रम, निद्रा, तन्द्रा, सन्न्यासनिदान

मूर्च्छा के निदान और संप्राप्ति

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।
वेगाघातादभिघाताद्धीनसत्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥

करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥

सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।
षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

शरीर के क्षीण होने से, किसी दोष के बढ़ने से, विरुद्ध (मछली-दूध आदि) आहार करने से, मल-मूत्र आदि का वेग रोकने से, चोट लगने से, सत्व गुण के क्षीण होने से, उत्कट दोष से; बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियों के प्रवर्तक केन्द्र) में प्रवेश करते हैं तो मनुष्यों को मूर्च्छा आती है। कुपित वातादि दोष संज्ञा कराने वाली नाड़ियों को जब आच्छादित कर लेते हैं तो मनुष्य सुख-दुःख का अनुभव नहीं कर सकता और सहसा काष्ठ की तरह गिर पड़ता है। उसे मोह अथवा मूर्च्छा कहते हैं। वह छः प्रकार की होती है। वातादि दोषों से पृथक्-पृथक् ३, रुधिर से १, मद्य से १ तथा विष से १, किन्तु छहो प्रकार की मूर्च्छा में पित्त की ही प्रधानता होती है। १-५।

मूर्च्छा के पूर्वरूप

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च।
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत्॥ ६ ॥

हृदय में पीड़ा, जँभाई, ग्लानि और चेतनाशक्ति में कमी, ये लक्षण सब प्रकार की मूर्च्छा के पूर्वरूप हैं। वातादि दोषों के भेद से उनका निश्चय करना चाहिए। (दोषों का भेद व्यक्तरूप अवस्था में ही जाना जाता है, पूर्वरूप अवस्था में नहीं, यह जेज्जट कहते हैं)। ६।

वातजा मूर्च्छा के लक्षण

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते॥ ७ ॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावाऽरुणच्छाया मूर्च्छाये वातसंभवे॥ ८ ॥

आकाश का रंग नीला, काला अथवा लाल देखता हुआ, अन्धकार में प्रवेश करता हुआ जो मनुष्य मूर्च्छा को प्राप्त हो और शीघ्र ही होश में आ जाय, देह में कम्प हो, अंगों में टूटने की-सी पीड़ा

हो, हृदय में पीड़ा हो, देह दुर्बल और देह का रंग काला या लाल आभायुक्त हो जाय तो उसे वात की मूर्च्छा समझना चाहिए। ७-८।

पित्तजा मूर्च्छा के लक्षण

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥ ९ ॥
(सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः।
जातमात्रे पतति च शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥)
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसंभवे ॥ १० ॥

जो आकाश को लाल, हरा अथवा पीले रंग का देखता हुआ, अंधकार में प्रवेश करता हुआ मूर्च्छित हो, होश में आने पर पसीना आवे। (प्यास और देह में जलन हो, आँखें व्याकुल, पीली या लाल हो जायँ, मूर्च्छा के उत्पन्न होते ही मनुष्य गिर पड़े और शीघ्र ही फिर होश में आ जाय), पतला दस्त हो, देह पीली आभायुक्त हो जाय, तो ये पित्त की मूर्च्छा के लक्षण हैं। ९-१०।

टिप्पणी—कोष्ठ में बन्द पाठ संक्षिप्त प्रतीत होता है; क्योंकि मूर्च्छा भंग होने का समय वात का द्योतक है।

कफजा मूर्च्छा के लक्षण

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसंभवे ॥ १२ ॥

जो आकाश को बादलों के समान अथवा अन्धकार से आच्छादित देखता हुआ, अंधकार में प्रवेश करता हुआ मूर्च्छा को प्राप्त हो और देर में होश आवे, अंगों में भारीपन हो, सब अंग गीले चमड़े से ढके हुए के समान शीतल मालूम हों, उबकाई आवे और मुँह से लार गिरे तो कफ की मूर्च्छा समझना चाहिए। ११-१२।

सन्निपातजा मूर्च्छा के लक्षण

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः ।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥१३॥

जिस मूर्च्छा में ऊपर कहे हुए तीनों दोषों के लक्षण प्रकट हों, अपस्मार के समान मूर्च्छा आवे, शीघ्र ही वह मनुष्य गिर पड़े और देर में होश आवे, किन्तु अपस्मार के समान मुँह से फेन न आवे, दाँत बैठ न जायँ और आँखों की पुतली भी न चढ़ें तो उसे त्रिदोषक मूर्च्छा समझना चाहिए । १३ ।

रक्तजा मूर्च्छा के लक्षण

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥१४॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ।

पृथ्वी और जल तमोरूप हैं, इसलिए रुधिर की गन्ध भी तमोरूप है, इसी कारण रुधिर की गन्ध से मनुष्यों को मूर्च्छा आती है । किसी आचार्य का कहना है कि रुधिर का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे देख कर मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है । रुधिर पृथ्वी और जल का रूप है, इसलिए वह तमोरूप है । जो मनुष्य तामस प्रकृति के हैं, उन्हीं को रुधिर की गन्ध से मूर्च्छा आती है । जो राजस अथवा सात्त्विक प्रकृति के हैं, उनको रुधिर की गन्ध से मूर्च्छा नहीं आती । १४ ।

विष और मद्य की मूर्च्छा के लक्षण

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥ १५ ॥
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ।

विष और मद्य में रूक्ष आदि दस गुण तीव्रतर रूप में हैं अतः उन दस गुणों के कारण विष और मद्य से यथोक्त (गुणों की शक्ति के अनुसार) मूर्च्छाएँ होती हैं । १५ ।

टिप्पणी—विष के दस गुण सुश्रुताचार्य ने रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायि, विकासि, विशद, लघु और अपाकि कहे हैं। चरकाचार्य ने अपाकि के स्थान पर अनिर्देश्य रस कहा है। मद्य के गुण वाग्भटाचार्य ने तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायि, आशुकर, लघु, विकासि, विशद बतलाये हैं। ये गुण साधारणतया दोनों में समान ही होते हैं। विष में तीव्रतर और मद्यमें तीव्र होते हैं। इसी से विषज मूर्च्छा स्वयं दूर नहीं होती। मद्यज स्वयं मद्य पचने पर दूर हो जाती है।

रक्तजादि मूर्च्छात्रय के रूप

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥१६॥
मद्येन विलपन्शेते नष्टविभ्रान्तमानसः ।
गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् १७
वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते ।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥

रुधिर की मूर्च्छा में दृष्टि और सब अंग निश्चल हो जाते हैं, श्वास की गति में कुछ रुकावट हो जाती है। मदिरा की मूर्च्छा में मनुष्य बकता हुआ सो जाता है, उसका चित्त विक्षिप्त रहता है, स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। जब तक मदिरा का परिपाक नहीं हो जाता, तब तक मनुष्य हाथ-पैर पटकता हुआ मूर्च्छित रहता है। विष की मूर्च्छा में देह में कम्प, नींद और प्यास होती है, अँधेरा छा जाता है। जड़, पत्ते और दूध आदि के भेद से जैसा तीव्र विष होता है, वैसी ही तीव्र मूर्च्छा होती है। १६-१८।

दोषभेद से मूर्च्छा के लक्षण

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥

पित्त और तमोगुण की अधिकता से मूर्च्छा होती है। पित्त, वायु और रजोगुण की अधिकता से भ्रम होता है। वात, कफ और तमोगुण की अधिकता से तन्द्रा होती है तथा कफ और तमोगुण की अधिकता से निद्रा आती है। १९।

तन्द्रा के लक्षण

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥२०॥

इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण न कर सकें, देह में भारीपन, जम्हाई और क्लम (अनायास थकावट) हो और निद्रार्त के समान जिसकी चेष्टा हो, उसे तन्द्रा के वश समझना चाहिए। (तन्द्रा में केवल इन्द्रियों को मोह होता है)। २०।

टिप्पणी—भ्रम के लक्षण—जिस रोग में मनुष्य का शिर चक्र की तरह घूमता है (बाहर या भीतर) जिससे वह सदैव पृथ्वी पर गिर जाता है वह भ्रम रोग है।

क्लम के लक्षण—शरीर में जो श्वासवृद्धि के बिना अनायास ही बढ़कर इन्द्रियों के विषयग्रहण में बाधा पहुंचाता है, वह क्लम कहलाता है।

सन्यास भी मूर्च्छा का भेद है

दोषेषु मदमूर्च्छा या कृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति सन्यासो नौषधैर्विना ॥२१॥

मूर्च्छा का एक भेद सन्यास है। मद आदि की मूर्च्छा दोषों का वेग शान्त होने पर अपने आप शान्त हो जाती है, किन्तु सन्यास औषध के बिना शान्त नहीं होता। २१।

सन्यास के लक्षण

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
सन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥२२॥
स ना सन्याससन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् २३

इति श्री माधवकरविरचिते माधवनिदाने मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रासन्यासनिदानं समाप्तम्। १७।

अत्यन्त कुपित हुए दोष वाणी, मन और शरीर की सब क्रियाओं को नष्ट करके हृदय में व्याप्त होकर निर्बल मनुष्य को मूर्च्छित कर देते हैं, उस मूर्च्छा का नाम संन्यास है। संन्यास से पीड़ित मनुष्य मुर्दे के समान होकर काठ की तरह गिर पड़ता है, यदि शीघ्र फल देनेवाले (सूचीभेद, तीक्ष्ण अंजन और नस्य आदि) उपाय नहीं किये जाते तो वह रोगी शीघ्र ही मर जाता है। २२–२३।

पानात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रमनिदान

पानात्यय

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥

विष में जो गुण बताये गये हैं वे सब मदिरा में भी हैं, इसलिए अविधि से मद्य पीने पर उग्र मदात्यय उत्पन्न होता है। १।

मद्य का स्वभाव

किंतु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ २ ॥
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥

मद्य स्वभाव से ही अन्न के समान शरीर का पोषण करनेवाला है, किन्तु विधि से पीने पर जिस प्रकार अमृत के समान है वैसे ही अविधि से पीने पर रोग का कारण है। अन्न मनुष्यों का जीवन है, परन्तु अयुक्ति से खाया हुआ अन्न जीवन का विनाशक होता है। अति मात्रा में खाने से विसूचिका आदि रोग उत्पन्न करके शरीर को

नष्ट कर देता है। विष प्राणनाशक है, किन्तु युक्ति से वही विष रसायन हो जाता है। २–३।

टिप्पणी—मद्य का औषधयोजना में रोगनाश के लिए आवश्यक होने पर ही प्रयोग करना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति को हितकर नहीं है क्योंकि ओज में 'गुरु शीत मृदु श्लक्ष्ण बहुल मधुर स्थिर प्रसन्न पिच्छिल स्निग्ध' दश गुण होते हैं जो मद्य के 'लघु उष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्म अम्ल व्यवाय आशु रूक्ष विकाशि विशद' दश गुणों के सर्वथा विपरीत है अतः मद्यपान ओज के दश गुणों को क्षुब्ध कर चित्त को विकृत करके मदात्यय रोग को उत्पन्न करता है। साधारण मात्रा में मद्य का चित्त में उत्साह, बुद्धि, स्मृति प्रीतिकर गुण (प्रथम मद के लक्षण) बतलाया है। वे ओज के अल्प मात्रा में क्षुब्ध होने के कारण हैं, ओज किंचित् उत्तेजित होकर अधिक कार्य करने लगता है जिससे शक्ति बढ़ी हुई मालूम देती है। किन्तु उस मद्य के पच जाने पर वे शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं यहाँ तक पहली स्थिति से भी अधिक क्षीणता मालूम देती है इससे सिद्ध होता है कि अल्प मद्य भी हानिकर है अतः धर्मग्रन्थों में हानिकर बतलाया है।

जिस प्रकार अग्नि पर पात्र में रक्खा हुआ दुग्ध आग लगने पर पात्र में उबलता है और मात्रा में बढ़ा हुआ मालूम देता है; किन्तु अग्नि का वेग कम होने पर फिर उसी दशा में हो जाता है और दूध जलकर बढ़ने के बजाय कुछ कम हो जाता है। यही दशा ओज की है। इस रूपक में ओज को दूध, शरीर को पात्र और मद्य को अग्नि समझिए। रोग की दशा में रोगी को अनुकूल पड़ने पर ही मद्य सेवन उचित है, स्वस्थावस्था में उचित नहीं है। मद्य की अन्न से उपमा दी है इससे भी स्वस्थावस्था में मद्य का पीना सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि मूल श्लोक में 'युक्तियुक्त' पद युक्तिपूर्वक सेवन का ही महत्त्व बतलाता है और सेवन की युक्ति भी है; किन्तु किसलिए? क्षुधा को नाश करने के लिए। क्षुधा क्या है? स्वाभाविक व्याधि है। यथा—"स्वभावबलप्रवृत्ता क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः" (सु० सू० स्था० अ० २४) सारांश यह है कि अन्न स्वाभाविक व्याधि क्षुधा का नाश करता है; किन्तु क्षुधा व्याधि के अभाव में हानि करता है। अतः सिद्ध होता है कि जैसे अन्न (क्षुधारूप) व्याधि में औषध रूप से लाभप्रद है वैसे ही मद्य भी (मदात्यय आदि) व्याधि में औषध रूप से लाभप्रद है अन्यथा दोनों ही हानिप्रद हैं।

स्वस्थावस्था में मद्य का सेवन सब प्रकार से निषिद्ध सिद्ध होता है।

विधि से मद्य पीने के फल

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥
स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।
भवेदायुः प्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥
काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ।
विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संनिहिता गुणाः ॥ ६ ॥

विधि से, उचित मात्रा में, उचित समय पर, हितकर भोजन के साथ, प्रसन्नता से, जो मनुष्य मद्य पीता है उसे अमृत के समान गुण करता है। स्निग्ध भोजन अथवा मांस या अन्य भक्ष्य के साथ मदिरा पीने से आयु और बल की वृद्धि होती है, शरीर पुष्ट होता है। विधिपूर्वक मदिरा का सेवन करने से सौन्दर्य, सन्तोष, तेज और बल की वृद्धि होती है—मदिरा में ये हितकर गुण हैं। ४–६।

प्रथम मद के लक्षण

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च
पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च ।
संपाठगीतस्वरवर्धनश्च
प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ७ ॥

उक्त विधि के विपरीत मद्य का सेवन करने से मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। वह तीन प्रकार का होता है। पूर्व मद, मध्यम मद, अन्तिम मद। क्रम से इनके उदाहरण कहते हैं। बुद्धि और स्मरण-शक्ति ठीक रहे, प्रसन्नता और सुख हो, खाने-पीने में और नींद में अनुराग बढ़े, पढ़ने और गाने में स्वर की वृद्धि हो। यह पूर्व मद के लक्षण हैं, यह अति रमणीय होता है। ७।

द्वितीय मद के लक्षण

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः
सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः ।
आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च
ध्येयेन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ८ ॥

मध्यम मद में बुद्धि, वाणी और स्मरण-शक्ति ठीक नहीं रहती, चेष्टा बिगड़ जाती है, मनुष्य उन्मत्त के समान आचरण करता है, आचरण ठीक नहीं रहता, बार-बार आलस्य और नींद आती है । ८ ।

तृतीय मद

गच्छेदगम्यान्न गुरूंश्च मन्येत्
खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ।
ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि
मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ॥ ९ ॥

तृतीय मद में मनुष्य अगम्या (गुरुपत्नी आदि) स्त्रियों से गमन करता है, बड़ों का आदर नहीं करता, अभक्ष्य (खाने के अयोग्य) पदार्थ खाता है, संज्ञा नष्ट हो जाती है और हृदय की गुप्त बातें कहता है । इस मद में मनुष्य अस्वतन्त्र (नशा के वश) हो जाता है । ९ ।

चतुर्थ मद

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः ।
कार्याकार्यविभागज्ञो मृतादप्यपरो मृतः ॥ १० ॥
को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् ।
बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ ११ ॥

चौथे मद में मनुष्य मूढ़ हो जाता है, टूटे हुए वृक्ष के समान क्रियाहीन हो जाता है, करने योग्य और न करने योग्य कामों को नहीं समझता (विवेक नहीं रहता), उसकी दशा मुर्दे से भी बढ़कर अधम हो जाती है। उन्माद के समान ऐसे नित्य मद को कौन बुद्धिमान् मनुष्य पसन्द करेगा ? हिंसक पशुओं से व्याप्त दुर्गम वन में जाने के समान इस निन्दित मद को कोई विचारशील स्वतन्त्र मनुष्य प्राप्त नहीं होगा । १०-११ ।

विधि के विपरीत मद्य पीने के विकार

निर्भुक्तमेकान्तत एक मद्यं
निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।
आपादयेत्कष्टतमान्विकारा-
नापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥

भोजन के विना अकेली मद्य का प्रतिदिन सेवन करनेवाले मनुष्य को अत्यन्त कष्टदायक (मदात्यय आदि) विकार उत्पन्न हो जाते हैं और (अंत में) शरीर को भी नष्ट कर देते हैं । १२ ।

टिप्पणी—शराब पीनेवाले को स्निग्ध मांस आदिक भोजन न मिल सके तो नित्य शराब पीना अनेक रोग उत्पन्न करके उसके शरीर का नाश भी कर देता है ।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन
शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन
वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १३ ॥
अत्यम्बुभक्षावततोदरेण
साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ।

उष्णाभितप्ते न च सेव्यमानं
करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ १४ ॥

क्रोधित, भयभीत, भूखा, प्यासा अथवा शोक से जो व्याकुल हो; व्यायाम से, भारी बोझ उठाने से अथवा बहुत मार्ग चलने से जिसका शरीर क्षीण हो गया हो; मल मूत्र आदि के वेग रोकने से जो पीड़ित हो, बहुत जल पीने से जिसका पेट भरा हो, अजीर्ण में जिसने भोजन किया हो, जिसका शरीर निर्बल हो, धूप में रहने से जो पीड़ित हो, ऐसी दशा में मदिरा पीने से अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। १३-१४।

मद्य विकार के भेद

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

मदिरा पीने की विधि के विपरीत मदिरा पीने से पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम, ये विकार उत्पन्न होते हैं। इनके लक्षण आगे कहते हैं। १५।

दोषभेद से मदात्यय के लक्षण

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥
तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ।
ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

वातिकमदात्यय के लक्षण—हिक्का, श्वास, शिरःकम्प, पार्श्वशूल,

निद्रा न आना और अति प्रलाप, ये लक्षण वाताधिक मदात्यय के हैं। पैत्तिक मदात्यय के लक्षण—प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मूर्च्छा, अतीसार, भ्रम और देह का हरित वर्ण होना, पित्ताधिक मदात्यय के लक्षण हैं। श्लैष्मिक मदात्यय के लक्षण—वमन, अरुचि उबकाई, तन्द्रा, शरीर गीले कपड़े से पोंछा हुआ सा मालूम होना, देह में भारीपन, ठंड लगना, ये लक्षण कफाधिक मदात्यय के हैं। उक्त तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो त्रिदोषज मदात्यय समझना चाहिए। १६-१८।

परमद के लक्षण

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च
विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च ।
लिङ्गं परस्य च मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ।१९।

कफ की वृद्धि (नासास्राव आदि), अंगों में भारीपन, मुँह में विरसता, मल-मूत्र का अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, प्यास, सिर में पीड़ा और सन्धियों में टूटने की-सी पीड़ा, ये परमद के लक्षण हैं। १९।

पानाजीर्ण के लक्षण

आध्मानमुग्रमथ चोद्गिरणं विदाहः
पानेऽजरां समुपगच्छति लक्षणानि ।

अत्यन्त पेट फूलना, वमन होना (अथवा डकारें आना) और अन्न का विदाह ये पानाजीर्ण के लक्षण हैं।

पानविभ्रम के लक्षण

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूमा
मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदाहाः ॥ २० ॥
द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः ।

हृदय और सब अंगों में सुई चुभने के समान पीड़ा, कफ का निकलना, कण्ठ से धुवाँ निकलने की-सी पीड़ा, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, सिर में पीड़ा देह में जलन, सुराविकार (मैरेय आदि) और अन्न-विकार (लड्डू आदि) से अनिच्छा, ये लक्षण पानविभ्रम के हैं। सब आचार्यों ने ऐसा कहा है। २०।

मदात्यय के असाध्य लक्षण

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमपि पानहतं त्यजेत्तु ॥ २१ ॥

जिसका ऊपर का होठ सिकुड़ गया हो, जिसे बाहर से ठण्ढ बहुत लगती हो और भीतर अत्यन्त दाह हो, अथवा कभी ठण्ढ लगती हो और कभी अत्यन्त दाह हो, तेल लगाये हुए के समान मुँह का वर्ण हो गया हो, ऐसे मदात्ययविकारवाले की चिकित्सा न करनी चाहिए। ये असाध्य लक्षण हैं। २१।

मदात्यय के उपद्रव

जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा।
हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २२ ॥

जीभ, होठ और दाँत काले या नीले तथा नेत्र पीले अथवा अत्यन्त लाल हो गये हों, हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पार्श्वशूल, खाँसी और भ्रम ये उपद्रव हों तो कष्टसाध्य समझना चाहिए। २२।

टिप्पणी—आचार्य चरक ने ध्वंसक और विक्षेपक नामक दो मद्य-विकार लिखे हैं।

ध्वंसक के लक्षण—कफस्राव, कण्ठ और मुखशोष, शब्द की असहिष्णुता, तन्द्रायोग और निद्रायोग।

विक्षेपक के लक्षण—हृदय और कण्ठ अवरोध, मोह, वमन, अङ्गपीड़ा, ज्वर, पिपासा, शिरःशूल इन दोनों का समावेश चिकित्साकार्य के लिए वातिक मदात्यय में किया जाता है।

दाहनिदान

मद्यज दाह के लक्षण

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

मदिरा पीने से कुपित पित्त की ऊष्मा त्वचा में प्राप्त होकर, पित्त और रुधिर के प्रकोप से बढ़कर भयानक दाह उत्पन्न करती है। पित्त (वृद्धि) के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। १।

रक्तज दाह के लक्षण

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ।
स उष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ।

सम्पूर्ण देह में दौड़नेवाला रुधिर जब कुपित होता है तो शरीर में दाह उत्पन्न करता है। इस व्याधि में समीप रक्खी हुई अग्नि के समान शरीर में ताप होता है, प्यास लगती है, शरीर और नेत्रों का वर्ण लाल हो जाता है, तपाये हुए लोहे के ऊपर जल छोड़ने से जैसी गन्ध आती है वैसी गन्ध उसकी देह और मुँह से आने लगती है। शरीर में चिनगारी लगने की सी व्यथा होती है। ये रक्तज दाह के लक्षण हैं। २।

पित्तज दाह के लक्षण

पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥३॥

पित्त के विकार से जो दाह होता है उसमें पित्तज्वर[1] के समान लक्षण होते हैं। उसकी चिकित्सा पित्तज्वर के समान करनी चाहिए। ३।

---

१. पित्तज्वर में आमाशय-विकार आदि अधिक उपद्रव होते हैं, किंतु पित्त के दाह में आमाशय-विकार आदि नहीं होते।

तृष्णानिरोधज दाह के लक्षण

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ।
सबाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ ४ ॥
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ।

प्यास रोकने से जलरूप धातु (रस) क्षीण हो जाती है और पित्त की ऊष्मा बढ़ जाती है, जिससे देह में भीतर और बाहर दाह होने लगता है। संज्ञा नष्ट हो जाती है। कण्ठ, तालु, होठ सूखते हैं और रोगी जीभ निकालकर काँपने लगता है। ४।

रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह के लक्षण

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥ ५ ॥

शस्त्र आदि के प्रहार से ऊपर के अंगों में यदि घाव हो जाता है और उस घाव के द्वारा निकला हुआ रुधिर कोष्ठ में भर जाता है तो बड़ा दुस्तर 'अन्य' दाह उत्पन्न होता है। ५।

टिप्पणी—रक्तज दाह ऊपर कह चुके हैं, उससे भिन्न यह पूर्ण कोष्ठज दाह है, इसलिए मूल में 'अन्य' शब्द का प्रयोग है। कोष्ठ शब्द से हृदय, फुफ्फुस आदि ग्रहण करने चाहिए। यथा—स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुका फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्याभिधीयते।

(सु० चि० स्था० अ० २)

धातुक्षयज दाह के लक्षण

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृडर्दितः ।
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ६ ॥

रस आदि धातुओं के क्षीण होने से जो दाह होता है, उसमें मूर्च्छा आती है, प्यास बहुत लगती है, स्वर मन्द पड़ जाता है और रोगी निश्चेष्ट हो जाता है। अत्यन्त पीड़ित उस रोगी की

मृत्यु हो जाती है अथवा दाह से अत्यन्त पीड़ित उस मनुष्य की यदि शीघ्र चिकित्सा नहीं की जाती तो उसकी मृत्यु हो जाती है। ६।

मर्माभिघातज दाह के लक्षण

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।
सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥७॥

सिर, हृदय और मूत्राशय आदि मर्म स्थानों में चोट लगने से उत्पन्न दाह असाध्य होता है। यह मर्माभिघातज सातवाँ दाह है। शरीर के भीतर दाह हो और बाहर से सब अंग शीतल मालूम हों तो सब प्रकार के दाह असाध्य होते हैं। ७।

उन्मादनिदान

उन्माद की निरुक्ति

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

वृद्धि को प्राप्त अथवा हृदय में प्राप्त वातादि तीनों दोष विमार्गगामी होकर, अर्थात् मनोवह धमनियों में प्राप्त होकर मन को विक्षिप्त कर देते हैं; अतः यह मानस व्याधि है। इसे उन्माद कहते हैं। १।

उन्माद के भेद

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
मानसेन च दुःखेन स च पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ।
स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

अत्यन्त कुपित वातादि दोषों से पृथक्-पृथक् ३, तीनों दोषों के प्रकोप से १, मानसिक दुःख से १, विष से १, ये छः प्रकार के उन्माद होते हैं। इनमें दोषों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। यह रोग बढ़ा न हो और नया हो, तो उस अवस्था में इसे मद कहते हैं। २-३।

उन्माद के सामान्य निदान

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि
प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो
मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥

विरुद्ध (क्षीर-मत्स्यादि) भोजन, विष मिला हुआ भोजन, अपवित्र (चंडाल आदि से स्पर्श किया हुआ) भोजन करने से, देवता, गुरु अथवा ब्राह्मणों का अपमान करने से, मन के ऊपर भय अथवा हर्ष का अभिघात होने (अथवा काम-क्रोध आदि का घोर प्रभाव पड़ने) से शरीर की विषम चेष्टा (लक्षण) से युक्त उन्माद रोग उत्पन्न होता है। ४।

उन्माद की संप्राप्ति

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा
बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि
प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

ऊपर कहे हुए कारणों से अल्प सत्त्वगुणवाले मनुष्य के वातादि दोष कुपित होकर, बुद्धि के निवास-स्थान हृदय को और बुद्धि को भी दूषित करके, हृदय के आश्रित मनोवह स्रोतों (दस धमनियों) में व्याप्त होकर मनुष्य के मन को शीघ्र विक्षिप्त कर देते हैं। ५।

उन्माद के सामान्य रूप

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च
पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं
सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

बुद्धि-विभ्रम, मन में चंचलता, दृष्टि में आकुलता, अधीरता, असम्बद्ध (ऊटपटाँग-बेसिलसिले) भाषण और हृदय में शून्यता (स्मरणशक्ति का नष्ट होना), ये उन्माद रोग के सामान्य लक्षण हैं । ६ ।

वातज उन्माद के लक्षण

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातु-
क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥
अस्थानहासस्मितनृत्यगीत-
वागङ्गविक्षेपणरोदनानि ।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च
जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

रूखा और ठंडा अन्न खाने से, अल्प भोजन करने से, विरेचन (अथवा वमन) के मिथ्यायोग से, धातुओं के क्षीण होने से, उपवास करने से, अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त, वायु चिन्ता और शोक आदि से पीड़ित हृदय (मन) को दूषित करके बुद्धि और स्मरण शक्ति को शीघ्र नष्ट कर देता है । वातज उन्माद का रोगी अकारण हँसता, मुसकिराता, नाचता, गाता और विना प्रसंग के बोलता है,

अकारण हाथ-पैर चलाता और रोता है। उसका शरीर रूक्ष, दुर्बल और कुछ लाल वर्ण हो जाता है, आहार के जीर्ण होने पर रोग बढ़ता है। ये लक्षण वातज उन्माद में होते हैं। ७-८।

पित्तज उन्माद के लक्षण

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतै-
भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य
हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥
अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः
सन्तर्जनातिद्रवणौष्ण्यरोषाः ।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः
पीता च भाः पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

अजीर्ण रहने से, कड़वी, खट्टी, विदाही और गरम चीजें खाने से बढ़ा हुआ पित्त कुपित होकर अत्यन्त उग्र उन्माद उत्पन्न करता है। चिन्ता और शोक आदि से पीड़ित अजितेन्द्रिय पुरुष के हृदय (मन) को दूषित करके बुद्धि और स्मरण-शक्ति को शीघ्र नष्ट कर देता है। इस उन्माद में ये लक्षण होते हैं—सहनशीलता नहीं रहती, रोगी विशेष प्रकार से नाचने की सी चेष्टा करता है, संरम्भ नग्न हो जाता है, दूसरों को त्रास देता है, भागता है, देह में उष्णता रहती है अर्थात् दाह होता है, क्रोधी हो जाता है, छाया, शीतल अन्न और शीतल जल की इच्छा करता है, देह का रंग पीला हो जाता है। ९-१०।

कफज उन्माद के लक्षण

संपूर्णैर्मन्दविचेष्टितस्य
सोष्मा कफो मर्मणि संप्रदुष्टः ।

बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहत्य चित्तं
प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम् ॥११॥
वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च
नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा ।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुक्ते
नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात् ॥१२॥

परिश्रम न करनेवाले मनुष्य के भोजन आदि से वृद्धि को प्राप्त हुआ कफ पित्त के साथ हृदय में दूषित होकर बुद्धि और स्मृति को नष्ट और चित्त को मोहित करके उन्माद रोग उत्पन्न करता है। उसमें ये लक्षण होते हैं—बहुत कम अथवा धीरे बोलता है, भोजन में अरुचि होती है, स्त्री प्रिय होती है, निर्जन स्थान प्रिय होता है। अतिनिद्रा, वमन, लार का बहना, भोजन करने पर रोग बढ़ना और नख, नेत्र, त्वचा आदि सफेद हो जाना ये कफजोन्माद के लक्षण हैं। ११-१२।

सन्निपातज उन्माद के लक्षण

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः
सर्वैः समस्तैः स च हेतुभिः स्यात् ।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्
विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

वातादि सब दोष अपने-अपने कारणों से कुपित होकर अति घोर उन्माद रोग उत्पन्न करते हैं। इस उन्माद में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। यह सन्निपातज उन्माद असाध्य होता है; क्योंकि एक दोष की औषध दूसरे दोष के विरुद्ध पड़ती है, अतः त्रिदोषज उन्माद की चिकित्सा न करनी चाहिए। १३।

टिप्पणी—सर्वैः समस्तैर्हेतुभिः पद से वातादि दोष और मन के दोष,

रजोगुण, तमोगुण सब मिलकर अपने अपने कारणों से कुपित होकर उन्माद उत्पन्न करते हैं, यह समझना चाहिए। विरुद्धभैषज्यविधि पद का आशय है कि त्रिदोष में वात आदि के प्रतिकूल चिकित्सा आवश्यक होती है, वह परस्पर प्रतिकूल पड़ती है और त्रिदोषनाशक द्रव्य थोड़े हैं, जो उन्माद में अनुपयोगी होते हैं, इसलिए असाध्य बतलाया है।

शोकादिजन्य उन्माद के लक्षण

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतमो मनसो विकारः॥१४॥
चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः।

चोरों, राजपुरुषों, शत्रुओं अथवा सिंह-बाघ आदि हिंसक जीवों से भयभीत होने, अथवा धन वा बान्धवों का विनाश होने से, अथवा अप्राप्त स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा से मन को अत्यन्त खेद होने पर प्रबल मनोविकार (उन्माद) हो जाता है। १४। इस उन्माद में मनुष्य विचित्र प्रकार से बोलता है, गुप्त बातें भी कह डालता है, उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है, अतएव मूढ़ हो जाता है, कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोता है।

विषजन्य उन्माद के लक्षण

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथभवेद्विसंज्ञः॥१५॥

विष के उन्माद में आँखें लाल हो जाती हैं, बल और इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है, शरीर का तेज नष्ट हो जाता है, मुँह काला पड़ जाता है और संज्ञा नष्ट हो जाती है। रोगी बहुत ही दीन हो जाता है। १ ।

उन्माद के असाध्य लक्षण

अवाक्शी वाऽप्युदक्षी वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरूको ह्यसंदेहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

जो उन्माद का रोगी मुँह नीचा किये रहे अथवा ऊपर को उठाये रहे, जिसका बल और मांस क्षीण हो गया हो, और नींद न आवे, उसे असाध्य समझे। वह निस्सन्देह मर जाता है। १६।

भौतिक उन्माद के सामान्य लक्षण

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो
ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य
भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥

वाणी, पराक्रम, शूरता, शारीरिक क्रिया, ज्ञान, विज्ञान, स्मरण-शक्ति आदि मनुष्यों की सी न हो और उन्माद का कोई समय नियत न हो, उसे भौतिक उन्माद समझना चाहिए। १७।

देवजुष्ट उन्माद के लक्षण

संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो
निस्तन्द्रीरवितथसंस्कृतप्रभाषी ।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १८ ॥

हमेशा सन्तुष्ट और पवित्र रहे, देह में दिव्य पुष्प-माला की सुगन्ध हो, सुस्ती न आवे, सत्य बोले और शुद्ध भाषा बोले, तेजस्वी हो, नेत्र स्थिर हों, दूसरों को वरदान देता हो, और ब्राह्मणों का भक्त हो, इन लक्षणों से देवजुष्ट उन्माद समझना चाहिए (देवग्रह से गणमातृका आदि भी समझना चाहिए।)। १८।

असुरजन्य उन्माद के लक्षण

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ।
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १६ ॥

पसीना आवे, ब्राह्मण, गुरु और देवताओं की निन्दा करे, दृष्टि कुटिल हो, निर्भय रहे, वेदों और धर्म की निन्दा करे, खाने-पीने से कभी सन्तुष्ट न हो, दुष्टात्मा हो, ऐसे उन्माद रोगी को असुर से पीड़ित समझना चाहिए । १६ ।

गन्धर्वाविष्ट उन्माद के लक्षण

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

सदा प्रसन्न रहे, विशेषकर नदियों के किनारे और वनों में रहता हो, सदाचारी हो, गीत, सुगन्ध और पुष्पमाला जिसे प्रिय हो, नाचता हुआ और अच्छे-अच्छे थोड़े शब्द बोलता हुआ हँसता रहे, ऐसे उन्माद रोगी को गन्धर्वग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २० ।

यक्षाविष्ट उन्माद के लक्षण

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः ।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

आँखें ताम्र के समान लाल हों, सूक्ष्म लाल वस्त्र धारण करता हो, गम्भीर हो, शीघ्र चलता हो, बोलता कम हो, सहनशील और

तेजस्वी हो, किसे क्या दूँ यह कहता हो, इन लक्षणों से यक्ष-ग्रह पीड़ित समझना चाहिए । २१ ।

पितृजुष्ट उन्माद के लक्षण

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ।
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥२२॥

कुश और पत्ते बिछाकर पितरों को पिंड देता हो, और दाहने कन्धे पर वस्त्र रखकर तर्पण करता हो, शान्तचित्त हो, मांस, तिल, गुड़, और खीर खाने की इच्छा करता हो तथा पितरों का भक्त हो, उसे पितृग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २२ ।

नागाविष्ट उन्माद के लक्षण

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्
सृक्कण्यो विलिहति जिह्वया तथैव ।
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्ज्ञातव्यो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥२३॥

जो कभी-कभी छाती के बल साँप की तरह रेंगता हो, जीभ से दोनों होठों के किनारों को चाटता हो, क्रोधी हो, गुड़, मधु, दूध और खीर खाने की इच्छा करता हो, उसे सर्पग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २३ ।

राक्षसाविष्ट उन्माद के लक्षण

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिर्दयोऽतिशूरः ।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥२४॥

असुरजन्य उन्माद के लक्षण

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ।
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १९ ॥

पसीना आवे, ब्राह्मण, गुरु और देवताओं की निन्दा करे, दृष्टि कुटिल हो, निर्भय रहे, वेदों और धर्म की निन्दा करे, खाने-पीने से कभी सन्तुष्ट न हो, दुष्टात्मा हो, ऐसे उन्माद रोगी को असुर से पीड़ित समझना चाहिए । १९ ।

गन्धर्वाविष्ट उन्माद के लक्षण

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

सदा प्रसन्न रहे, विशेषकर नदियों के किनारे और वनों में रहता हो, सदाचारी हो, गीत, सुगन्ध और पुष्पमाला जिसे प्रिय हो, नाचता हुआ और अच्छे-अच्छे थोड़े शब्द बोलता हुआ हँसता रहे, ऐसे उन्माद रोगी को गन्धर्वग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २० ।

यक्षाविष्ट उन्माद के लक्षण

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः ।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

आँखें ताम्र के समान लाल हों, सूक्ष्म लाल वस्त्र धारण करता हो, गम्भीर हो, शीघ्र चलता हो, बोलता कम हो, सहनशील और

तेजस्वी हो, किसे क्या दूँ यह कहता हो, इन लक्षणों से यक्ष-ग्रह पीड़ित समझना चाहिए । २१ ।

पितृजुष्ट उन्माद के लक्षण

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ।
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥२२॥

कुश और पत्ते बिछाकर पितरों को पिंड देता हो, और दाहने कन्धे पर वस्त्र रखकर तर्पण करता हो, शान्तचित्त हो, मांस, तिल, गुड़, और खीर खाने की इच्छा करता हो तथा पितरों का भक्त हो, उसे पितृग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २२ ।

नागाविष्ट उन्माद के लक्षण

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्
सृक्कण्यो विलिहति जिह्वया तथैव ।
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्ज्ञातव्यो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥२३॥

जो कभी-कभी छाती के बल साँप की तरह रेंगता हो, जीभ से दोनों होठों के किनारों को चाटता हो, क्रोधी हो, गुड़, मधु, दूध और खीर खाने की इच्छा करता हो, उसे सर्पग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २३ ।

राक्षसाविष्ट उन्माद के लक्षण

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिर्दयोऽतिशूरः ।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥२४॥

मांस, रुधिर और अनेक प्रकार की मदिरा की इच्छा करता हो; अति निर्लज्ज, अति निर्दय, बड़ा शूर, क्रोधी, महाबलवान्, पवित्रता का शत्रु हो और रात में घूमता हो, ऐसे उन्मादरोगी को राक्षस से पीड़ित समझना चाहिए। २४।

पिशाचाविष्ट उन्माद के लक्षण

उद्धस्तः कृशपरुषोऽचिरप्रलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः।
बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी
व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः॥२५॥

जो ऊपर को हाथ उठाये हो, जिसका शरीर दुर्बल और रूक्ष हो, जो शीघ्रता से बोलता हो, दुर्गन्धित और अपवित्र रहता हो, खाने-पीने का बड़ा लोभी हो, बहुत खाता हो, निर्जन स्थान और वन में रहना पसन्द करता हो, विरुद्ध चेष्टा करता और रोता हुआ घूमता हो, उसे पिशाच से पीड़ित समझना चाहिए। २५।

भौतिकोन्माद के असाध्य लक्षण

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः स फेनलेही
निद्रालुः पतति च कम्पते च यो हि।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्
सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे ॥२६॥

(हिंसा या क्रीड़ा के लिए अथवा अपनी पूजा कराने के लिए) हिंसक ग्रह (पिशाच-राक्षस आदि) मनुष्यों को ग्रहण करते हैं। कहा भी है—"अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाक्षतम्। हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि च॥" हिंसा के लिए जिसे ग्रहण करते हैं वह रोगी असाध्य होता है।) उस मनुष्य की आँखें स्थूल हो जाती हैं, वह शीघ्र चलता है, फेन चाटता है, उसे नींद बहुत आती है, वह बार-बार गिर पड़ता है और काँपता है। ये असाध्य

भूतोन्माद के लक्षण हैं। पर्वत, हाथी अथवा वृक्ष आदि से जो गिर पड़ता है, उसे भी हिंसक ग्रह ग्रसित कर लेते हैं। वह भी असाध्य होता है। तेरहवें बर्ष में सब प्रकार के उन्माद (देवतागृहीत भी) असाध्य हो जाते हैं। २६।

देवादि ग्रहों के आवेश का समय

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥२७॥
पितृग्रहास्तथा दर्शे पंचम्यामपि चोरगाः।
रक्षांसि रात्रौ पशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति च ॥२८॥

देवग्रह[1] पूर्णमासी में, असुर दोनों सन्ध्याओं में, गन्धर्व प्रायः अष्टमी तिथि में, यक्ष प्रतिपदा में, पितर अमावस्या में, सर्पग्रह पंचमी में, राक्षस रात में और पिशाच चतुर्दशी में मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। २७-२८।

देवादिग्रह मानव-शरीर में कैसे प्रविष्ट होते हैं—

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा।
स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृक् ॥२९॥
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः।
प्रविश्याशु शरीरं हि पीडां कुर्वन्ति दुःसहाम् ॥३०॥

(यदि शरीर में ग्रहों के प्रवेश करने से मनुष्यों को उन्माद होता है तो प्रवेश करते समय ग्रह देख क्यों नहीं पड़ते ? इसका उत्तर यह है कि) जैसे दर्पण अथवा जल या तेल आदि में छाया, प्राणियों के देह में शीत और उष्ण, सूर्यकान्त मणि में सूर्य की किरणें और शरीर में आत्मा प्रवेश करते समय नहीं दीखता, वैसे ही मनुष्यों के

१. ग्रहों के प्रवेश की तिथियाँ बताने का यह प्रयोजन है कि इन तिथियों में उनकी पूजा और उनके उद्देश्य से दान करना चाहिए। जैसा कि अन्यत्र कहा है—"ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः। दिनेषु बलिहोमादीन् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥"

शरीर में प्रवेश करते हुए ग्रह नहीं दिखाई देते, किन्तु बहुत शीघ्र प्रवेश करके दुःसह पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं। २९-३०।

देव शब्द से यहाँ देवताओं के अनुचर अथवा देवताओं के समान धर्मवाले ग्रहों से प्रयोजन है, क्योंकि देवता मनुष्यों के अपवित्र शरीर से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते। जैसा सुश्रुत ने कहा है—

तपांसि तीव्राणि तथैव दानं
व्रतानि धर्मो नियमश्च सत्यम्।
गुणास्तथाऽष्टावपि तेषु नित्या
व्यस्ताः समस्ताश्च यथाप्रभावम्॥ ३१॥
न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति
नवा मनुष्यान्क्वचिदाविशन्ति।
ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात्
ते भूतविद्याविषयादपोह्याः॥ ३२॥
तेषां ग्रहाणां परिचारका ये
कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः।
असृग्वसामांसभुजः सुभीमा
निशाविहाराश्च तथाऽऽविशन्ति॥ ३३॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उन्माद-
रोगनिदानं समाप्तम्। २०।

देवताओं में तीव्र तप, दान, व्रत, धर्म, नियम और सत्य तथा आठ गुण—अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राकाम्य, प्राकाश्य, ईशित्व, वशित्व कामावसायित्व—जैसा जिसका प्रभाव है उसी के अनुसार सम्पूर्ण अथवा कुछ कम सदैव रहते हैं, अर्थात् देवताओं में ये सब गुण और असुर आदि ग्रहों में दो, तीन, चार उनके प्रभाव के अनुसार

रहते हैं। वे मनुष्यों से न कभी मिलते हैं और न उनके शरीर में प्रवेश करते हैं। जो वैद्य अज्ञान से 'आविशन्ति' ऐसा कहते हैं उन्हें भूतविद्या का ज्ञान नहीं है, यह समझना चाहिए। फिर मनुष्यों के शरीर में कौन प्रवेश करते हैं ? उन ग्रहों के सेवक जो हजारों, करोड़ों और पद्मों की संख्या में हैं, रुधिर, मेद और मांस खाते हैं, भयानक हैं, रात में घूमा करते हैं, वे प्रवेश करते हैं। इस प्रकार आचार्य सुश्रुत ने देवग्रह-प्रवेश नहीं माना है, असुरग्रह-प्रवेश माना है। ३१-३३।

अपस्मारनिदान

अपस्मार के सामान्य लक्षण

(चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥)
तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

(चिन्ता और शोक आदि से वातादि दोष कुपित होकर हृदय के स्रोतों में स्थिर हो जाते हैं और स्मरणशक्ति को नष्ट करके अपस्मार रोग उत्पन्न कर देते हैं। १।)

रोगी को ऐसा अनुभव होता है कि वह अन्धकार में प्रवेश कर रहा है। उसके नेत्र विकृत हो जाते हैं, वह हाथ-पैर पटकता है, दोषों के प्रकोप से उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है। इस रोग को अपस्मार कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है। (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक[1])।

---

१. "स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जनम् । अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत् ॥" (सु० उ० तं० अ० ६१)

स्मृति शब्द का अर्थ पदार्थों के विषय का ज्ञान और अप शब्द का अर्थ परिवर्जन अर्थात् उसको रोकना या नष्ट कर देना है। यह रोग स्मृति को नष्ट कर देता है, इसलिए इसका नाम अपस्मार है। अतएव यह रोग शरीर का अन्त करनेवाला है।

अपस्मार के पूर्वरूप

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ।
निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवत्यथ ॥ २ ॥

हृत्कंप, हृदय में शून्यता, पसीना, चिन्ता, मूर्च्छा (मनोमोह), प्रमूढ़ता (इन्द्रियमोह) और नींद न आना, ये अपस्मार के पूर्वरूप हैं। २।

वातज अपस्मार के लक्षण

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

देह काँपे, दाँत कटकटावे, मुँह से फेन गिरे, श्वास का वेग बढ़ जाय, कर्कश और लाल या काले रङ्ग के रूप देखे, ये लक्षण वातिक अपस्मार के हैं। ३।

पित्तज अपस्मार के लक्षण

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शकः ।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

पैत्तिक अपस्मार में पीला फेन गिरता है, देह, मुख और नेत्र पीले पड़ जाते हैं, रोगी सब वस्तुओं को पीली, या लाल रंग की देखता है, प्यास और दाह होती है, सब पदार्थों में आग-सी लगी हुई देखता है। ४।

कफज अपस्मार के लक्षण

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ।
पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ॥ ५ ॥

श्लैष्मिक अपस्मार में सफेद फेन गिरता है, देह, मुख और नेत्र सफेद होते हैं, देह शीतल रहती है, रोमांच और देह में भारीपन होता है; श्वेत रूप दिखाई देता है और रोग का वेग बहुत देर तक रहता है। ५।

सन्निपातज अपस्मार लक्षण

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।

जो अपस्मार तीनों दोषों से होता है, जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं, वह सान्निपातिक अपस्मार असाध्य होता है ।

अपस्मार के असाध्य लक्षण

अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ६
प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥

क्षीण मनुष्य को. अथवा पुराना होने पर, केवल एक दोष से उत्पन्न भी असाध्य होता है । देह काँपती हो, बार-बार रोग का वेग आता हो, रोगी क्षीण हो गया हो, भौंहें फड़कती हों, नेत्र विकृत हो गये हों तो वह रोगी असाध्य होता है ! इन उपद्रवों से युक्त अपस्मार रोग रोगी का विनाश कर देता है । ६-७ ।

अपस्मार के प्रकोप का काल

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ।
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ ८ ॥
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयाः ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽपस्मारनिदानं समाप्तम् ॥२१॥

पैत्तिक अपस्मार का वेग एक पक्ष में, वातिक अपस्मार का वेग बारह दिन में और श्लैष्मिक अपस्मार का वेग महीने भर में होता है । दोषों के तारतम्य से उक्त समय से पहले भी वेग हो सकता है । ८ ।

(यहाँ यह सन्देह होता है कि जिन दोषों के विकार से अपस्मार उत्पन्न होता है, वे दोष शरीर में सदा विद्यमान रहते हैं, फिर अप-

स्मार का वेग उक्त दिनों में क्यों होता है, सदा क्यों नहीं बना रहता ? उसका उत्तर दृष्टान्त सहित देते हैं।)

जैसे भूमि में पड़े हुए गेहूँ, जौ या बथुआ आदि के बीजों में वर्षा ऋतु में अंकुर नहीं निकलते, यद्यपि अंकुर निकलने के सहायक (पृथ्वी, जल, तेज, और वायु) विद्यमान रहते हैं, तो भी शरद् ऋतु में ही निकलते हैं, क्योंकि समय-विशेष भी उसका एक सहायक है, वैसे ही अपस्मार का वेग भी समय-विशेष में ही होता है। जैसे चातुर्थिक ज्वर आदि में होता है। ६।

वातव्याधिनिदान

वातव्याधि के निदान और संप्राप्ति

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः ।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रवणादपि ॥ १ ॥
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामादिविचेष्टितैः ।
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥
वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात् ।
मर्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतंसनात् ॥ ३ ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥४॥

रूखा, शीतल, थोड़ा और हलका अन्न खाने से, अत्यन्त मैथुन करने से, रात में बहुत जागने से, विषम उपचार से, दोष अर्थात् पित्त, कफ और मल-मूत्र के निकलने से अर्थात् वमन और विरेचन होने से, रुधिर बहुत निकल जाने से, बहुत उछलने-कूदने से, बहुत तैरने से, शीघ्रता से अधिक मार्ग चलने से, बहुत परिश्रम करने से, विरुद्ध चेष्टा करने से, धातुओं के क्षीण होने से, चिन्ता, शोक अथवा रोग के कारण बहुत दुर्बल हो जाने से, मल-मूत्र आदि के

वेग रोकने से, आमदोष से, चोट लगने से, उपवास करने से, मर्म स्थानों में चोट लगने से, दौड़ते हुए हाथी, घोड़े अथवा ऊँट आदि से गिरने से, इन कारणों से कुपित हुआ बलवान् वायु देह के खाली स्रोतों में भर जाता है और एक अंग में अथवा सब अंगों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देता है। (वातव्याधि का आशय यहाँ विकृत (दुःखदायक) वात है)। १-४।

वातव्याधि के पूर्वरूप

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम्।
आत्मरूपं तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

वात-विकारों के अव्यक्त लक्षण पूर्वरूप कहे गये हैं, अर्थात् वातव्याधि होने के पहले कोई लक्षण नहीं प्रकट होते। दोषादि भेद से जो उसका रूप प्रकट हो, वही उसके लक्षण हैं। अपाय का अर्थ अभाव या विनाश है, अर्थात् जब वायु का वेग निकल जाता है तो स्तम्भ, संकोच, कम्प आदि लक्षणों का अभाव होता है। और लघुता के दो अर्थ हैं—वायु के प्रकोप के कारण धातुओं के क्षीण होने से शरीर की लघुता अथवा लक्षणों की लघुता। ५।

वातव्याधि के सामान्य लक्षण

संकोचः पर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्थ्नां पर्वणामपि
रोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥
खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वं शोथोऽङ्गानामनिद्रता।
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता ॥ ७ ॥
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम्।
भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मुहुश्चायास एव च ॥ ८ ॥
एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः।
हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

संधियों में संकोच और स्तम्भ अर्थात् जकड़ जाना; हड्डियों और संधियों में फटने की सी पीड़ा, रोमांच, वृथा बकना, हाथ, पीठ और सिर का जकड़ जाना, लँगड़ा, पँगुला अथवा कुबड़ा हो जाना; अंगों में शोथ, नींद का न आना; गर्भ, वीर्य और रज का नाश; अंगों का फड़कना और शून्य हो जाना; शिर, नाक, नेत्र, जत्रु (गले की नीचे की हड्डी) और ग्रीवा का भीतर घुस जाना या टेढ़ा हो जाना; ओष्ठ, दाँत और कान आदि में भेदन और शूल होना; हाथ, पैर, पार्श्व, कान, नाक और वक्षःस्थल में पीड़ा तथा आक्षेपक आदि व्याधियाँ और विना परिश्रम के थकावट मालूम होना, इस प्रकार के अनेक विकार कुपित वायु उत्पन्न करता है। हेतु और स्थान-विशेष से रोग-विशेष उत्पन्न होते हैं। ६-६।

कोष्ठाश्रित वात के लक्षण

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते॥ १०॥

कोष्ठ में स्थित वायु के प्रकोप से मल-मूत्र का अवरोध होता है, ब्रध्न, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल होता है। १०।

सर्वाङ्गकुपित वात के लक्षण

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम्।
वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य सन्धयः॥११॥

सब अंगों में यदि वायु का प्रकोप होता है तो सब अंगों में टूटने की सी पीड़ा होती है, सब अंग फड़कते हैं। सन्धियों में वेदना और फटने की सी पीड़ा होती है। ११।

पक्वाशयस्थित वात के लक्षण

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः।
जङ्घोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषौ गुदे स्थिते॥ १२॥

गुदा में (पाकशय में) वायु के स्थित होने पर मल-मूत्र और वायु

का अवरोध, पेट में शूल और अफरा, अश्मरी, शर्करा, जाँघ, उरू और त्रिक स्थान में, पैरों में और पीठ में पीड़ा और शोथ होता है ।१२।

आमाशयस्थ वात के लक्षण

रुक् पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ।
कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते॥ १३॥

आमाशय में जब वायु का विकार होता है तो पार्श्व, उदर, हृदय और नाभि में पीड़ा होती है। प्यास अधिक लगती है, डकारें आती हैं। विसूचिका, खाँसी, कंठ और मुख में शोष तथा श्वास ये लक्षण होते हैं। १३।

सुश्रुतोक्त पक्वाशयस्थ वात के लक्षण

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ।
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥
श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्याद्दुष्टसमीरणः ।

पक्वाशय में वायु का प्रकोप होने पर आँतों मे शब्द होता है, पेट में पीड़ा और गुड़गुड़ाहट होती है, मल-मूत्र त्यागने में कष्ट होता है, पेट फूलता है, त्रिक स्थान में पीड़ा होती है। कान आदि इन्द्रियों में वायु का विकार होने से उन इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है। १४।

त्वगत वात के लक्षण

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ।
आतन्यते सरागा च पर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥

त्वचा में वायु का प्रकोप होने से त्वचा रूखी हो जाती है, फटती है, शून्य, कृश और काली होती है, त्वचा में सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, त्वचा तन जाती है, रंग ताँबे का सा हो जाता है और सन्धियों में पीड़ा होती है । १५ ।

रुधिरगत वात के लक्षण

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले॥१६॥

कुपित वायु जब रुधिर में प्राप्त होता है तो देह में तीव्र पीड़ा और जलन होती है, देह विवर्ण और कृश हो जाती है, भोजन में अरुचि, अंगों में व्रण और भोजन के बाद देह में स्तम्भ होता है। १६।

मांसमेदोगत वात के लक्षण

गुर्वङ्गं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा ।
सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥

मांस और मेदा में कुपित वायु के प्राप्त होने पर अंगों में भारीपन, सुई चुभाने की सी पीड़ा अथवा डंडों वा घूँसों से आहत होने की सी अत्यन्त पीड़ा होती है। शरीर अत्यन्त थका हुआ मालूम होता है।१७।

मज्जा-अस्थिगत वात के लक्षण

भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः ।
अस्वप्नः संतता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले॥१८॥

मज्जा और अस्थि में वायु का प्रकोप होने से हड्डियों में फटने की सी पीड़ा, सन्धियों में शूल, मांस और बल का क्षय नींद न आना, निरन्तर पीड़ा बनी रहना, ये लक्षण होते हैं। १८।

शुक्रस्थ वात के लक्षण

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥१९॥

शुक्रस्थ कुपित वायु शुक्र और गर्भ में विकार उत्पन्न करता है। शुक्र और गर्भ को कभी शीघ्र ही त्याग देता है और कभी स्तम्भन करता है। १९।

शिरागत वात के लक्षण

कुर्यात् शिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम् ।
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कौब्ज्यमथापि वा २०
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ।

शिरागत कुपित वायु शिराओं में पीड़ा, संकोच, स्थूलता, बाह्यायाम और अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबड़ापन करता है। स्नायुगत वायु सर्वाङ्ग रोग अथवा एकांग रोग उत्पन्न करता है। २०।

सन्धिगत वात के लक्षण

हन्ति सन्धिगतः सन्धीन् शूलशोफौ करोति च २१

सन्धिगत वायु का प्रकोप सन्धियों में विश्लेष अथवा स्तंभन करता है। सन्धियों में शूल और शोथ होता है, जिससे संकोचन और प्रसारण नहीं हो सकता। २१।

पित्तकफावृत वात के लक्षण

(प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च ।
स्थानस्था मारुताः पञ्च यापयन्ति शरीरिणम् ॥)
प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ।
दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते ॥ २२ ॥
उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः ॥
अस्वेदहर्षौ मन्दोऽग्निः शीतता च कफावृते ॥२३॥
स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंवृते ।
कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥
अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ।
अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ २५ ॥

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ।
स्तम्भनो दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥२६॥

(प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान ये पाँच वायु जब तक अपने-अपने स्थान में स्थित रहते हैं तभी तक मनुष्य को स्वस्थ रखते हैं। इनके विकृत होने पर मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता ।) प्राणवायु पित्त से आवृत होने पर वमन और दाह उत्पन्न करता है तथा कफ से आवृत होने पर दुर्बलता, अंगों में पीड़ा, तन्द्रा और मुख में विरसता लाता है। २२। उदान वायु पित्तावृत होने से दाह, मूर्च्छा, भ्रम और अनायास थकावट तथा कफावृत होने से पसीने का अवरोध, रोमांच, मन्दाग्नि और शीतलता, ये विकार उत्पन्न करता है । २३ । समान वायु पित्तावृत होने से पसीना, दाह, उष्णता और मूर्च्छा तथा कफावृत होने से मल-मूत्र का अवरोध और रोमांच करता है। २४। अपान वायु पित्तावृत होने से दाह, उष्णता और रक्तमूत्रता तथा कफावृत होने से देह के अधोभाग में भारीपन और शीतलता करता है । २५ । व्यान वायु पित्तावृत होने से शरीर में दाह, अंगों में विक्षेपण और अनायास थकावट करता है तथा कफावृत होने से स्तम्भन, दंडक, शूल और शोथ उत्पन्न करता है ।२६।

आक्षेपक के सामान्य लक्षण

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ।
तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥२७॥
मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः ।

कुपित वायु जब देह की सब धमनियों में व्याप्त हो जाता है, तो उस मनुष्य के सब अंग हाथी पर बैठे हुए के समान काँपते हैं। बार-बार देह में आक्षेपण होता है, इसलिए इस रोग का नाम आक्षेपक है । २७ ।

अपतंत्रक के लक्षण

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते ॥२८॥

पीडयन् हृदयं गत्वा शिरः शङ्खौ च पीडयन् ।
धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तदा ॥ २९ ॥
स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ।
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः ॥३०॥
दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति ।
हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥३१॥
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम् ।

अपने कारणों से कुपित हुआ अपान वायु जब स्थान से (पक्काशय से) ऊपर चला जाता है तो हृदय में जाकर पीड़ा करता है, शिर और कनपटी में भी पीड़ा करता है, शरीर को धनुष की तरह टेढ़ा कर देता है, अंगों में आक्षेपण होता है, रोगी के सब अंग काँपते हैं, मूर्च्छा आती है, रोगी कष्ट से श्वास लेता है, नेत्र स्तब्ध अथवा बन्द रहते हैं, काँखता है, काँखने का शब्द कबूतर के बोलने के समान होता है, संज्ञा नष्ट हो जाती है, इसे अपतंत्रक कहते हैं। दृष्टि की स्थिरता, संज्ञा का नाश और गले में घुरघुराहट होती है। हृदय से वायु का वेग निकल जाने पर रोगी स्वस्थ सोता है और वायु का अवरोध होने पर फिर मूर्च्छित हो जाता है। इस दारुण रोग को कोई आचार्य अपतंत्रक और कोई अपतानक कहते हैं। २८-३१ । (आक्षेपक के चार भेद हैं—दंडापतानक, अन्तरायाम, बहिरायाम और अभिघातज)।

दंडापतानक के लक्षण

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥३२॥
दण्डवत्स्तम्भयेद्देहं स तु दण्डापतानकः ।

कुपित हुआ वायु कफयुक्त होकर यदि धमनी नाड़ियों में रुक जाता है तो देह को दंड के समान स्तब्ध कर देता है। इस रोग को दंडापतानक कहते हैं। ३२ ।

धनुस्तम्भ के लक्षण

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञकः ॥३३॥

जो वायु देह को धनुष के समान टेढ़ा कर देता है उसे धनुस्तम्भ कहते हैं। दंडापतानक में रोगी शुष्क काष्ठदंड के समान हो जाता है, झुक नहीं सकता और धनुस्तम्भ में कमर से झुक जाता है, सीधा नहीं हो सकता। ३३।

अन्तरायाम और बहिरायाम के लक्षण

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः।
स्नायुप्रतानमनिलो यदाऽऽक्षिपति वेगवान् ॥३४॥
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन्।
अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवम् ॥ ३५ ॥
तदाऽस्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली।
बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥३६॥
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षः कट्यूरुभञ्जनम्।

पैरों की उँगलियों, गुल्फ (टखना), पेट, हृदय, छाती और कण्ठ में स्थित वायु जब वेगवान् होकर स्नायु-जाल (लता के समान फैली हुई नसों) में आक्षेपण करता है तब उस मनुष्य की ठुड्डी और नेत्र स्तब्ध हो जाते हैं, पार्श्व-पीड़ा होती है। वह कफ का वमन करता है, उसका अभ्यन्तर भाग धनुष की तरह टेढ़ा हो जाता है। इसे अभ्यन्तरायाम कहते हैं। बलवान् वायु यह रोग उत्पन्न करता है। और बाह्य स्नायु-जाल में जो वायु का प्रकोप होता है, उसे बाह्ययाम कहते हैं। इसमें छाती, कमर और जाँघों में पीड़ा होती है। इसे वैद्यों ने असाध्य कहा है। ३४-३६।

---

१. स्नायु से शिरा और कण्डरा का भी ग्रहण है। यदुक्तं तन्त्रान्तरे-"महाहेतुर्बली वायुः शिराः सस्नायुकंडराः। मन्यापृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोष्यायामयेद्बहिः ॥"

अभिघातज आक्षेपक के लक्षण

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥ ३७ ॥
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ।

किसी प्रकार की चोट लगने से, केवल वायु अथवा पित्त और कफ-युक्त वायु कुपित होकर चौथे प्रकार का आक्षेपक उत्पन्न करता है। इसे अभिघातज कहते हैं। ३७।

अपतानक के असाध्य लक्षण

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ ३८ ॥
अभिघातनिमित्तश्च न सिद्धयत्यपतानकः ।

गर्भपात के कारण, रुधिर बहुत निकल जाने के कारण, अथवा चोट लगने के कारण उत्पन्न हुआ अपतानक असाध्य होता है। (चारों प्रकार के आक्षेपक असाध्य होते हैं)। ३८।

पक्षाघात के लक्षण

गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायुर्विशोष्य च ३९॥
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ।
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ४०॥
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ।
सर्वाङ्गरोगस्तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ ४१ ॥

वायु आधे शरीर में कुपित होकर नाड़ियों और नसों को सुखाकर सन्धियों के जोड़ों को शिथिल करके शरीर के उस भाग को बेकाम कर देता है। आधा शरीर अकर्मण्य और चेतनारहित हो जाता है, इसे कोई एकांगवात और कोई पक्षाघात कहते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में वायु कुपित होने से सर्वाङ्ग रोग (सर्वाङ्गवात) होता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर अकर्मण्य हो जाता है। ३९-४१।

पक्षाघात के साध्यासाध्य लक्षण

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ।
शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते ॥ ४२ ॥
शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ।
साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ४३ ॥

पक्षाघात में वायु यदि पित्तसंयुक्त होता है तो दाह, सन्ताप और मूर्च्छा तथा कफसंयुक्त होता है तो शीत, शोथ और भारीपन होता है। केवल वायु का पक्षाघात कष्टसाध्य होता है, कफ अथवा पित्त संयुक्त होने से साध्य और धातुओं की क्षीणता के कारण प्रकुपित केवल वातजन्य भी असाध्य होता है। ४२-४३।

टिप्पणी—शुद्ध वातजन्य पक्षाघात भी तीसरी कोटि का कृच्छ्रसाध्य है अर्थात् असाध्य ही समझिए। अत्यन्त परिश्रम से शायद ही अच्छा होता है।

upper motor neurone
lower " "

अर्दित वात के लक्षण

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा ।
हसतो जृम्भतो वापि भाराद्विषमशायिनः ॥ ४४ ॥
शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः ।
अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ।
वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ॥ ४५ ॥
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम् ।
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना ॥४६॥
(यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् ।
वायुरूर्ध्वं त्वचि स्वापस्तोदो मन्याहनुग्रहः ॥)
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविचक्षणाः ।

उच्च स्वर मे अत्यन्त बोलते हुए, कठिन चीजें खाते हुए, हँसते या जँभाई लेते हुए. भारी बोझ ढोते हुए अथवा ऊँचे-नीचे स्थान में सोते हुए मनुष्य के शिर, नाक, होठ, ठोढ़ी, ललाट और नेत्रों की सन्धियों में प्राप्त वायु मुख को अर्दित (पीड़ित) करता है। उस मनुष्य का आधा मुख टेढ़ा हो जाता है, ग्रीवा भी टेढ़ी हो जाती है। शिर हिलने लगता है, बोलने की शक्ति नष्ट हो जाती है, नेत्र और नासिका आदि में विकार हो जाता है, अर्थात् पीड़ा होती है, फड़कते या टेढ़े हो जाते हैं। जिस भाग में अर्दित होता है उस ओर ग्रीवा, चिबुक और दाँतों में पीड़ा होती है। (जिसके पूर्वरूप में रोमहर्ष, कँपकँपी, नेत्रों में मैलापन, वायु का ऊर्ध्वगमन, त्वचा में शून्यता, सुई चुभने की सी पीड़ा, मन्याग्रह और हनुग्रह होता है) वैद्यों ने इसे अर्दित रोग कहा है। ४४-४६।

असाध्य अर्दित वात के लक्षण

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताऽव्यक्तभाषिणः ॥४७॥
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च।
गते वेगे भवेत् स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥४८॥

रोगी दुर्बल हो, पलक न मारता हो, बोल न सकता हो, अथवा स्पष्ट न बोलता हो; त्रिवर्ष अर्थात् रोग तीन वर्ष का हो गया हो* (अथवा मुख, नाक और नेत्रों से स्राव होता हो) और रोगी का शरीर काँपता हो, तो ये असाध्य अर्दित के लक्षण हैं। आक्षेपक आदि वात-रोगों में वायु का वेग शान्त होने पर पीड़ा कम हो जाती है। ४७-४८।

हनुग्रह के लक्षण

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः।
कुपितोहनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥४९॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्।
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥५०॥

---

* मुख, नाक और नेत्र के स्राव को भी त्रिवर्ष कहते हैं।

दँतौन आदि से जीभ को बहुत रगड़ने से, रूखा अन्न खाने से, अथवा चोट लगने से ठोढ़ी में स्थित वायु कुपित होकर ठोढ़ी को नीचे झुकाकर मुख को फैला देता है, अथवा बन्द कर देता है। उसे हनुग्रह या हनुस्तम्भ रोग कहते हैं। इस रोग में बहुत कष्ट से चबाया और बोला जा सकता है। ४९-५०।

मन्यास्तम्भ के लक्षण

दिवास्वप्नासमस्थानविवृत्तोर्ध्वनिरीक्षणैः।
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽऽवृतः ॥५१॥

दिन में सोने से, असम स्थान से अथवा कोठे पर से ऊपर को गर्दन तिरछी करके देखने से वायु कुपित हो जाता है और कफावृत होकर गले के पृष्ठभाग की नाड़ी को स्तंभित कर देता है। इसे मन्यास्तंभ कहते हैं। ५१।

जिह्वास्तम्भ के लक्षण

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥५२॥

वाग्वाहिनी शिराओं में स्थित वायु कुपित होने पर जिह्वा का स्तम्भन कर देता है। इसे जिह्वास्तम्भ कहते हैं। जिह्वास्तम्भ में खाने, पीने और बोलने की शक्ति नष्ट हो जाती है। ५२।

शिराग्रह के लक्षण

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः शिराः।
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिराग्रहः॥

ग्रीवागत शिराओं में कुपित हुआ वायु रुधिर में व्याप्त होकर शिराओं को रूक्ष और कृष्ण वर्ण कर देता है, शिराओं में पीड़ा भी होती है। इसे शिराग्रह कहते हैं। यह असाध्य होता है। ५३।

गृध्रसी के लक्षण

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात्।
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ ५४ ॥

वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ।
[वातजायां भवेत्तोदो देहस्यापि प्रवक्रता ।
जानुकट्यूरुसंधीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम् ॥५५॥
वातश्लेष्मोद्भवायां तु निमित्तं वह्निमार्दवम् ।
तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ५६ ॥]

वायु पहले कमर के निचले भाग को, उसके बाद क्रम से कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पैर को स्तम्भित करके पीड़ा उत्पन्न करता है, इसे गृध्रसी कहते हैं । वायु के प्रकोप से यह विकार होता है और ये अंग बार-बार फड़कते हैं । गृध्रसी केवल वायु के विकार अथवा वात और कफ के विकार से होती है । तन्द्रा देह में भारीपन और अरुचि इसके लक्षण हैं । वातजा गृध्रसी में पीड़ा, देह का टेढ़ा हो जाना, कमर और जाँघों के जोड़ों का जकड़ जाना और फड़कना, ये लक्षण होते हैं । वात और कफ की गृध्रसी में अग्नि की मृदुता होने से तन्द्रा, मुँह से लार गिरना और भोजन में अरुचि, ये लक्षण होते हैं । ५४-५६ ।

विश्वाची के लक्षण

तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः ॥५७॥
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते ।

बाहुपृष्ठ से लेकर हथेली के पृष्ठ और उँगलियों की नाड़ियों में वायु का प्रकोप होता है तो वह बाहु काम करने योग्य नहीं रह जाती । इसे विश्वाची कहते हैं । ५७ ।

क्रोष्टुकशीर्ष के लक्षण

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ॥ ५८ ॥
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ।

वायु और रुधिर के प्रकोप से जानु (घुटने) में शोथ और

अत्यन्त पीड़ा होती है। शोथ शृगाल के मस्तक के समान स्थूल होता है। इसे क्रोष्टुकशीर्ष कहते हैं। ५८।

खंज के लक्षण

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ॥५९॥
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुःसक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्।

कमर में आश्रित वायु (जाँघ की कण्डरा में) जब रुक जाता है तो वह मनुष्य लँगड़ाने लगता है। इसे खंज कहते हैं। और यदि दोनों जाँघों में ऐसा ही हो जाता है तो उसे पंगु कहते हैं। ५९।

कलायखंज के लक्षण

प्रकामन् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति ॥ ६० ॥
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्।

जो मनुष्य चलते समय काँपता और लँगड़ाता हुआ चलता है, तो इस वायु के विकार को कलायखंज कहते हैं। इसमें संधियों के बंधन शिथिल हो जाते हैं। ६०।

टिप्पणी—यह भी एक प्रकार का खंज ही है। चलते समय में इसमें कम्पन होता है। यह विशेष भेद है।

वातकंटक के लक्षण

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ॥६१॥
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम्।

ऊँचे-नीचे स्थान में पैर रखने से अथवा श्रम करने से वायु कुपित होकर गुल्फ (गट्टे) में पीड़ा उत्पन्न कर देता है। इसे वात-कंटक कहते हैं। ६१।

टिप्पणी—अन्य ग्रन्थों में इसी को खुड्‌कावात और लोक में मोच आना कहते हैं।

पाददाह के लक्षण

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः।६२।
विशेषतश्चङ्क्रमतः पाददाहं तमादिशेत्।

पित्त और रुधिर के साथ वायु कुपित होकर पैरों में दाह उत्पन्न कर देता है। चलने के समय विशेष दाह होता है। इसे पाददाह कहते हैं। ६२।

पादहर्ष के लक्षण

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां चापि सुप्तकौ ॥ ६३ ॥
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपतः ।

कफ और वायु के प्रकोप से पैर शून्य हो जाते हैं, उनमें झनझनाहट होती है, रोमांच भी होता है। इसे पादहर्ष कहते हैं। ६३।

अंसशोष और अवबाहुक के लक्षण

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् ॥ ६४ ॥
शिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयेदवबाहुकम् ।

कन्धों में स्थित वायु जब कुपित हो जाता है तो उस स्थान के कफ को सुखा देता है, इसे अंसशोष कहते हैं। यदि कन्धों की नसों को संकुचित कर देता है तो उसे अवबाहुक कहते हैं। ६४।

मूक आदि के लक्षण

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥६५॥
नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ।

कफयुक्त वायु विकृत होकर शब्दवाहिनी धमनियों को आच्छादित कर देता है, जिससे मनुष्यों को मूक (गूँगा), मिन्मिना और गद्गद्भाषी कर देता है। ६५।

टिप्पणी—बिलकुल ही न बोलनेवाले को 'मूक', अल्पवाणी या सानुस्वार (नाक में) बोलनेवाले को 'मिन्मिना' और कुछ छोड़कर बोलनेवाले को गद्गद कहते हैं।

तूनी के लक्षण

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥६६॥
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ।

मूत्राशय और पक्वाशय में कुपित हुआ वायु गुदा और उपस्थ (लिंग वा योनि) में काटने की सी पीड़ा उत्पन्न कर देता है। इसे तूनी कहते हैं। ६६।

प्रतितूनी के लक्षण

गुदोपस्थोत्थिता या तु प्रतिलोमं प्रधाविता ॥६७॥
वेगैः पक्काशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ।

गुदा और उपस्थ में कुपित हुआ वायु जब वेग से ऊपर को चढ़ता है, और पक्वाशय में जाता है, तो उस स्थान में पीड़ा होती है। उसे प्रतितूनी कहते हैं। (यह तूनी से विपरीत होता है)। ६७।

आध्मान के लक्षण

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । ६८ ।
आध्मानमिति तं विद्याद्घोरं वातनिरोधजम् ।

पक्वाशय में वायु के रुक जाने से पेट में गड़गड़ाहट और बड़ी पीड़ा होती है, पेट फूल जाता है। इस कष्टप्रद व्याधि को आध्मान कहते हैं। ६८।

प्रत्याध्मान के लक्षण

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥ ६९ ॥
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ।

यदि कफयुक्त वायु आमाशय में विकृत होता है तथा पेट में गड़गड़ाहट और पीड़ा होती है तो उसे प्रत्याध्मान कहते हैं। पार्श्व और हृदय में पीड़ा नहीं होती। ६९।

टिप्पणी—आध्मान से पेट का अफरा ही समझा जाता है। आध्मान से मिले हुए आटोप और आनाह होते हैं। साधारणतः ये एक से हैं, किन्तु उनके आगे कहे गये सूक्ष्म भेद भी हैं।

नाम	आध्मान	आनाह	आटोप
दोष	वातज	वात (कफ) ज	सपित्त दोषद्वंद्वज
स्थान	पक्वाशय (गुदा	आमाशय और पक्वाशय	समस्त उदर
लक्षण	वेदना के वेग	निचित आम और मल की अप्रवृत्ति	उदर तना हुआ

अष्ठीला के लक्षण

नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ॥७०॥
अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ।
वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥७१॥

नाभि के नीचे पाषाण के समान कठोर, गोल, ऊपर को उठी हुई एक ग्रन्थि हो जाती है, वह किसी के चलती है और किसी के नहीं चलती, उसे अष्ठीला कहते हैं। मल-मूत्र और वायु का अवरोध हो तो उसे वाताष्ठीला समझना चाहिए। ७०-७१।

प्रत्यष्ठीला के लक्षण

एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ७२ ॥

यदि मल-मूत्र और वायु के अवरोध के साथ-साथ पीड़ा भी हो, पेट में ग्रन्थि टेढ़ी हो तो उसे प्रत्यष्ठीला कहते हैं। ७२।

मूत्राशय में वातजन्य अनेक विकार होते हैं—

मारुतेऽनुगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ।
विकारा विविधाश्चात्र प्रतिलोमे भवन्ति च ॥७३॥

मूत्राशय में वायु जब अनुलोम रहता है तो मूत्र अच्छे प्रकार

उतरता है और यदि प्रतिलोम हो जाता है तो अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। ७३।

कम्परोग लक्षण

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः।

सब अंगों में कम्प हो, सिर में कम्प हो, अथवा हाथ-पैर आदि किसी अंग में कंप हो उसे वेपथु (कम्परोग) कहते हैं।

खल्ली और ऊर्ध्ववात के लक्षण

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटना॥ ७४॥
(अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन वा।
करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते॥ ७५॥)

पैर, जाँघ, ऊरु अथवा हाथों की सन्धि में यदि वायु का प्रकोप होता है और ऐंठन होती है तो उसे खल्ली कहते हैं। कफ अथवा वायु के विकार से अधोवायु कुपित हो जाय और डकारें आने लगें तो उसे ऊर्ध्ववात कहते हैं। ७४-७५।

अनुक्त वातरोगों का विवरण

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत्।
सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत्॥ ७६॥
हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः।
कालेन महता वाता यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा।७७।
नरान् बलवतस्त्वेतान् साधयेन्निरुपद्रवान्।

वैद्यों को इसी प्रकार और भी वायु के अनेक रोग स्थान और नाम के अनुरूप तथा लक्षणों को देखकर (कुक्षिशूल और नखभेद इत्यादि) समझने चाहिए। वायु के रोग पित्त, कफ और रुधिर के संसर्ग से, दो दोषों से अथवा तीनों दोषों से होते हैं। हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात और अपतानक वायु के

कठिन रोग हैं। ये बहुत प्रयत्न करने पर, बहुत समय में, किसी के अच्छे हो जाते हैं और किसी के नहीं होते। यदि विकार उपद्रवरहित हों और रोगी बलवान् हो तो साध्य अन्यथा असाध्य होते हैं। ७६-७७।

वातजन्य उपद्रव

विसर्पदाहरुक्सङ्गमूर्च्छाऽरुच्यग्निमार्दवैः ॥ ७८ ॥
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ।
शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कम्पाध्माननिपीडितम् ।
रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥७९॥

विसर्परोग, दाह, पीड़ा, मल-मूत्र और वायु का अवरोध, मूर्च्छा, अरुचि और मन्दाग्नि, ये वातविकार के उपद्रव हैं। यदि पक्षाघात आदि वायु के रोगों में ये उपद्रव हों और रोगी का मांस और बल क्षीण हो गया हो तो रोग असाध्य हो जाते हैं और रोगी को मार डालते हैं। देह में शोथ हो, त्वचा शून्य हो गई हो, हड्डी टूट गई हो, कम्प अथवा आध्मान हो तो ये वातरोग रोगी का विनाश कर देते हैं। ७८-७९।

प्रकृतिस्थित वायु के कार्य

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतिस्थितः ।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने वातव्याधिनिदानं समाप्तम्। २२।

वायु के मार्ग अवरुद्ध न हों, वायु अपने स्थानों में हो, वायु की वृद्धि अथवा क्षीणता न हुई हो, मनुष्य नीरोग हो, तो १२० वर्ष और ५ दिन तक जीवित रह सकता है। ८०।

वातरक्तनिदान

वातरक्त किन कारणों से होता है—

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः ।
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥
कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ।
स्थूलानां सुखिनां चापि कुप्यते वातशोणितम् ॥३॥

नमक, खटाई, कड़वी चीजें, क्षार, चिकनाई, गरम चीजें, अजीर्ण भोजन, सड़े-सूखे मछली आदि जल के समीप रहने वाले जीवों का मांस, तिल की खली, मूली, कुलथी, उड़द, लोबिया आदि फलियों में पैदा हुए अन्न, शाक आदि, भुने मांस, ईख, दही, काँजी, सौवीर, सिरका, छाँछ, सुरा, आसव अधिक खाने-पीने से, परस्पर विरुद्ध दूध-मछली आदि चीजें एक साथ खाने से, भोजन के ऊपर भोजन करने से, बहुत क्रोध करने से, दिन में सोने से, रात में जागने से, प्रायः सुकुमार मनुष्यों का, नियम-विरुद्ध आहार-विहार करनेवालों का, स्थूल शरीरवाले मनुष्यों का, सुखी (आराम से पड़े रहनेवाले) मनुष्यों का वात-रक्त कुपित हो जाता है। १-३।

वातरक्त की संप्राप्ति

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च
विदाह्यन्नं स विदाहोऽशनस्य ।
कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च
स्रस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु ।

तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन
तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ४ ॥

हाथी, घोड़े और ऊँट की सवारी बहुत करने से, भोजन के बाद ही चलने से, दाह उत्पन्न करनेवाले अन्न खाने से, भोजन विदग्ध होने से, शरीर का सम्पूर्ण रुधिर कुपित हो जाता है और नीचे उतरकर पैरों में संचित हो जाता है तथा दूषित वायु से मिलकर व्याधि उत्पन्न कर देता है। यद्यपि यह रोग वायु और रुधिर दोनों के प्रकोप से होता है, किन्तु वायु का प्राधान्य होने से इसे वातरक्त कहते हैं (रक्तवात नहीं कहते)।४।

वातरक्त के पूर्वरूप

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् ।
सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडकोद्गमः ॥ ५ ॥
जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु ।
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ६ ॥
कण्डूः सन्धिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत् ।
वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ७ ॥

पसीना बहुत आवे अथवा बिलकुल न आवे, शरीर काला हो जाय, स्पर्श का ज्ञान न रहे, थोड़ी चोट लगने पर भी पीड़ा अधिक हो, जोड़ों में शिथिलता मालूम हो, आलस्य रहे, अङ्गों में पीड़ा हो, फुन्सियाँ निकलें, जानु, जाँघ, ऊरू, कमर, कंधा, हाथ, पैर और सन्धियों में कोंचने की-सी पीड़ा हो, अंग फड़कें, सब अंगों में टूटने की-सी पीड़ा हो, देह में भारीपन और शून्यता रहे, खुजली हो, जोड़ों में बराबर पीड़ा होकर शान्त हो जाय, देह का वर्ण विकृत हो जाय, देह में चकत्ते पड़ें, ये वातरक्त के पूर्व-लक्षण हैं। ५-७।

वातोल्बण वातरक्त के लक्षण

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणभञ्जनम् ।
शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः ॥८॥

धमन्यङ्गुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ।
शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ ९ ॥

वातरक्त में यदि वात की अधिकता होती है तो जानु और जाँघ आदि में पीड़ा होती है, अंग फड़कते हैं और अंगों में टूटने की-सी पीड़ा होती है, शोथ में रूक्षता होती है और शोथ का रंग काला या नीला हो जाता है, शोथ कभी बढ़ता कभी घटता है, धमनियों और उँगलियों के जोड़ों में संकोच होता है, सब अंग जकड़ जाते हैं, अंगों में अत्यन्त पीड़ा होती है, ठंड अच्छी नहीं लगती और ठंड से रोग बढ़ता है, अंगों में स्तम्भ और कम्प होता है, त्वचा शून्य हो जाती है । ८-९ ।

रक्तोल्बण वातरक्त के लक्षण

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥१०॥

बातरक्त में यदि रक्त की अधिकता होती है तो देह में शोथ, अत्यन्त पीड़ा, शोथ का रंग ताँबे का-सा और उसमें चुनचुनाहट होती है, खुजली भी होती है और उसमें से पानी-सा निकलता है, स्निग्ध और रूखी वस्तुओं से शान्त नहीं होती । १० ।

पित्तोल्बण वातरक्त के लक्षण

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोथः पाको भृशोष्मता ॥११॥

पित्त की अधिकता में विदाह, मोह, पसीना, मूर्च्छा, मद, प्यास, देह का स्पर्श असह्य, देह में पीड़ा, पीलापन, शोथ, फुन्सियाँ निकलना, पकना, बहुत उष्णता मालूम होना, ये लक्षण होते हैं । ११ ।

कफोल्बण वातरक्त के लक्षण

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।
कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वं सर्वलिङ्गं च संकरात् ॥१२॥

कफ की अधिकता में, ऐसा मालूम होता है मानो देह गीले कपड़े से ढकी हुई है, देह भारी मालूम होती है, त्वचा शून्य हो जाती है, देह स्निग्ध रहती है, ठंडक मालूम होती है, खुजली होती है और थोड़ी पीड़ा होती है। दो दोषों की अधिकता में दो दोषों के लक्षण और तीनों दोषों की अधिकता में सम्पूर्ण लक्षण प्रकट होते हैं। १२।

कुपित वातरक्त उपेक्षा करने से देह भर में फैल जाता है—

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमुपसर्पति॥ १३॥

वातरक्त पहले पैरों में अथवा हाथों में उत्पन्न होता है। यदि उसकी उपेक्षा की जाती है तो कुपित होकर चूहे के विष के समान धीरे-धीरे देह भर में फैल जाता है। १३।

टिप्पणी—चरकाचार्य ने वातरक्त के दो प्रकार कहे हैं १ उत्तान—जो त्वचा और मांस के आश्रय रहता है अर्थात् ऊपरी। २ गम्भीर जो अन्तराश्रित अर्थात् भीतरी होता है। सुश्रुताचार्य कुष्ठ के समान वातरक्त को एक ही प्रकार का मानते हैं अर्थात् उत्तान के बाद गम्भीर हो जाता है।

साध्यासाध्य विचार

आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत्।
उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः॥ १४॥
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः॥ १५॥
संमूर्च्छामदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः।
हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः॥ १६॥
अङ्गुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः।
एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन वाऽपि यत्॥ १७॥

वातरक्त यदि जाँघ तक हो गया हो, त्वचा फट गई हो, देह में घाव हो गया हो, स्राव होता हो, आगे कहे हुए सब उपद्रव भी हों, प्राण, मांस और बल क्षीण हो गया हो तो असाध्य हो जाता है। यदि ये सब लक्षण प्रकट न हुए हों और रोग साल भर के भीतर का हो तो साध्य होता है। साल भर के बाद याप्य हो जाता है। नींद न आती हो, अरुचि और श्वासविकार हो, मांस दूषित हो गया (सड़ गया) हो, सिर जकड़ गया हो, मूर्च्छा, मद, पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पँगुलापन, विसर्प, देह का पक जाना, देह में कोंचने की सी पीड़ा होना, भ्रम, अनायास थकावट, उँगलियों का टेढ़ा पड़ जाना, फोड़े निकलना, दाह, मर्मस्थानों में पीड़ा और अर्बुद, ये वातरक्त के उपद्रव हैं। यदि ये सब उपद्रव हों तो उस रोगी को औषध न करें, क्योंकि वह असाध्य हो जाता है। अथवा अन्य सब उपद्रव चाहे न हों, केवल मोह हो जाता हो तो भी रोग असाध्य समझना चाहिए। १३-१७।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्।
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम्।
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः॥ १८॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने वातरक्तनिदानं समाप्तम्। २३।

यदि कोई उपद्रव न हो तो रोग साध्य होता है। एक दोष की अधिकता से हो और रोग नया हो तो भी साध्य होता है। सम्पूर्ण उपद्रव न हों अर्थात् थोड़े ही उपद्रव हों तो याप्य होता है और दो दोषों से उत्पन्न भी याप्य होता है। यदि सम्पूर्ण उपद्रव हों और रोग तीनों दोषों के प्रकोप से हुआ हो, तो वह असाध्य होता है। १८।

ऊरुस्तम्भनिदान

ऊरुस्तम्भ के निदान

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयासंसंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥
सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसंचितम् ।
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
सक्थ्यस्थिनी प्रपूर्यान्तःश्लेष्मणा स्तिमितेन च ।
तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥३॥
परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ।
ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥
संयुक्तौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ।
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

ठंडे, गरम, पतले, अत्यन्त रूखे, भारी और चिकने पदार्थ बहुत खाने से, भोजन बहुत जीर्ण होने अथवा अजीर्ण रहने पर ही फिर भोजन करने से, बहुत परिश्रम करने से, बहुत घबराहट होने से, दिन में सोने से, रात में जागने से, कफ और मेद सहित वायु आमयुक्त अत्यन्त संचित पित्त को आच्छादित करके यदि दोनों ऊरुओं (मोटी जाँघों के ऊपरी भाग) में प्राप्त हो जाता है और ऊरुओं की हड्डियों को कफ से पूर्ण करके जकड़ देता है तब जाँघें शीतल और शून्य हो जाती हैं, ऐसा जान पड़ता है कि अपनी हैं ही नहीं। वे भारी हो जाती हैं और अत्यन्त पीड़ा होती है। चिन्ता, अंगों में टूटने की सी पीड़ा, जड़ता, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पैरों में पीड़ा, कठिनता से पैरों का उठना, पैरों का शून्य हो जाना, ये ऊरुस्तम्भ के लक्षण हैं। कई आचार्यों ने इसका नाम आढ्यवात कहा है। १-५ ।

ऊरुस्तम्भ के पूर्वरूप

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, जड़ता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमन, जाँघों और ऊरुओं में पीड़ा, ये ऊरुस्तम्भ के पूर्वरूप हैं। ६ ।

ऊरुस्तंभ के लक्षण

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः ।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥
जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्चादाहवेदने ।
पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥८॥
संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ।
अन्यस्येव हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥९॥

पैरों में पीड़ा, पैरों का शून्य होना और चलने की अशक्ति देखकर वातरोग की शंका होती है और यदि अज्ञानवश स्नेहन-चिकित्सा की जाती है तो रोग और बढ़ जाता है। जाँघों और ऊरुओं में अत्यन्त ग्लानि, कुछ दाह और पीड़ा निरन्तर बनी रहती है। पैर न उठाने पर भी पीड़ा होती है, शीत-स्पर्श का ज्ञान नहीं होता, रोगी पैरों को चलाने, हिलाने, दबाने और रखने में असमर्थ हो जाता है, ऊरुओं और पैरों को टूटे हुए के समान समझता है, उसके पैर दूसरे के उठाने से उठते हैं। ७-९ ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥१०॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ऊरुस्तम्भनिदानं समाप्तम् । २४ ।

ऊरुस्तम्भ में दाह, व्यथा, कंप और सुई कोंचने की सी पीड़ा जिस रोगी को होती है, उसे यह रोग मार डालता है। यदि ये उपद्रव न हों और रोग नया हो तो साध्य होता है। १० ।

आमवातनिदान

आमवात के निदान

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥ १ ॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥३॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥४॥
युगपत्कुपितावन्तस्त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।
स्तब्धं च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ५ ॥

विरुद्ध आहार करनेवाले (दूध-मछली आदि एक साथ खानेवाले), विरुद्ध चेष्टा करनेवाले (भोजन करके व्यायाम वा मैथुन करनेवाले अथवा जल में तैरनेवाले), जिसे मंदाग्नि हो अथवा जो किसी प्रकार का परिश्रम न करता हो, स्निग्ध अन्न खाकर जो व्यायाम करता हो, ऐसे मनुष्य का आम (अपक्व) रस वायु से प्रेरित होकर कफ के स्थान (आमाशय, हृदय शिर, कण्ठ और सन्धियों) में चला जाता है और वहाँ की वायु से दूषित होकर शिराओं में जाता है। फिर वात, पित्त और कफ से दूषित होकर स्रोतों में चिपक जाता है। वह बहुत गाढ़ा हो जाता है और तीनों दोषों से दूषित होने के कारण कई रंग का हो जाता है। वह शीघ्र ही शरीर को दुर्बल और हृदय में भारीपन

---

१. "जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको देहे सर्वरोगप्रकोपकः ॥"

कर देता है। यह बड़ा भयानक होता है, और अनेक रोगों का कारण है। वात और आमरस एक साथ कुपित होकर त्रिकप्रदेश और सन्धियों में प्रवेश करते हैं एवं जिस अंग में पहुँचते हैं उसे जकड़ देते हैं। इस व्याधि का नाम आमवात है। १-५।

आमवात के सामान्य लक्षण

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः।
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥६॥

अंगों में टूटने की-सी पीड़ा, अरुचि, प्यास, आलस्य, देह में भारीपन, ज्वर, भोजन का परिपाक न होना, अंगों में शोथ, ये आमवात के सामान्य लक्षण हैं। ६।

अत्यन्त बढ़े हुए आमवात के लक्षण

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत्।
हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ७ ॥
करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते।
स देशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥८॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम्।
उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ९ ॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम्।
तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम्।
जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥१०॥

प्रकुपित आमवात अन्य सब रोगों से बढ़कर कष्टदायक होता है। हाथ, पैर, सिर, गुल्फ (एँड़ी के ऊपर की गाँठ) त्रिकस्थान, जानु और ऊरु की सन्धियों में, जहाँ दोष जाता है, वहाँ पीड़ा सहित शोथ कर देता है। उस स्थान में बिच्छू के डंक मारने के समान अत्यन्त पीड़ा होती है, जठराग्नि मन्द हो जाती है, मुँह से लार आती है, अरुचि,

देह में भारीपन, उत्साह न रहना, मुँह में विरसता, दाह, बहुमूत्रता, कोख में कठोरता, शूल, निद्रानाश या दिन में नींद आना रात्रि में न आना, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदय का जकड़ना मलबद्धता, जड़ता, आँतों का कूजना, पेट फूलना और वातव्याधि में कहे हुए अन्य कष्टदायक उपद्रव होते हैं। ७-१०।

आमवात के विशेष लक्षण

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ।
स्तिमितं गुरुकण्डू च कफदुष्टं तमादिशेत् ॥११॥

यदि पित्तसंयुक्त आम होता है तो देह में दाह और पीलापन, वातयुक्त होने से शूल और कफयुक्त होने से जड़ता, भारीपन और खुजली होती है। ११।

साध्यासाध्य के विचार

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥१२॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने आमवातनिदानं समाप्तम् ॥२५॥

एक दोष से उत्पन्न आमवात साध्य होता है, दो दोषों से उत्पन्न याप्य तथा तीनों दोषों से उत्पन्न आमवात में यदि देह भर में फैलनेवाला शोथ भी हो तो कष्टसाध्य होता है। १२।

शूल-परिणामशूल-अन्नद्रवशूलनिदान

शूल के निदान

दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

वात से, पित्त से, कफ से, तीनों दोषों से, आम से, वात-पित्त से, वात-कफ से और पित्त-कफ से, शूल आठ प्रकार का होता है, किन्तु शूल के इन सब भेदों में प्रायः वात की ही प्रधानता होती है। १।

वातज शूल की संप्राप्ति और लक्षण

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च
प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषा-
दत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥
कषायतिक्तातिविरूढजान्न-
विरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधा-
च्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ॥ ३ ॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं
हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च
शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपी
विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः
स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

व्यायाम अधिक करने से, घोड़े आदि की सवारी अधिक करने से, अति मैथुन करने से, रात में जागने से, शीतल जल बहुत पीने से, मटर, मूँग, अरहर, कोदों आदि रूखे अन्न बहुत खाने से, भोजन के ऊपर भोजन करने से, चोट लगने से, कसैली और कड़वी वस्तुएँ खाने से, जिस अन्न में अंकुर निकल आये हों वह अन्न खाने से, परस्पर विरोधी चीजें (दूध, मछली आदि) एक साथ खाने से, सूखा मांस और सूखे शाक खाने से, मल, शुक्र, मूत्र और वायु के वेग रोकने

से, बहुत शोक और उपवास करने से, बहुत हँसने और बोलने से वायु बढ़कर हृदय, पार्श्व, पीठ, त्रिकस्थान और मूत्राशय में शूल उत्पन्न कर देता है। वह शूल भोजन पच जाने पर, सन्ध्या के समय, वर्षा-ऋतु और शीतकाल में बहुत बढ़ता है। बार-बार बढ़ता और शान्त होता है। मल और वायु का अवरोध होता है, सुई चुभने और काटने की सी पीड़ा होती है। स्वेदन, अभ्यंजन और मर्दन आदि से तथा स्निग्ध और उष्ण पदार्थ खाने से शान्त होता है, अर्थात् ये उपशय हैं। २-५।

पित्तज शूल की संप्राप्ति और लक्षण

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैल-
निष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः
क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः
पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम्।
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां
संस्वेदमूर्च्छाभ्रमचोषयुक्तम् ॥ ७ ॥
मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे
विदाहकाले जलदात्यये च।
शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं
सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ८ ॥

जवाखार आदि खार, मिर्च और राई आदि अतितीक्ष्ण और उष्ण, करील आदि विदाही, तेल, शिम्बी, तिल की खली, कुलथी का जूस, कड़वी, खट्टी, सौवीर (एक प्रकार की काँजी) और

सुरा इत्यादि अधिक खाने-पीने से, बहुत क्रोध करने से, अग्नि के समीप रहने से, बहुत परिश्रम करने से, धूप में बहुत रहने से, मैथुन बहुत करने से, विदाही वस्तुओं के खाने से पित्त कुपित होकर शीघ्र ही शूल उत्पन्न कर देता है। इसमें प्यास, बेहोशी, दाह और नाभि में पीड़ा होती है। पसीना आता है, मूर्च्छा, भ्रम और चूसने की सी पीड़ा होती है। दोपहर और आधीरात के समय, भोजन पचने के समय और शरद् ऋतु में शूल बढ़ता है। शीतकाल में, मधुर, शीतल और शीतवीर्य पदार्थ खाने से शान्त होता है। ६-८।

कफज शूल की संप्राप्ति और लक्षण

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारै-
मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः।
अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च
श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्यकरोति शूलम् ॥९॥
हृल्लासकासमदनारुचिसंप्रसेकै-
रामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं
सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १० ॥

जल-जीवों का मांस और जल के समीप रहनेवाले जीवों का मांस, खोया अथवा दूध से बने हुए अन्य पदार्थ, मांस, ईख का रस, पिट्ठी की बनी हुई चीजें, खिचड़ी, तिल, शष्कुली (कचौरी या पूरी) तथा कफ बढ़ानेवाले अन्य पदार्थ खाने से कफ कुपित होकर शूल उत्पन्न करता है। उसके लक्षण इस प्रकार होते हैं:—उबकाई, खाँसी, अंगों में पीड़ा और अरुचि होती है, मुख से लार गिरती है, आमाशय में पीड़ा होती है, कोष्ठ बँध जाता है और सिर भारी हो जाता है। भोजन करने पर हमेशा पीड़ा अधिक होती है, प्रातःकाल तथा शिशिर और वसन्त ऋतु में पीड़ा बढ़ती है। ९-१०।

सन्निपातज शूल के लक्षण

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं
विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम् ।
सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं
विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥११॥

सब दोषों के प्रकोप से यदि शूल होता है तो सब दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं, वैद्य उसे सान्निपातिक शूल समझें। यह असाध्य होता है। विद्वान् वैद्यों का कहना है कि इसकी औषध न करनी चाहिए ; क्योंकि यह असाध्य है, विष और वज्र के समान जीवन का अन्त करनेवाला है। ११।

आमशूल के लक्षण

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।
कफस्यलिङ्गेनसमानलिङ्गमामोद्भवंशूलमुदाहरन्ति ॥

आटोप (अफरा, पेट में गुड़गुड़ाहट), उबकाई, वमन, देह में भारीपन और शीतलता हो, पेट फूले, मुँह से कफ निकले और कफ के शूल के समान लक्षण हों, उसे आमशूल कहते हैं। १२।

द्वन्द्वज शूल

बस्तौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु स शूलः कफवातिकः ।
कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥१३॥
दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ।

मूत्राशय, हृदय, पार्श्व और पीठ में शूल हो तो कफ-वातिक ; कोख, हृदय और नाभि में शूल हो तो कफ-पैत्तिक; तथा दाह और ज्वर हो तो दारुण वात-पैत्तिक शूल समझना चाहिए। १३।

टिप्पणी—अन्य आचार्यों ने शूल के दोषभेद से स्थान बतलाये हैं। जैसे—वायु से मूत्राशय में, पित्त से नाभि में, कफ से हृदय, पसवाड़े और कुक्षि में होता है।

साध्यासाध्य शूल

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥१४॥
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

एक दोष से उत्पन्न शूल साध्य, दो दोषों से उत्पन्न कष्टसाध्य, तथा तीनों दोषों से उत्पन्न और बहुत उपद्रवोंवाला दारुण शूल असाध्य होता है। १४।

टिप्पणी—शूल के उपद्रव— वेदना, पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, गौरव (भारीपन), अरुचि, खाँसी, श्वास और हिचकी।

परिणामशूल के निदान

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः संनिहितस्तदा ॥१५॥
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ।
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥१६॥
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ।

अपने कारणों से कुपित निकटवर्ती बलवान् वायु कफ और पित्त को आच्छादित करके शूल उत्पन्न करता है। यह शूल भोजन पचने के समय होता है। इसे परिणामशूल कहते हैं। इसके लक्षण संक्षेप में कहते हैं। १५-१६।

वातिक परिणाम शूल के लक्षण

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः ॥ १७ ॥
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ।

---

१. यदुक्तमन्यत्र—"बलासः प्रच्युतः स्थानात्पित्तेन सह मूर्च्छितः । वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने ॥ कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभौ बस्तौ स्तनान्तरे । पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेतेषु वा पुनः ॥ भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णेऽन्ने च प्रशाम्यति । षष्टिकव्रीहिशालीनामोदनेन विवर्धते । तत्परिणामजं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम् । तमाहू रसवाहानां स्रोतसां दुष्टिहेतुकम् ॥ केचिदन्नद्रवं प्राहुरन्ये तत्पक्तिदोषतः । पक्तिशूलं वदन्त्येके केचिदन्नविदाहजम्"—इति ।

पैत्तिकपरिणामशूल के लक्षण

तृष्णादाहारतिस्वेदं कट्वम्ललवणोत्तरम् ॥ १८ ॥
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद् बुधः ।

श्लैष्मिक परिणामशूल के लक्षण

छर्दिहृल्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसन्तति ॥ १९ ॥
कटुतिक्तोपशान्तं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ।

द्वन्द्वज और सन्निपात के लक्षण

संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥ २० ॥
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ।

पेट फूलना, पेट में गड़गड़ाहट होना, मल-मूत्र का अवरोध, किसी काम में मन न लगना, देह में कम्प होना, स्निग्ध और उष्ण पदार्थों के सेवन से शान्त होना वातिक परिणाम-शूल के लक्षण हैं। प्यास, दाह, किसी काम में मन न लगना, पसीना आना, कड़वी, खट्टी, नमकीन चीजों के खाने से बढ़ना और शीतल वस्तुओं के खाने से शान्त होना, ये पित्तज परिणामशूल के लक्षण हैं। वमन, उबकाई, मन और इन्द्रियों का मोह, थोड़ी पीड़ा का होना और देर तक रहना, कड़वी और तीखी चीजों के खाने से शान्त होना कफज परिणामशूल के लक्षण समझना चाहिए। दो दोषों के लक्षण मिलते हों तो द्वन्द्वज और तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो त्रिदोषज परिणामशूल समझना चाहिए। यदि मांस, बल और जठराग्नि क्षीण हो तो त्रिदोषज परिणामशूल असाध्य होता है। १७-२०।

अन्नद्रवशूल के निदान और लक्षण

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ॥ २१ ॥
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ।
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २२ ॥

(अन्नद्रवाख्यशूलेषु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते ।
वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशु व्यपोहति ॥ १ ॥)

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शूलपरिणामशूलान्नद्रव-
शूलनिदानं समाप्तम् ॥

जो शूल भोजन पचने पर, पचते समय, अथवा अजीर्ण में भी हो, पथ्य या अपथ्य के प्रयोग से, भोजन करने या न करने पर सदा होता हो, किसी नियम से भी शान्त न हो, उसे अन्नद्रव शूल कहते हैं।२१-२२।

(अन्नद्रवशूल में उस समय तक स्वास्थ्य नहीं प्राप्त होता जब तक वमन के द्वारा पित्त नहीं निकल जाता । १ ।)

उदावर्त्त आनाहनिदान

उदावर्त के निदान

वातविण्मूत्रजृम्भास्त्रक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥१॥

अधोवायु, मल, मूत्र, जम्हाई, आँसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूख, प्यास, श्वास और नींद के रोकने से उदावर्त्त रोग होता है । १ ।

वातावरोधज उदावर्त

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमोरुजा ।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २॥

अधोवायु के रोकने से जो उदावर्त्त होता है, उसके लक्षण इस प्रकार होते हैं—अधोवायु, मूत्र और मल का अवरोध होता है, पेट फूलता है, अनायास थकावट मालूम होती है, पेट में पीड़ा होती है तथा वात से उत्पन्न अन्य रोग भी होते हैं । २ ।

पुरीषावरोधज उदावर्त

आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च
सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ।

पुरीषमास्यादथवा निरेति
पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

मल का वेग रोकने से पेट में पीड़ा के साथ गड़गड़ाहट, पक्वाशय में पीड़ा, गुदा में कतरने की सी पीड़ा, मलबद्धता, डकारें और डकार के साथ मुँह से मल का निकलना ये लक्षण होते हैं। ३।

मूत्रावरोधज उदावर्त

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा।
विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥४॥

मूत्राशय और लिंगेन्द्रिय में पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र (पीड़ा के साथ थोड़ा-थोड़ा मूत्र का उतरना), शिर में पीड़ा, पीड़ा के मारे देह का झुक जाना, पेडू का फूलना, ये लक्षण मूत्र का वेग रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में होते हैं। ४।

जृम्भावरोधज उदावर्त

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा
जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः।
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च
भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

मन्या (गले के पीछे की नाड़ी) और गले का जकड़ जाना, सिर में पीड़ा, आँख, नाक, मुँह और कानों में वातज रोग, ये लक्षण जम्हाई रोकने से उत्पन्न उदावर्त में होते हैं। ५।

अश्रुनिरोधज उदावर्त

आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा
नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च
भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

हर्ष अथवा शोक के आँसू रोकने से उत्पन्न उदावर्त में ये लक्षण होते हैं—सिर में भारीपन, आँखों में रोग तथा पीनस रोग होता है। ६।

छिक्कावरोधज उदावर्त

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ।
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥७॥

छींक रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में मन्यास्तम्भ (गले के पीछे की नाड़ी का जकड़ जाना) सिर में पीड़ा, अर्दित वात, आधे सिर में पीड़ा और इन्द्रियों में निर्बलता होती है। ७।

उद्गारावरोधज उदावर्त

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः
कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः ।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति
घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

डकार का वेग रोकने से कंठ और मुख भरा हुआ मालूम होता है, हृदय और आमाशय में अत्यन्त पीड़ा होती है, अधोवायु का अवरोध और पेट में गड़गड़ाहट तथा वायु के ये सब विकार प्रकट होते हैं। ८।

छर्दिनिरोधज उदावर्त

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः ।
कुष्ठवीसर्पहृल्लासाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥

वमन का वेग रोकने से देह में खुजली, चकत्ते, अरुचि, झाईं, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, विसर्प तथा उबकाई ये लक्षण होते हैं। ९।

शुक्रोदावर्त

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च
शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च
ते ते विकारा विहते च शुक्रे ॥ १० ॥

वीर्य का वेग रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त मूत्राशय, गुदा और अंडकोष में शोथ और पीड़ा, मूत्राघात, शुक्राश्मरी, वीर्यस्राव तथा शुक्र के अन्य रोग हो जाते हैं। १० ।

क्षुधातृषावरोधज उदावर्त्त

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च
क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः ।
कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोध-
स्तृष्णाविघाताद्धृदये व्यथा च ॥ ११ ॥

भूख रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें तन्द्रा, अंगों में पीड़ा, अरुचि, अनायास थकावट और दृष्टि निर्बलता होती है। प्यास रोकने से कंठ और मुख सूखता है, हृदय में पीड़ा होती है और कानों से कम सुन पड़ता है। ११ ।

निश्वास और निद्रावरोधज उदावर्त

श्रान्तस्य निश्वासविनिग्रहेण,
हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ।
जृम्भाऽङ्गमर्दोऽक्षिशिरोतिजाड्यं
निद्राभिघातादथवाऽपि तन्द्रा ॥ १२ ॥

मार्ग चलने या दौड़ने से थका हुआ मनुष्य यदि श्वास का वेग रोकता है तो उसे उदावर्त्त हो जाता है। इसमें हृद्रोग, मूर्च्छा और गुल्म रोग होता है। नींद का वेग रोकने से जम्हाई, अंगों में टूटने की-सी पीड़ा, नेत्र और सिर में भारीपन तथा तन्द्रा होती है। १२ ।

रूक्षादिकुपित वातज उदावर्त

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।
भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ॥१३॥

वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ।
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १४ ॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः ।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् ।
वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ।
बहूनन्यांश्च लभते विकारान् वातकोपजान् ॥१६॥

रूक्ष अन्न (चना, मटर आदि) खाने से, कसैले, कड़वे और तीखे पदार्थ खाने से कोष्ठ में वायु कुपित होकर शीघ्र उदावर्त्त रोग उत्पन्न कर देता है । अपान वायु, मूत्र, मल, रुधिर, कफ और मेद के बहानेवाले स्रोतों में उदावर्त होता है, मल ऊपर को चढ़ता है, हृदय और मूत्राशय में पीड़ा होती है, उबकाई आती है, किसी काम में मन नहीं लगता । मल, मूत्र और अधोवायु बड़े कष्ट से निकलता है । श्वास, खाँसी, जुकाम, दाह, मूर्च्छा, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, सिर में पीड़ा, मनोविभ्रम, सुनने में भी भ्रम तथा वायु के कोप से उत्पन्न अन्य भी बहुत से विकार हो जाते हैं । १३-१६ ।

टिप्पणी—सुश्रुत ने उदावर्त के असाध्य लक्षण भी कहे हैं—पिपासा, अत्यन्त थकित, क्षीणशूलयुक्त और विष्ठा का वमन करनेवाला उदावर्त रोगी असाध्य है ।

आनाह की संप्राप्ति और लक्षण

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण
भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं
विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

तस्मिन् भवन्त्याममसमुद्भवे तु
तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ।
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं
हृत्स्तम्भ उद्‌गारविघातनं च ॥ १८ ॥
स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे
शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः ।
शोथश्च पक्वाशयजे भवन्ति
तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ १९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उदावर्तानाहनिदानं समाप्तम् ।

जब आम (अपक्वरस) अथवा मल क्रम से संचित होकर कुपित वायु द्वारा गाढ़ा हो जाता है और उसकी प्रवृत्ति ठीक-ठीक नहीं होती तो उस विकार को आनाह कहते हैं । आम रस से जो आनाह होता है उसमें प्यास, जुकाम, सिर में जलन, आमाशय में पीड़ा और भारीपन, हृदय में स्तंभ और डकार न आना ये लक्षण होते हैं । तथा मल से जो आनाह होता है उसमें कमर और पीठ में स्तब्धता और पक्वाशय में मल-मूत्र का अवरोध होता है । शूल, मूर्च्छा, बारबार वमन और शोथ होता है तथा अलसोक्त आध्मान और वातावरोध आदि लक्षण होते हैं । १७-१९ ।

गुल्मनिदान

गुल्म की संप्राप्ति

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥ १ ॥

मिथ्या आहार (भोजन के ऊपर भोजन इत्यादि), मिथ्या

विहार (भोजन के बाद व्यायाम अथवा बलवान् के साथ युद्ध आदि) से वात-पित्त आदि दोष अत्यन्त कुपित होकर कोष्ठ में ग्रन्थि के समान पाँच प्रकार के गुल्म* उत्पन्न कर देते हैं। उनके पाँच स्थान हैं—पार्श्व (दो), हृदय, नाभि और मूत्राशय। १।

गुल्म के सामान्य लक्षण

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः।
वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

हृदय और मूत्राशय के मध्य में एक गाँठ-सी पड़ जाती है, वह किसी के चलती रहती है और किसी के एक ही स्थान पर स्थिर रहती है। आकार गोल होता है, दोषों की वृद्धि से बढ़ती और घटती भी रहती है। उसे गुल्म कहते हैं। २।

गुल्म के पाँच भेद

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥३॥

वह (गुल्म) पुरुषों को वातादि किसी एक दोष से अथवा बढ़े हुए तीनों दोषों से, स्त्रियों को आर्त्तव से भी एक प्रकार का गुल्म होता है। ३।

टिप्पणी—स्त्रियों के रक्त से आर्तव का ग्रहण ही करना चाहिए। भट्टार हरिश्चन्द्र मानते हैं कि धातुरूप रक्त से होनेवाला रक्तगुल्म स्त्री-पुरुष दोनों को होता है। यही क्षीरपाणि का भी मत है। सुश्रुताचार्य ने इसका पृथक् निर्देश नहीं किया है जैसे रक्तातीसार को पित्तातिसार में अंतर्भाव किया है वैसे ही रक्तगुल्म को पित्तगुल्म में अंतर्भाव कर लिया है। वाकचन्द्र आचार्य कहते हैं, अपचार से रक्तदुष्ट हो जाने पर वातादिगुल्म में ही रक्तजगुल्म सम्मिलित समझिए।

गुल्म के पूर्वरूप

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध-
तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि।

---

* वात से, पित्त से, कफ से, सन्निपात से और रुधिर से पाँच प्रकार के गुल्म होते हैं।

आटोप आध्मानमपक्तिशक्ति-
रासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥

गुल्म होने के पहले ये लक्षण प्रकट होते हैं—डकारें बहुत आती हैं, मलबद्धता होती है, खाने की इच्छा नहीं होती, पेट भरा-सा मालूम देता है। शरीर में शक्ति नहीं रह जाती, आँतों में शब्द होता है, पेट में पीड़ा होती है अथवा पेट तना रहता है, पेट फूलता है और मन्दाग्नि हो जाती है। ४।

गुल्म के सामान्य लक्षण

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रवातताऽन्त्रविकूजनम् ।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥

अरुचि, मल-मूत्र और अधोवायु के निकलने में पीड़ा, आँतों में गड़गड़ाहट, आनाह और ऊर्ध्ववात ये लक्षण सब प्रकार के गुल्म में होते हैं। ५।

वातज गुल्म के कारण

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं
विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च
निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥

रूक्ष अन्न (चना-कोदों आदि) खाना, विषम भोजन (बहुत, थोड़ा अथवा कुसमय में भोजन करना), भूख से अधिक खाना, विरुद्ध चेष्टा (भोजन के बाद व्यायाम अथवा बलवान् के साथ युद्ध आदि करना,) मल-मूत्र और अधोवायु के वेग रोकना, अत्यन्त शोक करना, चोट लगना, मल का बहुत विरेचन होना, उपवास करना ये वातसम्बन्धी गुल्म के कारण हैं। इन कारणों से वायु कुपित होकर गुल्म उत्पन्न करता है। ६।

वातज गुल्म के लक्षण

य: स्थानसंस्थानरुजां विकल्पं
विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च
हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥ ७ ॥
करोति जीर्णे त्वधिकं प्रकोपं
भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।
वातात्स गुल्मो नच तत्र रूक्षं
कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥

स्थान-विकल्प से गुल्म कभी नाभि में, कभी पार्श्व में और कभी मूत्राशय आदि स्थानों में मालूम हो, संस्थान-विकल्प अर्थात् गुल्म कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी गोल, कभी लम्बा मालूम हो, रुजा-विकल्प अर्थात् गुल्म में कभी थोड़ी पीड़ा, कभी अधिक पीड़ा, कभी सुई चुभाने की सी पीड़ा, कभी विदीर्ण करने की सी अनेक प्रकार की पीड़ा हो, मल और अधोवायु का अवरोध हो, कंठ और मुख सूखे, देह लाल या काली हो जाय, शीत ज्वर हो, हृदय, कोख, पार्श्व, सिर और कन्धों में पीड़ा हो, भोजन पच जाने पर रोग का प्रकोप बढ़े, भोजन करने पर कुछ शांत हो जाय, उसे वायु के प्रकोप से उत्पन्न गुल्म समझना चाहिए। इसमें रूक्ष भोजन और कसैले तीखे कड़वे रस हानिकारक हैं। ७-८।

पित्तज गुल्म के कारण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्ष-
क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।
आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं
पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ९ ॥

कड़वे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, दाह करनेवाले और रूक्ष पदार्थों का खाना, बहुत क्रोध करना, बहुत मदिरा पीना, धूप में या आग के समीप बैठना, विदग्ध अजीर्णजन्य आम (दूषित रस) से रक्त दूषित होना, ये पित्तज गुल्म के कारण हैं। ९।

पित्तज गुल्म के लक्षण

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः
शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः
स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥

पित्तज गुल्म में ज्वर आता है, प्यास लगती है, मुँह और शरीर लाल हो जाता है, भोजन पचने के समय पेट में बड़ी पीड़ा होती है, पसीना आता है, देह में जलन होती है और गुल्म व्रण के समान स्पर्श नहीं सह सकता, ये पित्तज गुल्म के लक्षण हैं। १०।

कफज गुल्म के लक्षण

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च
संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य
सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥११॥

शीतल, भारी और स्निग्ध अन्न खाना, व्यायाम न करना, सदा पेट को भरे रहना और दिन में सोना ये कफ-सम्बन्धी गुल्म के कारण हैं। सान्निपातिक गुल्म वातादि तीनों दोषों के प्रकोप से होता है और उसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। ११।

कफज गुल्म के लक्षण

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसाद-
हृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।

शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं
गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥१२॥

कफ का गुल्म निश्चल रहता है, उसमें शीतज्वर, देह में पीड़ा, उबकाई, खाँसी, अरुचि, देह में भारीपन, शीतलता और थोड़ी पीड़ा होती है। गुल्म कठिन और ऊँचा होता है। ये कफ के गुल्म के लक्षण हैं।१२।

द्वन्द्वज गुल्मों का विवेचन

निमित्तरूपाण्युपलभ्य गुल्मे
द्विदोषजे दोषबलाबलं च ।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मां-
स्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १३ ॥

गुल्म के निदान, लक्षण और दोषों का बलाबल देखकर औषध की कल्पना के लिए वात-पित्त से, वात-कफ से अथवा पित्त-कफ से तीन प्रकार के द्वन्द्वज गुल्म और समझना चाहिए। १३।

सन्निपातज गुल्म के लक्षण

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्-
घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ।
मनः शरीराग्निबलापहारिणं
त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥१४॥

जिस गुल्म में पीड़ा बहुत हो, दाह भी हो, गुल्म पत्थर के समान कठोर और ऊँचा हो, शीघ्र विदाह करनेवाला हो, मन में व्याकुलता, शरीर विवर्ण और दुर्बल, मन्दाग्नि और बल का क्षय हो गया हो, उसे सान्निपातिक गुल्म समझना चाहिए। यह असाध्य होता है। १४।

रक्तगुल्म के लक्षण

नवप्रसूताऽहितभोजना या
या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ।

वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं
करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं
विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥ १५ ॥
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गै-
श्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो
मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १६ ॥

प्रसव अथवा गर्भपात के पश्चात् और मासिक ऋतु में अपथ्य भोजन करने से वायु कुपित हो जाता है और रुधिर को संचित करके गुल्म उत्पन्न कर देता है। इस गुल्म में दाह और पीड़ा होती है। पित्तज गुल्म के समान इस गुल्म के लक्षण होते हैं। कुछ और भी विशेष लक्षण होते हैं, उन्हें कहता हूँ, सुनो—यह रक्तज गुल्म पिंड के समान स्त्रियों के पेट में फड़कता है, किन्तु हाथ-पैर आदि अंगों के हिलने के साथ नहीं फड़कता, देर में फड़कता है और पीड़ा होती है। गर्भ के समान सब लक्षण होते हैं, दशम मास व्यतीत होने पर इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। १५-१६।

गुल्म के असाध्य लक्षण

संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ।
कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोत्थितः ॥ १७ ॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरतिज्वरैः ।
तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति ॥१८॥

गुल्म जब पुराना हो जाता है, धीरे-धीरे बढ़कर पेट भर में फैल जाता है और धातुओं पर भी उसका प्रभाव हो जाता है, उसमें शिराएँ हो जाती हैं, वह कछुए के समान ऊँचा हो जाता है,

दुर्बलता, अरुचि, उबकाई, खाँसी, वमन, किसी काम में मन का न लगना, ज्वर, प्यास, तन्द्रा और जुकाम ये उपद्रव होते हैं, तो वह असाध्य हो जाता है। १७-१८ ।

गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम् ।
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥१९॥

अथवा जिस गुल्म-रोगी को ज्वर, श्वास, वमन और अतीसार हो, हृदय, नाभि और हाथ-पैरों में शोथ हो, वह रोगी मर जाता है। १९ ।

श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ।
जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥२०॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने गुल्मनिदानं समाप्तम् ॥ २८ ॥

अथवा श्वास, शूल, प्यास, भोजन में अरुचि और दुर्बलता हो, गुल्म निश्चल रहता हो, उस रोगी की मृत्यु हो जाती है। २० ।

हृद्रोगनिदान

हृद्रोग के निदान

अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः ।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधःप्रदिष्टः १॥

अत्यन्त उष्ण पदार्थ, भारी अन्न, कसैली और तीखी चीजें खाने से, बहुत परिश्रम करने से, चोट लगने से, भोजन के पश्चात् ही फिर भोजन करने से, बहुत शोक करने से, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से वातादि दोष कुपित होते हैं और हृद्रोग हो जाता है। वह पाँच प्रकार का होता है—वातादि दोषों से पृथक्-पृथक् ३, सन्निपात से १, क्रिमियों से एक। १ ।

संप्राप्ति और सामान्य लक्षण

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

कुपित हुए वातादि दोष हृदय में प्राप्त होकर रस को दूषित करके हृदय में अनेक प्रकार की पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं, इसको हृदयरोग कहते हैं। २।

वातज हृद्रोग के लक्षण

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥३॥

वात के प्रकोप से उत्पन्न हृद्रोग में खींचने, सुई चुभाने, मथने, विदीर्ण करने से, चीरने और काटने का-सी पीड़ा होती है। ३।

पित्तज हृद्रोग के लक्षण

तृष्णोष्मादाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः।
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥४॥

पित्तज हृद्रोग में प्यास, ऊष्मा और दाह होता है, हृदय में व्याकुलता और चूसने की सी पीड़ा होती है, पसीना और मूर्च्छा आती है, मुँह-सूखता है और धुआँइध बनी रहती है। ४।

कफज हृद्रोग के लक्षण

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥

कुपित कफ हृदय में व्याप्त होने से उत्पन्न हृद्रोग में देह में भारीपन रहता है, अरुचि, जड़ता, मन्दाग्नि हो जाती है। मुँह में मीठापन रहता है और कफ निकलता है। ५।

सन्निपातज हृद्रोग के लक्षण

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गं
तीव्रार्तितोदं क्रिमिजं सकण्डूम्।
उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च क्रिमिजे भवेत् ॥६॥

तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न हृद्रोग में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। कोष्ठ में क्रिमि होने से यदि हृद्रोग होता है तो हृदय में सुई कोंचने की-सी तीव्र पीड़ा और खुजली होती है। त्रिदोषज हृद्रोग में उबकाई आती है, रोगी थूकता बहुत है, हृदय में सुई चुभाने की-सी पीड़ा और शूल होता है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। क्रिमिज हृद्रोग में आँखों में काला मटियालापन, अरुचि और शोथ भी होता है। (जेज्जट के मत में उत्क्लेद से तमःपर्यन्त त्रिदोषज के लक्षण हैं) अरुचि, श्यावनेत्रत्व और शोथ क्रिमिज के लक्षण हैं। तोद और शूल वायु से, उत्क्लेद और हृल्लास कफ से, तम पित्त से, ष्ठीवन कफ-पित्त से, अरुचि इत्यादि लक्षण क्रिमियों से होते हैं। ६।

टिप्पणी—त्रिदोषजन्य हृद्रोग में मिथ्याहार-विहार से ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। बाद में उसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उसे क्रिमिज हृद्रोग कहते हैं।

हृद्रोग के उपद्रव

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
क्रिमिजे क्रिमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने हृद्रोगनिदानं समाप्तम्। २९।

अनायास थकावट, शरीर में ग्लानि, भ्रम, शोष, ये हृद्रोग के उपद्रव हैं। क्रिमिज हृद्रोग में कफज और क्रिमिज हृद्रोग के सब उपद्रव होते हैं। ७।

मूत्रकृच्छ्रनिदान

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्य-
प्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णा-
त्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाऽष्टौ॥ १॥

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः
सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति
यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

बहुत व्यायाम करने से, मिर्च और राई आदि तीक्ष्ण औषध बहुत खाने से, रूखा अन्न खाने से, मदिरा बहुत पीने से, नित्य घोड़े और ऊँट आदि पर सवार होकर बड़े वेग से दौड़ाने से, जल के समीप रहनेवाले जीवों का मांस खाने से, एक बार का भोजन पचे बिना फिर भोजन करने से और अजीर्ण रहने से मनुष्यों के आठ प्रकार[1] के मूत्रकृच्छ्ररोग हो जाते हैं। वातादि दोष अपने-अपने कारणों से पृथक् पृथक् अथवा सब मिलकर मूत्राशय में जब कुपित होते हैं, तब मूत्र के मार्ग (लिंग) में पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं। उस मनुष्य का मूत्र बड़े कष्ट से उतरता है। इस रोग को मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। १-२।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र

तीव्रार्तिरुग्वङ्क्षणबस्तिमेढ्रे
स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ।
पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं
कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ३ ॥
बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ
मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ।
सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाता-
द्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥४॥

---

१. वात से, पित्त से, कफ से, तीनों दोषों से, मूत्रवाहिनी नाड़ियों में घाव होने से, मल का वेग रोकने से, अश्मरी (पथरी) रोग होने से और वीर्य में किसी प्रकार का विकार होने से, आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र होते हैं।

ऊरु, रान, मूत्राशय और लिंग में तीव्र पीड़ा, बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरना ये लक्षण वात से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र के हैं। मूत्र का रंग लाल वा पीला हो, पीड़ा, दाह और कष्ट के साथ बार-बार मूत्र उतरता हो तो पित्त के प्रकोप से मूत्रकृच्छ्र समझना चाहिए। लिंग और मूत्राशय में भारीपन तथा शोथ हो, मूत्र चिकना और सफेद हो तो कफज मूत्रकृच्छ्र समझना चाहिए। ऊपर कहे हुए सब लक्षण मिलते हों तो तीनों दोषों से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र समझे। यह कष्टसाध्य होता है। ३-४।

शल्यज मूत्रकृच्छ्र

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु वा।
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम्॥ ५॥
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत्।

मूत्रवाहिनी नाड़ियों में सलाई चलाने से घाव होने पर अथवा और किसी प्रकार से चोट लगने पर मूत्रकृच्छ्र हो जाता है। वह बड़ा कष्टदायक होता है, उसके लक्षण वातकृच्छ्र के समान होते हैं। इसे शल्यज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। ५।

पुरीषज और अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः॥ ६॥
आध्मानं वातशूलं च मूत्रसङ्गं करोति च।
अश्मरीहेतुतत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत्॥ ७॥

मल का वेग रोकने से वायु कुपित हो जाता है, तब पेट फूलता है, पेट में वातशूल होता है, मूत्र में रुकावट हो जाती है। जिसे अश्मरी रोग होता है, उसे अश्मरी के साथ मूत्रकृच्छ्र भी होता है। ६-७।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधाविते।
सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान्॥ ८॥

वातादि दोषों के प्रकोप से जब वीर्य में विकार हो जाता है और वीर्य मूत्र के मार्ग से निकलने लगता है तो रोगी का मूत्र वीर्य के साथ कष्ट से निकलता है, मूत्राशय और लिंग में पीड़ा होती है । ८ ।

अश्मरी और शर्करा की समानता और अवान्तर भेद

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसंभवलक्षणे ।
विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ।। ९ ।।
पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ।
विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ।। १० ।।
हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ।
तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ।।११।।
मूत्रवेगनिरस्ताभिः प्रशमं याति वेदना ।
यावदस्याः पुनर्नैति गुडिका स्रोतसो मुखम् ।।१२।।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूत्रकृच्छ्रनिदानं समाप्तम् । ३० ।

अश्मरी और शर्करा रोग की उत्पत्ति और लक्षण समान होते हैं । शर्करा रोग में जो विशेष बात होती है, उसे कहते हैं, सुनो—पित्त से पककर वायु से सूखकर और कफ के संयोग से उत्पन्न हुई अश्मरी जब कफ के संयोग से मुक्त होती और मूत्राशय से शर्करारूप होकर निकलती है तो उसे शर्करा कहते हैं। अतएव अश्मरी और शर्करा एक ही रोग हैं। इसमें ये उपद्रव होते हैं—हृदय में पीड़ा, देह में कम्प, कोख में शूल, मन्दाग्नि, मूर्च्छा और दारुण मूत्रकृच्छ्र होता है। मूत्र वेग से निकल जाने पर पीड़ा शान्त हो जाती है। जब तक अश्मरी मूत्रस्रोत के मुख पर नहीं आती तब तक फिर पीड़ा नहीं होती । ९-१२ ।

मूत्राघातनिदान

मूत्राघात के निदान

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ।
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

वातादि दोषों के कुपित होने से वातकुण्डलिका आदि तेरह प्रकार के [1]मूत्राघात होते हैं। यह रोग प्रायः मल-मूत्र और शुक्र के वेग रोकने से तथा रूखा अन्न खाने आदि कारणों से होता है। १।

वातकुण्डलिका के लक्षण

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः ।
मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ।
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ३

रूखा अन्न खाने से, मल-मूत्र आदि के रोकने से, मूत्राशय में वायु कुपित हो जाता है और मूत्र को रोककर कुण्डलाकार घूमने लगता है। तब मूत्र थोड़ा-थोड़ा पीड़ा के साथ निकलता है। इस दारुण व्याधि को वातकुण्डलिका कहते हैं।

अष्ठीला के लक्षण

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ।
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

मूत्राशय और गुदा में कुपित हुआ वायु उन स्थानों में भर जाता है और उनके मार्ग रोककर मल-मूत्र का अवरोध कर देता है। वायु के प्रकोप से पत्थर की पिण्डी के समान अष्ठीला बन जाती है,

१. मूत्रकृच्छ्र में पीड़ा अधिक और मूत्र की रुकावट कम होती है। तथा मूत्राघात में मूत्र की रुकावट बहुत और पीड़ा कम होती है। यह भेद मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में है।

उसमें बड़ी पीड़ा होती है और मल-मूत्र का मार्ग रुक जाता है, उसे अष्ठीला[1] कहते हैं । ४ ।

वातबस्ति के लक्षण

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥५॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः सविज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥६॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्र का वेग रोक लेता है उसके मूत्राशय में वायु कुपित होकर मूत्राशय का मुख बन्द कर देता है, जिससे मूत्र में रुकावट हो जाती है, मूत्राशय और कोख में पीड़ा होती है। इसे वातबस्ति कहते हैं । यह व्याधि कष्टसाध्य है। ५-६ ।

मूत्रातीत के लक्षण

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

जो मनुष्य मूत्र को त्यागते समय वेग को रोककर धीरे-धीरे मूत्र को छोड़ता है, वेग से नहीं छोड़ता, उसे मूत्रातीत नामक विकार हो जाता है। वेग को रोकने के कारण उसका मूत्र धीरे-धीरे उतरने लगता है। ७ ।

मूत्रजठर के लक्षण

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः ।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ।
तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

मूत्र का वेग रोकने से कुपित अधोवायु पेट में भर जाता

---

१ 'अष्ठीला उत्तरापथे नदीषु पाषाणपिण्डी' । (आ० द०)

हैं, यही वायु उदावर्त्त का हेतु है, जिससे नाभि के नीचे पेट फूल जाता है और बड़ी पीड़ा होती है । मूत्राशय अधोभाग में मूत्र का अवरोध होता है । इसे मूत्रजठर कहते हैं । ८-९ ।

मूत्रोत्संग के लक्षण

बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥

मूत्र त्यागते समय वायु के विकार से मूत्राशय में अथवा लिंग के अग्रभाग में मूत्र रुक जाता है और पीड़ा तथा रुधिर के साथ अथवा बिना पीड़ा के ही थोड़ा-थोड़ा और धीरे-धीरे निकलता है । इसे मूत्रोत्संग कहते हैं । १०-११ ।

मूत्रक्षय के लक्षण

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

रूक्ष शरीरवाले और थके हुए मनुष्य के मूत्राशय में प्राप्त पित्त और वायु कुपित हो मूत्र को नष्ट कर देते हैं (सुखा देते हैं) । उसके मूत्राशय में पीड़ा और जलन होती है । इसे मूत्रक्षय कहते हैं । १२ ।

मूत्रग्रन्थि के लक्षण

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

मूत्राशय के द्वार के भीतर वायु के प्रकोप से सहसा रुधिर की गाँठ पड़ जाती है । वह गाँठ गोल, स्थिर और अश्मरी के समान छोटी होती है और अश्मरी के समान पीड़ा भी होती हैं । इसे मूत्रग्रन्थि कहते हैं । १३ ।

मूत्रशुक्र के लक्षण

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वाप्रवर्त्तते ॥१४॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

मूत्र के वेग को रोककर मैथुन करने से अपने स्थान से च्युत हुआ वीर्य वायु के वेग से ऊपर चढ़ जाता है, तब मूत्र के पहले अथवा पीछे भस्म मिले हुए जल के समान मूत्र निकलता है, उसे मूत्र-शुक्र कहते हैं। १४।

उष्णवात के लक्षण

व्यायामाध्वातपैःपित्तंबस्तिंप्राप्यानिलान्वितम् १५
बस्तिं मेढ्ं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ।
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा ॥ १६ ॥
कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं ब्रुवन्ति तम् ।

अधिक व्यायाय करने से, बहुत मार्ग चलने से, धूप में बहुत रहने से पित्त कुपित हो जाता है और वायु के साथ मूत्राशय में प्राप्त होकर मूत्राशय, लिंगेन्द्रिय और गुदा में दाह उत्पन्न कर देता है। मूत्र पीला अथवा कुछ लाल या बिल्कुल रक्त वर्ण कष्ट के साथ बारबार निकलता है, इसे उष्णवात कहते हैं। १५-१६।

मूत्रसाद के लक्षण

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥१७॥
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं श्वेतं रक्तं घनं सृजेत् ।
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् ॥ १८ ॥
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ।

मूत्राशय में वायु के प्रकोप से पित्त, अथवा कफ, अथवा पित्त और कफ दोनों गाढ़े हो जाते हैं तो मूत्र कष्ट से उतरता है।

यदि पित्त का प्रकोप होता है तो मूत्र पीला या लाल और दाह के साथ होता है। यदि कफ का प्रकोप होता है तो मूत्र सफेद, कुछ गाढ़ा और शंख के चूर्ण के रंग का-सा होता है और यदि तीनों दोषों के प्रकोप से होता है तो मूत्र सब तरह के रंगों का होता है। इसे मूत्रसाद कहते हैं। १७-१८।

विड्विघात के लक्षण

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावृत्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः।
विड्गन्धंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत् ॥२०॥

रूक्ष और दुर्बल मनुष्य का मल वायु के प्रकोप से यदि ऊपर को चढ़ जाता है और मूत्र के स्रोत में पहुँच जाता है तो उस मनुष्य के मूत्र में मल की दुर्गन्ध आती है, मूत्र में मल मिला रहता है, कष्ट से मूत्र उतरता है। इसे विड्विघात कहते हैं। १९-२०।

बस्तिकुण्डल के लक्षण

द्रुताध्वालंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात्।
स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥२१॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि।
पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥२२॥
बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम्।
पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः।
तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥२३॥
श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम्।

वेग से चलने अथवा लाँघने से, बहुत परिश्रम करने से, चोट लगने से, अथवा दबाने से, मूत्राशय अपने स्थान से ऊपर चढ़ जाता है और गर्भ के समान स्थूल हो जाता है। उसमें पीड़ा होती

है, दाह और स्पन्दन होता है, मूत्र बूँद-बूँद उतरता है, नाभि के नीचे दबाने से मूत्र की धारा भी निकलती है, जड़ता और बड़ी पीड़ा होती है, उसे बस्तिकुंडल कहते हैं । यह भयानक रोग शस्त्र के समान शीघ्र मार डालनेवाला अथवा विष के समान कुछ समय में मारनेवाला होता है । वायु की प्रबलता से यह रोग होता है । मूर्ख वैद्यों के लिए यह दुःसाध्य होता है । यदि वायु के साथ पित्त की अधिकता होती है तो दाह, पीड़ा और मूत्र का रंग पीला या लाल होता है और यदि कफ की अधिकता होती है तो देह में भारीपन, शोथ, चिकनापन तथा मूत्र सफेद और गाढ़ा होता है। २१-२३ ।

बस्तिकुण्डल के साध्यासाध्य विचार

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।२४।
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न तु यः कुण्डलीकृतः ।
स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहःश्वास एव च ।२५।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने

मूत्राघातनिदानं समाप्तम् । ३१ ।

बस्तिकुण्डल में यदि मूत्राशय का मुख कफ से अवरुद्ध हो जाता है और पित्त भी संचित होता है तो असाध्य है और यदि बस्ति का द्वार कफ से अवरुद्ध नहीं होता तो साध्य, और यदि कफ मूत्राशय को सब ओर से घेर लेता है तो भी असाध्य है । बस्ति का द्वार जब कफ से घिरकर कुंडलाकार हो जाता है तो प्यास मूर्च्छा और श्वास, ये उपद्रव होते हैं। २४-२५ ।

अश्मरीनिदान

अश्मरी के निदान और संप्राप्ति

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः १

वात से, पित्त से, कफ से और शुक्र के विकार से चार प्रकार की अश्मरी होती हैं। ये प्रायः कफ के प्रकोप से होती हैं। सब प्रकार की अश्मरी मृत्यु के समान हैं ॥ १ ॥

विशोषयेद्बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा
यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः।
नैकदोषाश्रयाः सर्वाः,

बस्तिगत मूत्र और शुक्र को अथवा पित्तसहित कफ को जब वायु सुखा देता है तो अश्मरी उत्पन्न होती है और क्रमशः जैसे गौ के पित्त में गोरोचन बढ़ता है वैसे ही वह धीरे-धीरे बढ़ती है। अश्मरी केवल एक दोष से नहीं होती, तीनों दोषों से इसकी उत्पत्ति होती है। २।

अश्मरी के पूर्वरूप

अथासां पूर्वलक्षणम्।
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥ ३ ॥
मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः।

अश्मरी होने के पहले ये लक्षण होते हैं—मूत्राशय में अफरा, मूत्राशय के पास चारों ओर अत्यन्त पीड़ा, मूत्र में बकरे के मूत्र के समान गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है। ३।

अश्मरी के सामान्य लक्षण

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु ॥ ४ ॥
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते।
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥ ५ ॥
तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत्।

अश्मरी के सामान्य लक्षण ये होते हैं—नाभि के नीचे पीड़ा होती है, मूत्र थोड़ा-थोड़ा उतरता है, मूत्र की धार बार-बार टूट जाती है, क्योंकि वायु के द्वारा पथरी मूत्र के मार्ग में आकर रुक

जाती है। जब वह मार्ग से हटती है तब मूत्र सुखपूर्वक उतरता है। मूत्र का रंग गोमेद के समान लाल होता है। वायु के द्वारा अश्मरी के चलने पर यदि मूत्र के मार्ग में घाव हो जाता है तो मूत्र बड़ी पीड़ा के साथ बड़े कष्ट से रुधिर सहित निकलता है। ४-५।

वातज अश्मरी के लक्षण

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान् खादति वेपते ॥६॥
गृह्णाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन्।
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥ ७ ॥
श्यावारुणाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव।

यदि वात की अधिकता से अश्मरी होती है तो रोगी मूत्र त्यागते समय पीड़ा के मारे काँपने लगता है, दाँत कटकटाता है, लिंग को हाथ से पकड़े रहता है, नाभि में बड़ी पीड़ा होती है, बार-बार बूँद-बूँद मूत्र उतरता है, मूत्र के मार्ग में काँटे के समान गड़ते हैं। इस अश्मरी का रंग काला या लाल होता है। ६-७।

पित्तज अश्मरी के लक्षण

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥ ८ ॥
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी।

पित्त की अधिकता से अश्मरी होने से मूत्राशय में जलन होती है, रोगी का शरीर कुछ गरम बना रहता है, अश्मरी का आकार भिलावाँ की गुठली के समान होता है। रंग लाल, पीला या काला होता है। ८।

कफज अश्मरी के लक्षण

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ॥९॥
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथवा सिता।

कफ की अधिकता से यदि अश्मरी होती है तो मूत्राशय में सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, रोगी की देह में भारीपन और शीतलता रहती है। अश्मरी चिकनी, बड़ी, सफेद अथवा शहद के समान वर्णवाली होती है। ९।

अश्मरी की सुखसाध्यता

एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा ।। १० ।।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ।

वातादि दोषों के विकार से अश्मरी प्रायः बालकों को होती है। उनका शरीर और मूत्राशय अल्प होता है, शरीर में मांस की कमी होती है, इसलिए अश्मरी के निकालने में (आपरेशन में) कठिनता नहीं होती। १०।

शुक्राश्मरी के लक्षण

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।। ११ ।।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ।
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ।। १२ ।।
बस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी ।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ।। १३ ।।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन् अश्मर्येव च शर्करा ।

शुक्र की अश्मरी बालकों के नहीं होती, अधिक आयुवाले पुरुषों के ही होती है, उसकी उत्पत्ति वीर्य का वेग रोकने से होती है। जो मनुष्य मैथुन करते समय अपने स्थान से च्युत वीर्य को रोक लेता है, उस वीर्य को लिंग और अंडकोष के बीच में वायु सुखा देता है, वही वीर्य सूखकर अश्मरी बन जाती है। उसमें ये उपद्रव होते हैं—मूत्राशय में पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र, अंडकोश में शोथ होता है। अश्मरी के उत्पन्न होने पर (नई ही अश्मरी हो तो) लिंग और अंडकोष के बीच में दबाने पर अश्मरी भीतर लीन हो जाती है और मूत्र के मार्ग से वीर्य निकलता है। वही अश्मरी शर्करा हो जाती है। ११-१३।

अश्मरी कैसे शर्करा होती है—

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ।।१४।।

निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे निरुध्यते ।
मूत्रस्रोतः प्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ।। १५ ।।
दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम् ।
पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ।।१६।।

जब अधोवायु का अनुलोम रहता है तो वायु के द्वारा अश्मरी के कण कट-कटकर मूत्र के साथ निकलते रहते हैं। उसको शर्करा कहते हैं। और यदि अधोवायु का प्रतिलोम हो जाता है तो मूत्र के साथ कण नहीं निकलते।

अश्मरी जब मूत्र के स्रोत में रुकी रहती है तो ये उपद्रव होते हैं—निर्बलता, अंगों में शिथिलता, पीड़ा, दुबलापन, कोख में पीड़ा, अरुचि, पाण्डु, उष्णवात, पिपासा, हृदय में पीड़ा और वमन । १४-१६ ।

असाध्य लक्षण

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् ।
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ।।१७।।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽश्मरीनिदानं समाप्तम् ।। ३२ ।।

अश्मरी के रोग में जब नाभि और अण्डकोष में शोथ हो जाय, मूत्र में रुकावट और पीड़ा हो, मूत्र में शर्करा और सिकता भी आती हो, तो असाध्य समझना चाहिए। वह रोगी नहीं बचता। १७ ।

प्रमेह-प्रमेहपिडकानिदान

प्रमेह के निदान

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ।। १ ।।

सुखपूर्वक आसन पर बैठे रहने और बड़े आराम से शय्या पर सोने से अर्थात् कुछ परिश्रम न करने से, दही (छाछ आदि) बहुत खाने से, ग्राम्य (पालतू पशुओं भेड़ बकरी आदि) का मांस खाने से, जल के समीप अथवा जल में रहनेवाले जीवों का मांस खाने से, नया अन्न खाने से, बरसात का पानी पीने से, गुड़ के बने हुए पदार्थ अथवा शक्कर बहुत खाने से, तथा कफ बढ़ानेवाले पदार्थों के खाने से सभी प्रमेह उत्पन्न होते हैं। १।

टिप्पणी—ये सब कारण कफकारक और प्रमेहकारक भी हैं, अतः इन कारणों से प्रायः श्लैष्मिक प्रमेह ही होते हैं। यद्यपि इन कारणों से ही अन्य प्रमेह भी हो जाते हैं, परन्तु पहले कफज प्रमेह ही होना है। इनके साथ जब हायनक, उद्दालक आदि उष्ण अम्ल लवण आदि या चरपरे कड़वे आदि पदार्थ सेवन किये जाते हैं तब क्रमशः कफ, पित्त और वातज प्रमेह होते हैं।

प्रमेह की संप्राप्ति

मेदश्च मांसं च शरीरजं च
क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णै-
स्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ २ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्
संदूष्य मेहान् कुरुतेऽनिलश्च।
साध्याः कफोत्था दश, पित्तजाः षड्
याप्या, न साध्यः पवनाच्चतुष्कः ॥३॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वा-
न्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते।

मूत्राशय में रहनेवाला कफ मेद, मांस और शरीर के क्लेद को दूषित करके प्रमेह उत्पन्न कर देता है। तथा उष्ण पदार्थों के सेवन से वृद्धि को प्राप्त हुआ पित्त भी ऊपर कहे हुए धातुओं को दूषित करके प्रमेह उत्पन्न करता है। कफ आदि दोषों के क्षीण होने पर वायु

धातुओं (वसा, मज्जा, ओज और लसीका) को मूत्राशय के अग्रभाग में खींचकर और दूषित करके प्रमेह उत्पन्न कर देता है। कफ से उत्पन्न दस प्रकार के प्रमेह साध्य होते हैं, पित्त के प्रकोप से छः प्रकार के प्रमेह याप्य होते हैं और वायु से चार प्रकार के प्रमेह असाध्य होते हैं; क्योंकि कफ दोष और मेद आदि दूष्यों की (कटु तिक्त आदि) क्रिया समान है। इस रोग का प्रभाव ही ऐसा है कि तुल्यदूष्यता इस रोग में साध्य का कारण होती है (कहा भी है—"ज्वरे तुल्यर्तु दोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता। रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य कारणम्॥") पित्त के प्रमेह इसलिए याप्य हैं कि उनकी विषम क्रिया है, (क्योंकि शीतल और मधुर पदार्थ जो पित्त को शान्त करनेवाले हैं वे मेद को बढ़ाते हैं और उष्ण कटु आदि जो मेद का नाश करनेवाले हैं वे पित्त को बढ़ाते हैं) अतएव दोष और दूष्य की विपरीत क्रिया करनी पड़ती है। वातज प्रमेह इसलिए असाध्य होते हैं कि उनमें मज्जा आदि गंभीर धातुओं का आकर्षण होता है, वायु आशुकारी होता है, दोष और दूष्य की क्रिया भी विपरीत होती है। २–३।

दोष्यदूष्य संग्रह

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा
मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः॥
मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्याः,
प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः॥ ४॥

पित्त, कफ और वायु दोष से तथा मेद, रुधिर, शुक्र, जल, वसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस, इन दूष्यों से प्रमेह बीस प्रकार के होते हैं। ४।

टिप्पणी—वसा मांस की चिकनाई को कहते हैं और लसीका मांस और त्वचा के बीच में रहनेवाले जल को कहते हैं। ओज से यहाँ आधी अंजलि मात्रा में श्लेष्मरूप ओज को ग्रहण किया है, अष्ट बिन्दुमात्रावाले ओज का ग्रहण नहीं है। दोष और दूष्य सब मिलाकर केवल २० ही प्रमेह उत्पन्न करते हैं, अधिक नहीं कर सकते।

प्रमेह के पूर्वरूप

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते ॥५॥

प्रमेह होने के पहले ये लक्षण होते हैं—दाँत आदि (नेत्र, कर्ण, जिह्वा, गल, तालु) में मैल जम जाता है, हाथ-पाँव में जलन होती है, देह में चिकनापन होता है, प्यास बहुत लगती है और मुँह का स्वाद मीठा मालूम होता है। दाँत आदि में मल की अधिकता मेद के दूषित होने से और देह में चिकनापन मेद और कफ के दूषित होने से होता है। ५।

प्रमेह के सामान्य लक्षण

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ६ ॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ।

सब प्रकार के प्रमेहों में मूत्र अधिक और विकृत आता है, प्रमेह के ये सामान्य लक्षण हैं। दोष और दूष्य की अधिकता और न्यूनता तथा संयोगभेद से मूत्र के वर्ण आदि में जो अन्तर होता है उससे प्रमेह के भेद की कल्पना करनी चाहिए। (जैसे श्वेत, कृष्ण, पीत, रक्त और नील वर्ण के संयोगभेद से पिंगल (श्वेत-नील मिश्रित) और पाटल (श्वेत-रक्त मिश्रित) आदि अनेक भेद होते हैं। वैसे ही दोष और दूष्य की अधिकता, न्यूनता और संयोग-भेद से प्रमेह के भेद समझने चाहिए)। ६।

कफज १० प्रमेहों के लक्षण

उदकमेह

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥७॥
मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम् ।

इक्षुमेह

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ ८ ॥

सान्द्रमेह

सान्द्रीभवेत् पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ।

सुरामेह

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ ९ ॥

पिष्टमेह

संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ।

शुक्रमेह

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ १० ॥

सिकतामेह

मूर्ताणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ।

शीतमेह

शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ ११ ॥

शनैर्मेह

शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ।

लालामेह

लालातन्तुयुतं मूत्रं लाला मेहेन पिच्छिलम् ॥१२॥

कफ से दस प्रकार के प्रमेह होते हैं—उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैर्मेह, लालामेह। इसी क्रम से इनके लक्षण कहते हैं। **उदकमेह** में मूत्र स्वच्छ, अधिक सफेद, शीतल, गन्धरहित, जल के समान कुछ गँदला और चिकना होता है। **इक्षुमेह** में मूत्र ईख के रस के समान अति मधुर होता है। **सान्द्रमेह** में मूत्र रात में रक्खे रहने से गाढ़ा होजाता है। **सुरामेह** में मूत्र सुरा के समान, ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढ़ा होता है। **पिष्टमेह** में मूत्र पिसे हुए चावलों के जल के समान श्वेत और बहुत होता है। मूत्र उतरते समय रोगी का शरीर रोमांचित हो जाता है। **शुक्रमेह** में शुक्र मिला हुआ मूत्र आता है, शुक्र के समान रंग भी होता है। **सिकतामेह** में मूत्र के साथ बालू के समान कठोर और

छोटे कफ के कण गिरते हैं। **शीतमेह** में मूत्र बहुत शीतल, मधुर और अधिक उतरता है। **शनैर्मेह** में मूत्र धीरे-धीरे उतरता है। **लालामेह** में मूत्र लार के समान तारवाला और चिकना होता है। ७-१२।

टिप्पणी—कफ के श्वेत, शीत, मूर्त, पिच्छिल, अच्छ, स्निग्ध, गुरु, मधुर, सान्द्र, प्रसाद और मन्द इन दस गुणों से (एक एक या अनेक के योग से) कफज दस प्रमेह होते हैं। श्वेत, अच्छ और शीत गुणों से उदकमेह, मधुर और शीत से इक्षुमेह, सान्द्र और पिच्छिल से सान्द्रमेह, पित्तानुरागी अच्छमेह से सुरामेह, शुक्ल से पिष्टमेह, श्वेतगुण और स्निग्ध से शुक्रमेह, सान्द्र और मूर्त से सिकतामेह, गुरु, मधुर और शीत से शीतमेह, मन्द और मूर्त से शनैर्मेह एवं पिच्छिल गुण से लालामेह होता है। चरकसंहिता में सुरामेह के स्थान में सान्द्रप्रसाद मेह और पिष्टमेह के स्थान में शुक्लमेह कहा है। चरकोक्त शीतमेह और लालामेह के स्थान पर सुश्रुताचार्य ने फेनमेह और लवणमेह कहा है।

पित्तज ६ प्रमेहों के लक्षण

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्।
नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मसीनिभम्॥ १३॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासंनिभं दहत्।
विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्॥ १४॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः।

पित्त के प्रकोप से छः प्रकार के प्रमेह होते हैं—क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह और रक्तमेह। क्रम से इनके लक्षण कहते हैं। **क्षारमेह** में मूत्र गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श में खारी जल के समान होता है। **नीलमेह** में मूत्र नीला होता है। **कालमेह** में मूत्र स्याही के समान काला होता है। **हारिद्रमेह** में मूत्र हल्दी के समान पीला, कटु और दाहयुक्त होता है। **मञ्जिष्ठप्रमेह** में मूत्र मँजीठ के रंग का होता है और कच्चे मांस की सी गन्ध आती है। **रक्तमेह** में मूत्र लाल, उष्ण और लवणसहित होता है। उसमें कच्चे मांस के समान गन्ध आती है। १३-१४।

टिप्पणी—पित्त के क्षार, नील, काल, पीत, लोहित और विस्र इन छः

गुणों से क्रमानुसार छः प्रमेह होते हैं। कालमेह के स्थान पर आचार्य सुश्रुत ने अम्लमेह कहा है।

वातज ४ प्रमेहों के लक्षण

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ १५ ॥
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ।
कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः ॥ १६ ॥
हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ।
सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

वायु से चार प्रकार के प्रमेह होते हैं—वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह और हस्तिमेह। इनके ये लक्षण हैं। **वसामेह** में मूत्र वसा के समान और वसा मिला हुआ होता है। **मज्जामेह** में मूत्र मज्जा मिला हुआ और मज्जा के समान बार बार होता है। **क्षौद्रमेह** में मूत्र कसैला, मधुर और रूक्ष होता है। **हस्तिमेह** में रोगी का मूत्र मत्त हाथी के मूत्र के समान निरन्तर वेगरहित लसीका के साथ और रुक रुककर होता है। १५-१७।

प्रमेह के उपद्रव

कफज प्रमेह के उपद्रव

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥१८॥

पैत्तिक प्रमेह के उपद्रव

बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।
दाहस्तृष्णाऽम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥

वातिक प्रमेह के उपद्रव

वातजानामुदावर्तः कम्पहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥२०॥

भोजन का न पचना, अरुचि, वमन, निद्रा, खाँसी, पीनस, ये

उपद्रव कफ से उत्पन्न प्रमेहों में होते हैं । मूत्राशय और लिंगेन्द्रिय में सुई चुभाने की सी पीड़ा, अंडकोषों का पक जाना और फटना, ज्वर दाह, प्यास, खट्टी डकारें, मूर्च्छा और पतले दस्त, ये लक्षण पित्त से उत्पन्न प्रमेहों में होते हैं । उदावर्त, कम्प, हृदय का जकड़ जाना, खट्टे-मीठे आदि सब तरह के पदार्थ खाने की इच्छा होना (रोग के प्रभाव से अथवा धातुओं की क्षीणता से) , मूत्राशय और लिंग में पीड़ा, नींद का न आना, शोष, सूखी खाँसी और श्वास, ये उपद्रव वातज प्रमेहों में होते हैं । १८-२० ।

प्रमेह की असाध्यता

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ।
पिडकापीडितं गाढः प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥२१॥

प्रमेह के जिस रोगी में ऊपर कहे हुए सब उपद्रव हों, मूत्र बहुत उतरता हो, शराविका आदि पिडका, जो आगे कही जायँगी, उनसे भी पीड़ित हो, पुराना और गंभीर धातुआश्रित प्रमेह उस रोगी को मार डालता है । २१ ।

असाध्यता के अन्य कारण

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा
न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात् ।
ये चापि केचित्कुलजा विकारा
भवन्ति तांस्तान् प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥२२॥

जिस मनुष्य के प्रमेह होता है, उससे जो सन्तान होती है, उसे भी प्रमेह राग होता है । बीज के दोष से उत्पन्न वह प्रमेह असाध्य बताया गया है (कुष्ठ आदि और भी जितने रोग पिता-पितामह आदि के क्रम से कुलपरंपरागत होते हैं, वे सब असाध्य होते हैं) । २२ ।

टिप्पणी—यहाँ मधुमेह शब्द से प्रमेह मात्र का ग्रहण है ।

सब प्रकार के प्रमेह उपेक्षा करने से मधुमेह हो जाते हैं—

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।

मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥२३॥
मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा ।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ २४ ॥
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ।
क्षीणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ।२५।
मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २६ ॥

सब प्रकार के प्रमेह उपयुक्त औषध न करने से कुछ समय में मधुमेह हो जाते हैं, तब वे असाध्य होते हैं। मधुमेह में मूत्र मधु के समान होता है। मधुमेह दो प्रकार का होता है। एक धातुओं के क्षीण होने से वायु का प्रकोप होने पर, दूसरा पित्त आदि दोषों से वायु के मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर। धातुक्षय के कारण कुपित वायु से जो मधुमेह होता है, उसमें वातमेह के लक्षण होते हैं और वायु का मार्ग आच्छादित होने पर जो मधुमेह होता है, उसमें पित्त आदि जिस दोष से मार्ग आच्छादित होते हैं, उस दोष के और वायु के लक्षण सहसा प्रकट होते हैं। क्षणभर में सब लक्षण दीखते हैं और क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। यह कष्टसाध्य होता है। सब प्रमेहों में प्रायः मूत्र मधु के समान मधुर होता है और रोगी की देह में भी मधुरता होती है, अतः सब प्रकार के प्रमेहों को मधुमेह कहते हैं। २३-२६।

प्रमेह की उपेक्षा करने से पिडका होती है—

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २७ ॥
विद्रधिश्चेति पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।
सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २८ ॥

प्रमेह की उपेक्षा करने से दस प्रकार की पिडकाएँ होती हैं—शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि। ये पिडका मांसलस्थानों में और सन्धियों के आश्रित मर्मस्थानों में होती हैं। (यहाँ विनता का पाठ भोज के विरुद्ध है, क्योंकि भोज ने विनता को छोड़कर नव पिडकाएँ लिखी हैं। और चरक ने सात ही पिडकाएँ मानी हैं। मसूरिका, पुत्रिणी और विदारिका का उल्लेख चरक में नहीं है)। २७-२८।

पिडकाओं की आकृति

शराविका

अन्तोन्नता तु तद्रूपा निम्नमध्या शराविका।

सर्षपी

गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ २९ ॥

कच्छपिका

सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः।

जालिनी

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ ३० ॥

अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वाऽप्युदरेऽपि वा।

विनता

महती पिडका नीला विनतानाम सा स्मृता ॥३१॥

पुत्रिणी

महत्यल्पाचिता ज्ञेया पिडका चापि पुत्रिणी।

मसूरिका

मसूराकृतिसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥३२॥

अलजी

रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत्।

विदारिका

विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥३३॥

विद्रधिका

विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ।

पिडकाओं की उत्पत्ति के कारण

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥३४॥
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ।
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३५ ॥

जो पिडका शराव के समान अन्त में ऊँची और बीच में नीची हो उसे **शराविका** कहते हैं । सफेद सरसों के समान दाने जिसमें हों उसे **सर्षपी** कहते हैं । जो कछुए की पीठ के समान हो और उसमें जलन हो, उसे **कच्छपिका** कहते हैं । जिसमें बहुत जलन होती है और मांस बढ़ जाता है उसे **जालिनी** कहते हैं । पीठ या पेट में होती है, उस नीली और बहुत बड़ी पिडका को **विनता** कहते हैं । जो छोटी-छोटी पिडकाओं से युक्त बड़ी पिडका होती है, उसे **पुत्रिणी** कहते हैं । मसूर के दाने के समान जो पिडका होती है, उसे **मसूरिका** कहते हैं । जिसका रंग लाल या सफेद हो, उस छालेयुक्त कष्टदायक पिडका को **अलजी** कहते हैं । जो विदारीकन्द के समान गोल और कठोर पिडका हो उसे **विदारिका** कहते हैं । जिस पिडका में विद्रधि के लक्षण (आगे कहेंगे) मिलते हों उसे **विद्रधिका** कहते हैं । जो प्रमेह जिन दोषों के विकार से होता है, उसकी पिडका भी उन्हीं दोषों के विकार से होती है । विना प्रमेह के भी मेद दूषित होने पर ये पिडकाएँ होती हैं । जब तक पिडका अपना घेरा नहीं बना लेती तब तक उसके लक्षण प्रकट नहीं होते । २९-३५ ।

असाध्य पिडकाएँ

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ।
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने प्रमेह-प्रमेहपिडकानिदानं समाप्तम् ॥ ३३ ॥

गुदा में, हृदय में, कन्धे पर, पीठ में अथवा मर्मस्थानों में पिडका हो और सब उपद्रव भी हों, रोगी मन्दाग्नि भी हो तो वह रोगी असाध्य होता है। उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। ३६।

मेदोरोगनिदान

मेदरोग के निदान

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः।
मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदः प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥

मेदरोग की संप्राप्ति

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात् पुष्यन्त्यन्ये न धातवः।
मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदरोग के लक्षण

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः।
युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥
मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्।
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥
मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः।
चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥
तस्मात् स शीघ्रं जरयत्याहारमभिकांक्षति।
विकारांश्चाप्नुते घोरान् कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ६

असाध्य लक्षण

एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ।
एतौ तु दहतः स्थूलं वनदावो वनं यथा ॥ ७ ॥

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशुजीवितम् ८

अतिस्थूल के लक्षण

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मेदोनिदानं समाप्तम् ॥ ३४ ॥

परिश्रम न करने से, दिन में सोने से, कफ बढ़ानेवाले पदार्थ खाने से, अन्न-रस (आम रस के समान) मधुर हो जाता है और स्निग्धता के कारण मेद की वृद्धि करता है। बढ़े हुए मेद से जब शरीर के स्रोत रुक जाते हैं तो रुधिर आदि धातुएँ नहीं ब तीं और मेद ही सञ्चित हो जाता है। धातुओं के पुष्ट न होने से वह मनुष्य सब कामों में असक्त हो जाता है। तब क्षुद्रश्वास, प्यास, मूर्छा, निद्रा, अकस्मात् श्वास का अवरोध अथवा गले में घुरघुराहट, अङ्गों में ग्लानि, छींकें, पसीना, देह में दुर्गन्ध, निर्बलता, मैथुन करने में शक्ति की अल्पता ये उपद्रव होते हैं। मेद सब प्राणियों के पेट में हड्डियों में रहता है, अतएव प्रायः मेदरोगवाले को उदरवृद्धि होती है। मेद के द्वारा वायु के मार्ग रुद्ध होने से वायु कोष्ठ में घूमा करता है और अग्नि को दीप्त करके आहार को सुखा देता है। अतएव उस रोगी का आहार शीघ्र पच जाता है और वह फिर खाने की इच्छा करता है। कुछ समय बाद प्रमेह, पिडका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि अथवा वातव्याधि के दारुण विकार उत्पन्न होते हैं। कोष्ठ में प्रवृद्ध वायु और अग्नि अनेक उपद्रव उत्पन्न करते हैं। मेद के रोगी का शरीर स्थूल हो जाता है। उस स्थूल शरीर को कोष्ठ का वायु और अग्नि वसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे वन को दावाग्नि भस्म कर देता है। मेद के अत्यन्त बढ़ने पर वायु आदि अनेक दारुण विकार उत्पन्न करके शीघ्र ही जीवन नष्ट कर देते हैं। मेद और मांस के अत्यन्त बढ़ने पर शरीर इतना स्थूल हो जाता है कि कमर के नीचे का भाग, पेट और स्तन हिलने लगते हैं। उत्साह नष्ट हो जाता है। मेद का रोगी अतिस्थूल हो जाता है। १–९।

उदरनिदान

उदररोग के निदान

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

मन्दाग्नि से सब प्रकार के रोग हो सकते हैं। और उदररोग तो विशेषकर मन्दाग्नि से होते हैं, क्योंकि अग्निमान्द्य तीनों दोषों के प्रकोप का कारण है। अजी से, वातादि दोषों के अत्यन्त कुपित होने से (विरुद्धाध्यशन आदि से दोष कुपित होते हैं) और मलिन अन्न तथा मल (दोष और पुरीष आदि) के संचित होने से उदररोग होते हैं। १।

उदररोग की संप्राप्ति

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥२॥

संचित हुए दोष स्वेदवाहक मेद और रोमकूप और जलवाहक तालु और क्लोम स्रोतों के मार्ग को रोककर प्राणवायु, जठराग्नि और अपान वायु को दूषित करके उदर रोग उत्पन्न करते हैं। २।

उदररोग के सामान्य लक्षण

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ३ ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ ४ ॥
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ।

पेट फूलता है, चलने की शक्ति नहीं रहती, दुर्बलता और मंदाग्नि होती है। शोथ, अंगों में पीड़ा, वायु और मल का अवरोध, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदररोगों में होते हैं। उदररोग आठ प्रकार के होते

हैं। वात से, पित्त से, सब दोषों से तथा प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर, जलोदर। इनके लक्षण अलग-अलग सुनो। ३-४।

टिप्पणी—यकृद्दाल्युदर प्लीहोदर में समान कारण और चिकित्सा में सम्मिलित कर लिया है।

कफोदर के लक्षण

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम्।
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसंग्रहः ॥ ६ ॥
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत्।
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ ७ ॥
आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

वातोदर में हाथ, पाँव, नाभि और कोख में शोथ होता है। तथा कोख, पार्श्व, उदर, कमर और पीठ में पीड़ा होती है। सन्धियों में टूटने की-सी पीड़ा होती है। सूखी खाँसी, अंगों में ग्लानि, हड़फूटन, देह के अधोभाग में भारीपन, मलबद्धता, त्वचा और नेत्र आदि का काला या लाल हो जाना, अकस्मात् रोग का घटना या बढ़ना, पेट में सुई कोंचने अथवा भेदन करने की-सी पीड़ा और पतली, काली, शिराओं का दिखाई देना, पेट फूलना, पेट बजाने से वायु से भरी हुई चमड़े की थैली (मशक) को बजाने के समान शब्द होना, ये लक्षण वातोदर के हैं। कोष्ठगत वायु पीड़ा और शब्द के साथ कोष्ठ में घूमता रहता है। ५-८।

पित्तोदर के लक्षण

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥

पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।
धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

पित्तोदर में ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुँह का स्वाद कड़वा मालूम होना, भ्रम, अतीसार, त्वचा और नेत्र आदि में पीलापन, पेट हरे रंग का हो जाना और पीली अथवा ताँबे के रंग की नसों से घिरा हुआ सा मालूम होना, पसीना आना, गर्मी मालूम होना, उदर में दाह होना, गले से धुएँ के समान निकलना, पेट का कोमल बना रहना, क्षिप्रपाक होना (अर्थात् शीघ्र ही जलोदर होता है) और व्यथा होना ये लक्षण प्रकट होते हैं। ९-१०।

कफोदर के लक्षण

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम्
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ।११।
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् ।
चिराभिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥१२॥

कफोदर में अंगों में ग्लानि, शून्यता, शोथ और भारीपन होता है। नींद बहुत आती है, उबकाई, अरुचि, श्वास और खाँसी होती है। त्वचा, नेत्र और मल-मूत्र का रंग सफेद होता है। उदर गीले कपड़े से पोंछने के समान चिकना और सफेद नसों से व्याप्त हो जाता है। कठोर होता है, धीरे धीरे देर में बढ़ता है, शीतल, भारी और स्थिर रहता है। ११-१२।

सन्निपातोदर के लक्षण

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्र-
विडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च
दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १३ ॥

तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः
कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ।
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च
विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १४ ॥
स चातुरो मुह्यति हि प्रसक्तं
पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ।
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव,

अपने वश में करने की इच्छा से मूर्खा दुराचारिणी स्त्रियाँ जिस पुरुष को खाने-पीने के पदार्थ में नख, लोम, मूत्र, बिल्ली आदि की विष्ठा अथवा आर्तव मिलाकर खिला देती हैं, अथवा शत्रु संयोगज विष जिसे खिला देता है, अथवा जो मनुष्य ऐसा जल पीता है जिसमें तृण और पत्ते आदि सड़ गये हों, अथवा दूषीविष (गुणहीन विष) जिसने खाया हो, ऐसे मनुष्यों का रुधिर और वातादि दोष शीघ्र कुपित हो जाते हैं और घोर सन्निपातोदर उत्पन्न कर देते हैं। यह रोग शीतल वायु चलने पर, अथवा जिन दिनों में बादल घिरे होते हैं, विशेषतः कुपित होता है । इसमें दाह होता है, रोगी मूर्च्छित हो जाता है, देह कृश और पाण्डु हो जाती है। प्यास के मारे मुँह सूखता है । इसे दूष्योदर भी कहते हैं, क्योंकि वातादि दोष परस्पर एक-दूसरे को दूषित करते हैं, इसलिए दोषों को भी दूष्य कहते हैं, उनसे होने के कारण दूष्योदर कहलाता है। १३-१४ ।

प्लीहोदर के लक्षण

प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥
विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः
प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ।

प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ
प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १६ ॥
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति
विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गै-
रुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥

यकृद्दाल्युदर के लक्षण

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे
ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १७ ॥

अब प्लीहोदर के लक्षण कहते हैं, सुनो। विदाही और अभिष्यन्दी पदार्थ बहुत खानेवाले मनुष्य का रुधिर और कफ अत्यन्त दूषित होकर प्लीहा की वृद्धि कर देते हैं तो पेट बढ़ जाता है, उसे प्लीहोदर कहते हैं। प्लीहोदर में पेट बाईं ओर बढ़ता है और रोगी बहुत पीड़ित रहता है। मन्द ज्वर रहता है, जठराग्नि भी मन्द हो जाती है। कफ और पित्त के लक्षण प्रकट होते हैं। मन्दज्वर पित्त का और मन्दाग्नि कफ का लक्षण है। (विदाही पदार्थ खाने से रक्त और पित्त दोनों कुपित होते हैं) रोगी का बल क्षीण हो जाता है और शरीर बहुत पीला हो जाता है। इसी तरह दाहने पार्श्व में यकृत् की वृद्धि भी दोषों के प्रकोप से होती है। उसमें भी ऐसे ही लक्षण होते हैं। उसे यकृद्दाल्युदर कहते हैं। (यकृद्दालयति दोषैर्भेदयतीति यकृद्दाल्युदरम्)। १५-१७।

टिप्पणी—यकृद्दाल्युदर का समावेश प्लीहोदर में ही हो जाता है, इसी लिए 'तदेव' पद रक्खा है।

दोषों के सम्बन्ध

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥१८॥

प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर में यदि वात की अधिकता होती है तो उदावर्त, पीड़ा और पेट में गुड़गुड़ाहट होती है। पित्त की अधिकता से मूर्च्छा, प्यास, दाह और ज्वर होता है। कफ की अधिकता से भारीपन, अरुचि और पेट में कठोरता रहती है। १८।

बद्धगुद के लक्षण

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा
बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत्।
संचीयते तस्य मलः सदोषः
शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम्॥ १९॥
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं
निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम्।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति
तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति॥ २०॥

भारी और चिकने पदार्थ (साग आदि) बहुत खाने से, अथवा बाल या पत्थर के कण अन्न के साथ खा जाने से जिसकी आँत में बद्धता हो जाती है उसका मल और वातादि दोष धीरे-धीरे उसी प्रकार संचित हो जाते हैं जैसे मार्जनी (बुहारी) से उड़े हुए तृण और धूलि आदि किसी वस्तु पर जम जाते हैं। तब उसकी गुदा में मल रुक जाता है और कष्ट के साथ थोड़ा-थोड़ा निकलता है। हृदय और नाभि के बीच में पेट बढ़ जाता है, उस उदर को बद्धगुदोदर कहते हैं। (गुदोपर्यन्त्रस्य बद्धत्वाद् बद्धगुदम्)। १९-२०।

क्षतोदर के लक्षण

शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं
भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा।

तस्मात्स्त्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः
स्त्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २१ ॥
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं
निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं,

अन्न के साथ काँटा या कण आदि पेट में जाकर यदि तिरछा हो जाता है तो आँत छिल जाती है (सीधा चला जाता है तो कुछ हानि नहीं) तो आँत से पानी के समान स्राव होता है, वह गुदा के मार्ग से बाहर निकलता है (अथवा जँभाई से या अति भोजन से भी ऐसा होता है—चरक) नाभि के नीचे पेट बढ़ जाता है, पेट में सुई चुभाने और चीरने की सी अत्यन्त पीड़ा होती है, उसे चतोदर अथवा परिस्राव्युदर कहते हैं । २१ ।

जलोदर के लक्षण

दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २२ ॥
यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा
वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य
स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ २३ ॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवाऽपि तेषु
दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि
समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ।
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च
शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ २४ ॥

स्नेहपान, अनुवासन बस्ति, वमन, विरेचन अथवा निरूह बस्ति लेकर जो मनुष्य शीघ्र शीतल जल पी लेता है उसके उदकवह स्रोत दूषित हो जाते हैं। उनसे अन्न का रस निकलकर पेट में भर जाता है और जलोदर हो जाता है। पेट चिकना, बड़ा, नाभि के पास ऊँचा, पानी से भरी हुई मशक के समान हो जाता है और जैसे मशक हिलने पर पानी के चलने का शब्द होता है वैसी ही दशा पेट की होती है। २२-२४।

टिप्पणी—जलोदर में आरम्भ से ही जल अधिक होता है। दूसरे उदरों में कम होता है।

साध्यासाध्य उदररोग

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्।
बलिनस्तदजाताम्बु[1] यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥२५॥
पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं[2] तथा।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥२६॥

---

१. अजातोदकस्योदरस्य लक्षणं चरकेऽवगन्तव्यं, तद्यथा—"अशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम्। सदा गुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम्॥ नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति। हृद्वङ्क्षणकटीनाभिगुदप्रत्येकशूलिनः॥ कर्कशं सृजतो वातं नातिमन्दे च पावके। लालया विरसे चास्ये मूत्रेऽल्पे संहते विशि॥ अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः॥" अत्र कर्कशमिति वेगवन्तम्।

२. जातोदकलक्षणं च चरके यथा,—"कुक्षेरतिमात्रं वृद्धिः शिरान्तर्धानगमनं, उदकपूर्णदृतिसमानक्षोभस्पर्शनं च भवति"।

अजातोदकोदर के लक्षण—पेट सूजन रहित लाली लिये हुए अधिक भारी न हो, गुड़गुड़ शब्द होता हो, ऊपर शिराओं का जाल चमकता हो, अपानवायु और मल नाभि को जकड़कर वेग करके लीन हो जाता हो, हृदय, वंक्षण, कमर, नाभि और गुदा में दर्द हो, अपानवायु जोर से निकलता हो, अग्नि अत्यन्त मन्द न हो, मुख का स्वाद बिगड़ा हो, मूत्र-मल कम हो।

जातोदकोदर के लक्षण—कुक्षि अत्यन्त बढ़ गई हो, शिराएँ छिप गई हों, पेट छूने से भरी हुई मशक के समान क्षुभित होता हो।

प्राय: सब प्रकार के उदररोग आरम्भ से ही कष्टसाध्य होते हैं। रोगी बलवान् हो, रोग नया हो और अजातोदक (पानी न आया) हो तो यत्नसाध्य होता है। २५।

बद्धगुद, जातोदक और छिद्रान्त्र प्रायः एक पक्ष के अनन्तर रोगी की मृत्यु के कारण हो जाते हैं। २६।

साध्यासाध्य की विशेष अवस्था

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥२७॥
पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम्।
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥२८॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उदरनिदानं समाप्तम् ॥ ३५ ॥

आँखों के समीप शोथ हो गया हो, लग टेढ़ा हो गया हो, त्वचा पतली और गीली रहती हो, बल, रुधिर, मांस और जठराग्नि क्षीण हो गई हो, पार्श्वपीड़ा, अन्नविद्वेष, शोथ और अतीसार भी हो, विरेचन कराने पर भी पेट फूला हो, तो असाध्य समझना चाहिए। उस रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। २७-२८।

शोथनिदान

शोथ के निदान

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःशिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ १ ॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः।
सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २ ॥
दोषः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि।

दुष्ट वायु जब दूषित रुधिर, पित्त और कफ को बाह्य शिराओं में ले जाता है, तब उनके कारण वायु की गति रुक जाती है तो वह मांस और त्वचा में ठहर जाता है। दोषों के समुदाय से जिस स्थान पर वायु रुकता है वह स्थान ऊँचा और कठोर हो जाता है, उसे शोथ कहते हैं। विशेष कारणों से और रूप के भेद से शोथ नव प्रकार के होते हैं—वात से, पित्त से, कफ से, वात-पित्त से, पित्त-कफ से, वात-कफ से, तीनों दोषों से, चोट लगने से और विष से। १-२।

टिप्पणी—'त्वङ् मांससंश्रयम्' पद से इस शोथ को व्रणशोथ से अलग समझना चाहिए क्योंकि; व्रणशोथ त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ और मर्म इन आठ स्थानों में होता है।

शोथ के पूर्वरूप

तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

शोथ होने के पहले नेत्र आदि में दाह होता है, शिराओं में तनाव की सी पीड़ा होती है और देह में भारीपन होता है। ३।

शोथ के निदान

शुद्ध्यामयाभुक्तकृशाबलानां
क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा।
दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्ट-
गरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥
अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धि-
र्मर्म्मोपघातो विषमा प्रसूतिः।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च
निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

वमन, विरेचन आदि शोधन से, ज्वर आदि रोगों से तथा भोजन न करने से, कृश और निर्बल मनुष्यों को खारी, खट्टे, तीक्ष्ण,

उष्ण और भारी पदार्थ खाने से, दही खाने से, आमरस (कच्चे भोजन) से, मिट्टी खाने से, निषिद्ध शाक और परस्पर विरोधी पदार्थ खाने से, दूषित अन्न और संयोगज विष मिला हुआ अन्न खाने से, बवासीर से, परिश्रम न करने से, शोधन योग्य दोषों को शुद्ध न करने से, मर्म स्थानों में चोट लगने से और कच्चा गर्भपात होने से शोथ हो जाता है। वमन आदि का मिथ्यायोग भी शोथ का कारण है। ४-५।

शोथ के सामान्य लक्षण

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं
सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च
सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

शोथ में भारीपन और उँचाई अनियमित रूप में होती है, दाह, नसों का पतला होना, रोमांच और विवर्णता, ये शोथ के सामान्य लक्षण हैं। ६।

वातशोथ के लक्षण

चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोऽसितः
सुषुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो
दिवाबली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥

वात के कारण जो शोथ हो जाता है वह चंचल होता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाता है, त्वचा पतली हो जाती है, शोथ कठोर, लाल या काला होता है, स्पर्श का ज्ञान नहीं होता, रोमांच और पीड़ा होती है, कभी-कभी विना औषध के ही शान्त हो जाता है, दबाने से दूसरी जगह ऊँचा हो जाता है और दिन में बढ़ता है। ७।

पैत्तिक शोथ के लक्षण

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्
भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
स उष्यते स्पृष्टरुगक्षिरागकृत्
स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

पित्त का शोथ कोमल, गन्धयुक्त, काला, पीला या लाल होता है। भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास, मद और दाह ये उपद्रव होते हैं, स्पर्श से पीड़ा होती है, आँखें लाल हो जाती हैं, दाह और पाक अत्यन्त होता है। ८।

कफज शोथ के लक्षण

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः
प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ।
स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो
न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥

शोथ भारी, स्थिर और पीले रंग का हो, अरुचि, लार बहना, निद्रा, वमन, और अग्निमान्द्य ये उपद्रव हों, शोथ के बढ़ने और शान्त होने में अधिक समय लगे, दबाने से ऊँचा न हो और रात्रि में शोथ की वृद्धि हो तो उसे कफात्मक शोथ समझे। ९।

त्रिदोषज शोथ के लक्षण

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद् द्विदोषजः ।
सर्वाकृतिःसन्निपाताच्छोथोव्यामिश्रलक्षणः ॥१०॥

दो दोषों के संसर्ग से जो शोथ होता है उसमें दो दोषों के लक्षण मिलते हैं और तीनों दोषों के संसर्ग से जो शोथ होता है उसकी आकृति में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। १०।

अभिघातज शोथ के लक्षण

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥१२॥

शस्त्र आदि से चोट लगने या घाव होने पर जो शोथ होता है, शीतल वायु से अथवा समुद्र की वायु से, भिलावें के रस या कौंच की फली के स्पर्श अथवा जलशूक से जो शोथ होता है उसमें जलन बहुत होती है, रंग लाल होता है, शोथ फैलता जाता है। उसे अभिघातज शोथ कहते हैं । उस में प्रायः पित्तशोथ के लक्षण होते हैं। ११—१२।

विषज शोथ के लक्षण

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ।
दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् ।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ।

देह पर विषैले जीवों (सर्प आदि) के चढ़ जाने अथवा उनके मूतने से अथवा विषहीन जीवों के दाँत, दाढ़ या नख अथवा विषैले जीवों का मल-मूत्र आदि जिस वस्त्र में लगा हो उस वस्त्र के पहनने से, विषैले वृक्ष की वायु लगने से और कृत्रिम विष शरीर में लगने से विषज़ शोथ होता है। यह शोथ कोमल, एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलनेवाला, अवलम्बी, (नीचे को जानेवाला) शीघ्र उत्पन्न होनेवाला तथा दाह और पीड़ा करनेवाला होता है। १३-१४।

किस स्थान में स्थित दोष कहाँ शोथ करता है –

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ॥१५॥
पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः ।
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ १६ ॥

आमाशय में स्थित दोष शरीर के ऊर्ध्व भाग में, पक्वाशय में स्थित दोष शरीर के मध्य भाग में तथा मलाशय में स्थित दोष अधोभाग में शोथ करते हैं। सम्पूर्ण शरीर में प्राप्त दोष यदि कुपित होते हैं तो देह भर में शोथ होता है। १५-१६।

साध्यासाध्य शोथ

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः ।
अर्धाङ्गे रिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥
श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ।
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति श्वयथुं तं विवर्जयेत् ॥ १८ ॥
अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं च मुखजो गुह्यजो द्वयम् ।
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥१९॥
विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितं च
तथा गले मर्मणि संश्रितं च ।
स्थूलः खरश्चापि भवेद्विवर्ज्यो
यश्चापि बालस्थविराबलानाम् ॥ २० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शोथनिदानं समाप्तम्। ३६।

शरीर के मध्य भाग (छाती और पक्वाशय के बीच) में और सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न शोथ कष्टसाध्य होता है। आधे अङ्ग में जो शोथ हो और ऊपर को चढ़ता हो वह असाध्य होता है (यह

पुरुषों के लिए कहा है, स्त्रियों के लिए नहीं। स्त्रियों को ऊपर के आधे अंग में शोथ हो और नीचे को उतरता हो, वह असाध्य होता है)। जिस शोथ में श्वास, खाँसी. प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर और अन्न में अरुचि, ये उपद्रव हों, उसे असाध्य समझे। उसको चिकित्सा न करनी चाहिए। पुरुष के पाँव में शोथ हो और अन्य किसी रोग के कारण न हुआ हो, शोथ ही प्रधान रोग हो, और ऊपर को चढ़ता हुआ मुख तक जाय, वह शोथ उस पुरुष को मार डालता है। वैसे ही स्त्री के मुख में शोथ अपने ही कारणों से हुआ हो और नीचे को उतरता हुआ पाँव तक जाय तो वह भी असाध्य होता है। मूत्राशय में उत्पन्न शोथ स्त्री-पुरुष दोनों को असाध्य होता है। शोथ नया और उपद्रव रहित हो तो साध्य और उपर्युक्त सब शोथ असाध्य होते हैं। कोख और पेट में भी शोथ असाध्य होता है। उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। गले में और मर्म-स्थानों (हृदय और मूत्राशय आदि स्थानों) में भी शोथ असाध्य होता है। जो शोथ स्थूल और खुरदरा हो वह भी असाध्य है। बालक, वृद्ध और निर्बल मनुष्यों का भी शोथ असाध्य होता है। १७-२०।

वृद्धिनिदान

वृद्धि के निदान

वृद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ।
मुष्कौवङ्क्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः ॥१॥
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोषयोः ।
दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिःसप्तधा गदः ॥ २ ॥
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ।

कुपित हुआ शूल और शोथ करनेवाला अधोगामी वायु अंडकोषों में प्राप्त होकर संचार करता हुआ वंक्षण (जाँघ और लिंग की

सन्धि) में, और वंक्षण से अंडकोषवाहिनी धमनियों में जाकर उनको दूषित करके अंडकोष की वृद्धि करता है। अंडकोष-वृद्धि सात प्रकार की होती है—वात से, कफ से, रुधिर से, मूत्र से और अंत्र से। मूत्र-वृद्धि और अंत्र-वृद्धि दोनों ही कुपित वायु के कारण ही होती है। केवल इनके निदान में ही भेद है। १-२।

वातज आदि भेद से वृद्धि के लक्षण

वातज वृद्धि के लक्षण

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥

पित्तज वृद्धि के लक्षण

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ।

कफज वृद्धि के लक्षण

कफाच्छीतोगुरुःस्निग्धःकण्डूमान् कठिनोऽल्परुक् ॥

रक्तज वृद्धि के लक्षण

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ।

मेदज वृद्धि के लक्षण

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ५ ॥

मूत्रज वृद्धि के लक्षण

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ।
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत् क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ॥६॥
मूत्रकृच्छ्रमधः स्याच्च चालयन् फलकोषयोः ।

वात से जो अंडकोष-वृद्धि होती है उसमें अंडकोष का स्पर्श वायु से भरी हुई मशक के समान मालूम होता है, रूक्ष होता है और विना कारण पीड़ा होती है। पित्त से हुई वृद्धि में अंडकोष पके गूलर के फल के समान होता है। दाह, ऊष्मा और पाक होता है। कफ से उत्पन्न वृद्धि में अंडकोष शीतल, भारी, चिकना

और कठोर होता है, थोड़ी पीड़ा और खुजली होती है। रुधिर से हुई वृद्धि में पित्तवृद्धि के लक्षण होते और काले फोड़े निकलते हैं। मेद के कारण जो वृद्धि होती है उसमें कफ की वृद्धि के समान लक्षण होते हैं। अंडकोष कोमल और रंग ताल-फल के समान होता है। जिसे मूत्र धारण करने का स्वभाव पड़ जाता है उसे मूत्रज वृद्धि हो जाती है। इसमें अंडकोष कोमल होते हैं, पीड़ा होती है और चलते समय पानी से भरी हुई मशक के समान हिलते हैं। मूत्रकृच्छ्र के समान पीड़ा होती है। दोनों अंडकोष चलायमान होते हैं। ३-६।

अन्त्रवृद्धि के निदान

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ ७ ॥
धारणे रणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः।
क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ॥८॥

अन्त्रवृद्धि की संप्राप्ति

पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।
कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥९॥

अन्त्रवृद्धि के लक्षण

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धि-
माध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान् प्रयाति
प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ १० ॥
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने वृद्धिनिदानं समाप्तम्। ३७।

वायु को प्रकुपित करनेवाले आहार करने से, शीतल जल में प्रवेश करने से, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से, मल-मूत्र आदि के वेग न होने पर उनको निकालने का उद्योग करने से, भारी बोझ उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, अंगों की विषम चेष्टा करने से अथवा बलवान् से युद्ध, दृढ़ धनुष को खींचना आदि वायु को कुपित करनेवाले अन्य कारणों से प्रकुपित वायु छोटी-छोटी आँतों के स्थान को दूषित करके आँतों को उनके स्थान से नीचे ले जाता है और वंक्षण की सन्धि में ग्रन्थि के समान शोथ कर देता है। उसकी चिकित्सा यदि नहीं की जाती तो कुछ दिनों में यह शोथ अंडकोष में हो जाता है, इसे अन्त्र-वृद्धि कहते हैं। इसमें पेट फूलता है, अंडकोष में पीड़ा होती है, अंग जकड़ जाते हैं। दबाने से यह वृद्धि शब्द के साथ भीतर को बैठ जाती है और छोड़ने से फिर वैसे ही फूल जाती है। अन्त्र-वृद्धि असाध्य होती है। इसके लक्षण वातवृद्धि के समान होते हैं। ८-१०।

टिप्पणी—अण्डकोषों में आँत उतरने पर ही असाध्य होती है वैसे याप्य है। अन्य ग्रन्थों में ब्रध्न (बद) के लक्षण भी लिखे हैं। यथा—अत्यन्त अभिष्यन्दी, भारी अन्न सेवन करने से नीचे गये हुए कुपित दोष वंक्षणों की संधि में ग्रन्थि के समान सूजन उत्पन्न करते हैं। इसमें ज्वर और शरीर में पीड़ा आदि विकार भी होते हैं।

गलगण्डगण्डमालाऽपचीग्रन्थ्यर्बुदनिदान

गलगंड का स्वरूप

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।
महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत्॥१॥

गले में अंडकोष के समान दृढ़ शोथ लटकता हो, वह शोथ चाहे बड़ा हो या छोटा, उसे गलगंड कहते हैं। १।

गलगंड की संप्राप्ति

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो
मन्ये च संश्रित्य तथैव मेदः।

कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः
समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गले में वात, कफ अथवा मेद दूषित होकर मन्या नाड़ी में प्राप्त होकर गंड उत्पन्न करते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं। वात के प्रकोप से जो गंड होता है उसमें वायु के लक्षण, कफ से जो होता है उसमें कफ के लक्षण और मेद से जो होता है उसमें मेद के लक्षण प्रकट होते हैं। इसको गलगंड कहते हैं। २।

वातज गलगंड

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः
श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको
यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तो-
र्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ।

वातज गलगंड में सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, उसके ऊपर काली नसें दिखाई देती हैं, गंड काले या लाल रंग का और कठोर होता है, धीरे धीरे देर में बढ़ता है, पकता नहीं, कभी अकस्मात् पक भी जाता है। रोगी के मुख में विरसता रहती है, उसका तालु और गला सूखता है। ३।

कफज गलगंड

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः
शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥
चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा
प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ।

माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तो-
र्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफज गलगंड का रंग देह के समान ही होता है। वह स्थिर, भारी, शीतल और स्थूल होता है, खुजली बहुत होती है, देर में बढ़ता और देर में पकता है, पकने पर कुछ पीड़ा होती है। रोगी को मुँह का स्वाद मीठा मालूम होता है, तालु और गले में कफ लिपा रहता है। ५।

मेदोज गलगण्ड

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो
मेदोभवः कण्डुयुतोऽल्परुक् च।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो
देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तो-
र्गलेऽनु शब्दं कुरुते च नित्यम्।

मेदोज गलगंड चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण और दुर्गन्धयुक्त होता है। खुजली और थोड़ी पीड़ा होती है। वह लौकी के समान लम्बा, अल्पमूल तथा देह के अनुरूप बढ़ता और क्षीण होता है। रोगी के मुँह पर चिकनापन और गले में हमेशा शब्द हुआ करता है। ६।

गलगण्ड की असाध्यता

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं
संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ ७ ॥
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं
भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेच्च।

रोगी कष्ट के साथ श्वास लेता हो, सम्पूर्ण शरीर कोमल हो

गाय हो, रोग एक वर्ष से अधिक का हो गया हो, भोजन में रुचि न हो, देह क्षीण हो गई हो और स्वर बैठ गया हो, तो गलगण्ड को असाध्य समझना चाहिए। ऐसे रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। ७।

गण्डमाला के निदान

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः
कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु ॥ ८ ॥
मेदःकफाभ्यां[1] चिरमन्दपाकैः
स्याद्गण्डमाला[2] बहुभिश्च गण्डैः।

कोख में, कंधो में, मन्या में (गले के पीछे), गले में अथवा मोटी जाँघ की सन्धि में छोटे बेर, बड़े बेर या आमले के समान मेद और कफ के विकार से बहुत-से गण्ड निकलते हैं, उनको गण्डमाला कहते हैं। ये बहुत दिनों में धीरे-धीरे पकते हैं। ८।

अपची के निदान

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः
स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ॥ ९ ॥
कालानुबन्धं चिरमादधाति
सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।

---

१. मेदःकफौ प्राधान्येनोक्तौ; तेन वातपित्तसंबन्धोऽप्यत्र द्रष्टव्यः। यदाह भोजः—"वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समान्वितम्। जङ्घयोः कण्डराः प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून् ॥ कुर्वन्ति ग्रथितांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः। तान् दोषानूर्ध्वगो वक्षःकक्षमन्यागलाश्रितः ॥ नानाप्रकारान् कुरुते ग्रन्थीन् सा त्वपची मता। तां तु मालाकृतिं विद्यात्कण्ठहृद्धनुसन्धिषु ॥ गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम्।"—इति।

२. मालातुल्यगण्डयोगाद्गण्डमाला। गलमात्र एव गण्डमाला चरके पठिता। यथा—"मेदःकफाच्छोणितसंचयोत्थो गलस्य मध्ये गलगण्ड एकः। स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः···।"

साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूल-
कासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ १० ॥

वे ग्रन्थियाँ कुछ पकती हैं, कुछ बहती हैं, कुछ नष्ट हो जाती हैं और दूसरी फिर पैदा होती हैं। वे बहुत दिनों में अच्छी होती हैं। विद्वान् वैद्य इनको अपची कहते हैं। ये साध्य होती हैं, किन्तु यदि पीनस, पार्श्व-शूल, खाँसी, ज्वर और वमन, ये उपद्रव हों तो असाध्य समझना चाहिए। (गंडमाला के आरंभिक दोष और दूष्य से ही इनकी उत्पत्ति होती है, पर मालारूप नहीं होती) । ६-१० ।

ग्रन्थि के निदान

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः
संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं च शोथं
कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ ११ ॥

बढ़े हुए वातादि दोष मांस, रुधिर, मेद और शिराओं को दूषित करके गोल, ऊँचा, कठोर, गाँठ के समान शोथ कर देते हैं। उस शोथ को ग्रन्थि कहते हैं। ११ ।

वातज ग्रन्थि

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च
प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च
भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ १२ ॥

वात की ग्रन्थि में ऊपर का चर्म खिंचा हुआ (तना हुआ) मालूम होता है, छेदने की-सी अथवा सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, ग्रन्थि मानों गिरी पड़ती है, मथने की-सी पीड़ा होती है,

फटने की-सी पीड़ा होती है, रंग काला, ग्रन्थि कोमल और बस्ति के समान चौड़ी होती है। फूटने पर स्वच्छ रुधिर निकलता है। १२।

पित्तज ग्रन्थि

दन्दह्यते धूप्यति चूश्च्यते च
पापच्यते प्रज्वलतीव चापि।
रक्तः सपीतोऽप्यथवाऽपि पित्ता-
द्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ १३ ॥

पित्त की ग्रन्थि होती है तो शरीर भर में अत्यन्त दाह और अन्तर्दाह होता है, छेदने की-सी पीड़ा होती है, ग्रन्थि अत्यन्त पकती है, अग्नि से जलने के समान कष्ट होता है, ग्रन्थि का रंग लाल या पीला होता है और फूटने पर गर्म रुधिर बहुत निकलता है। १३।

कफज ग्रन्थि

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः
पाषाणवत् संहननोपपन्नः।
चिराभिवृद्धश्च कफप्रकोपा-
द्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ १४ ॥

कफ की ग्रन्थि शीतल, देह के समान वर्णवाली, पत्थर के समान कठोर, थोड़ी पीड़ावाली होती है, इसमें खुजली बहुत होती है, यह देर से बढ़ती है, फूटने पर गाढ़ा सफेद पीव निकलता है। १४।

मेदोज ग्रन्थि

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः
स्निग्धो महान् कन्डुयुतोऽरुजश्च।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने
पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ १५ ॥

मेद की ग्रन्थि शरीर की वृद्धि के साथ बढ़ती और शरीर की क्षीणता के साथ क्षीण होती है, चिकनी और बहुत बड़ी होती है, इसमें खुजली होती है, पीड़ा नहीं होती। फूटने पर तिल की खली अथवा घी के समान चिकना मेद निकलता है। १५।

शिराज ग्रन्थि

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तै-
राक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम्।
संकुच्य संपिण्ड्य विशोष्य चापि
ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम्॥ १६॥
ग्रन्थिः शिराजः सतु कृच्छ्रसाध्यो
भवेद्यदि स्यात् सरुजश्चलश्च।
स चारुजश्चात्यचलो महांश्च
मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः॥ १७॥

बहुत व्यायाम करने से, अथवा बलवान् के साथ युद्ध आदि करने से वायु कुपित होकर शिराओं के समूह को चलायमान करके, संकुचित करके, समेटकर अथवा सुखाकर शीघ्र ही ऊँची और गोल ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है। यह शिराओं की ग्रन्थि कष्टसाध्य होती है। इसमें पीड़ा होती है, यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलती रहती है। यदि पीड़ा न हो और ग्रन्थि बड़ी, निश्चल तथा मर्मस्थान में हो तो असाध्य होती है, उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। १६-१७।

अर्बुद के निदान

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः
संमूर्च्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य।

वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्त-
मनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ १८ ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं
तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ।
वातेन पित्तेन कफेन चापि
रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥ १९ ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि
ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ।

वातादि दोष शरीर के किसी अंग में कुपित होकर मांस और रुधिर को दूषित करके शोथ कर देते हैं। वह शोथ गोल, स्थिर और बड़ा विशाल होता है, देर में बढ़ता है, पकता नहीं। पीड़ा कम होती है और बहुत भीतर से उत्पन्न होता है। चिकित्सा-शास्त्र के विद्वान् इसे अर्बुद कहते हैं। अर्बुद छः प्रकार के होते हैं–वात से, पित्त से, कफ से, रुधिर से, मांस से और मेद से। वात, पित्त, कफ और मेद से जो अर्बुद होते हैं उनके लक्षण उनकी ग्रन्थि के ही समान होते हैं। रुधिर और मांस के विकार से उत्पन्न अर्बुद के लक्षण आगे कहते हैं। १८-१९।

रक्तार्बुद के निदान

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च
संकुच्य संपिण्ड्य ततस्त्वपाकम् ॥ २० ॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं
मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धम् ।
करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृत्ति-
मसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ॥ २१ ॥

रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्
पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ।

वातादि दोष प्रकुपित होकर रुधिर और शिराओं को संकुचित तथा सम्पिण्डित (अच्छी तरह से पिंडी के समान गोल) करके शोथ उत्पन्न कर देते हैं । वह मांसपिंड बहुत शीघ्र बढ़ता है, किन्तु पकता नहीं । उसके समीप मांस के अंकुर बहुत से निकलते हैं, उसमें कुछ स्राव होता होता है, थोड़ा-थोड़ा रुधिर निरन्तर निकला करता है । (रुधिर शिराओं से निकलता है, क्योंकि ऊपर कह चुके हैं कि यह पकता नहीं) इसे रक्तार्बुद कहते हैं । यह असाध्य होता है । इसमें रुधिर का क्षय होता है, इस कारण रक्तार्बुद का रोगी पाण्डुवर्ण हो जाता है । २०-२१ ।

मांसार्बुद के निदान

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे
मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥ २२ ॥
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्ण-
मपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ।
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढ-
मेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २३ ॥
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं,

जिस अंग में घूँसे आदि का प्रहार लगता है उस स्थान का मांस दूषित होकर शोथ हो जाता है । उसमें पीड़ा नहीं होती, वह चिकना होता है, देह के समान ही उसका वर्ण होता है, पत्थर के समान कठोर और स्थिर होता है, पकता नहीं । चोट आदि लगने से जिसका मांस दूषित हो जाता है अथवा जो मनुष्य मांस बहुत खाता है उसे यह शोथ होता है । इसे मांसार्बुद कहते हैं । यह भी असाध्य होता है । २२-२३ ।

अर्बुद की असाध्यता

साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च ।
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं
स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २४ ॥

जो अर्बुद स्रावयुक्त हो, मर्मस्थान में हो, नासिका आदि स्रोतों में हो, अथवा स्थिर हो वह चाहे साध्य भी हो, किन्तु उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए (वह असाध्य ही है)। २४।

अध्यर्बुद की असाध्यता

यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते
ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ।
तद्द्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा
द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २५ ॥

जिस स्थान पर एक बार अर्बुद हो चुका हो उसी स्थान पर दुबारा फिर अर्बुद निकले अथवा दो अर्बुद एक साथ निकलें या क्रम से एक के पीछे दूसरा निकले, इनको अध्यर्बुद कहते हैं। ये अर्बुद असाध्य होते हैं। २५।

टिप्पणी—द्व्यर्बुद भी इसे कहते हैं। एक प्रकार से ये दोनों पर्याय हैं। दूसरे प्रकार से एक के स्थान पर दूसरा निकले वह अध्यर्बुद और एक साथ या क्रमशः द्वन्द्वज होता है वह द्व्यर्बुद होता है।

अर्बुद के न पकने के कारण

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वा-
न्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।

---

१. तथा च भोजः—"अर्बुदे त्वर्बुदं जातं द्वन्द्वजं चानुजं च यत् । द्विरर्बुदमिति ज्ञेयं तच्चासाध्यं विनिर्दिशेत्"—इति ।

दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां
सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने गलगण्डगण्डमालापची-ग्रन्थ्यर्बुदनिदानं समाप्तम् ॥ ३८ ॥

सब प्रकार के अर्बुद स्वभावतः पकते नहीं हैं । न पकने के कई कारण हैं, कफ और मेद की अधिकता से, दोष की स्थिरता से और ग्रथित होने से तथा व्याधि के स्वभाव से किसी प्रकार का भी अर्बुद नहीं पकता । २६ ।

श्लीपदनिदान

श्लीपद के निदान और संप्राप्ति

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः
शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात् करकर्णनेत्र-
शिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

ज्वर और अत्यन्त पीड़ा के साथ जाँघ और लिंगेन्द्रिय की सन्धि में शोथ हो जाता है, वह क्रम से धीरे-धीरे पैर में उतर जाता है, इसे श्लीपद कहते हैं । कुछ वैद्यों ने हाथ, कान, आँख, लिंगेन्द्रिय, होठ और नाक में भी श्लीपद की उत्पत्ति कही है । १ ।

वातज श्लीपद के लक्षण

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

पित्तज श्लीपद के लक्षण

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ।

श्लेष्मज श्लीपद के लक्षण

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥३॥

वातज श्लीपद काला और रूक्ष होता है, त्वचा फटती है, तीव्र वेदना होती है, अकारण पीड़ा हुआ करती है और प्रायः ज्वर आता है। पित्तज श्लीपद कुछ पीले रंग का और कोमल होता है, रोगी को दाह और ज्वर होता है। कफज श्लीपद चिकना, श्वेत वा पाण्डुवर्ण, भारी और स्थिर होता है । २-३ ।

टिप्पणी—सामान्यतया श्लीपद में शोथ पैरों से बढ़कर गालों तक पहुँचता है, सूजन इतनी बढ़ती है कि पैर हाथी के पैर के समान हो जाता है। दुर्गन्धयुक्त स्राव भी होने लगता है। हाथ आदि अन्य अंगों में बहुत कम देखा जाता है।

श्लीपद की असाध्यता

वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरुपचीयते ।
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

जो श्लीपद बामी (सर्पों के रहने का स्थान) के समान बहुशिखराकार हो, बहुत-सी ग्रन्थियाँ निकली हों, शोथ बहुत बड़ा हो और एक वर्ष से अधिक का पुराना हो गया हो, उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। वह असाध्य होता है। ४।

श्लीपद में कफ का प्राधान्य

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफं विना ॥ ५ ॥

वातज, पित्तज और कफज, तीनों श्लीपद कफ की अधिकता से ही होते हैं, क्योंकि गुरुता और महत्ता कफ के बिना नहीं होती। ५।

विशेषकर अनूपदेश में श्लीपद होता है—

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥

जिन देशों में हमेशा पानी भरा रहता है और जो देश सब ऋतुओं में शीतल रहते हैं, वहाँ के रहनेवाले मनुष्यों में श्लीपदरोग विशेषकर होता है। ६।

अन्य असाध्य लक्षण

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं
पुंसः प्रकृत्याऽपि कफात्मकस्य।
सास्त्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं
सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने श्लीपदनिदानं
समाप्तम् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य कफ बढ़ानेवाले आहार-विहार करता हो, स्वभावतः कफात्मक प्रकृति का हो, उसका श्लीपद यदि स्रावयुक्त हो और जिस दोष के कारण श्लीपद की उत्पत्ति हुई हो उसके सब लक्षण बहुत बढ़े हुए प्रकट हों, खुजली बहुत हो और कफयुक्त हो, उसकी औषध न करनी चाहिए। वह असाध्य होता है। ७।

विद्रधिनिदान

विद्रधि के निदान और लक्षण

त्वग्रक्तमांसमेदांसि संदूष्यास्थिसमाश्रिताः।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥१॥
महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथवाऽऽयतम्।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥२॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा।
षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ ३ ॥

हड्डियों में प्राप्त वातादि दोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद को दूषित करके धीरे-धीरे दारुण शोथ उत्पन्न कर देते हैं। वह शोथ बहुत ऊँचा, बड़ी जड़वाला, गोल अथवा लम्बा होता है, उसमें अत्यन्त पीड़ा होती है, उसे विद्रधि कहते हैं। वह छः प्रकार की होती है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षतज और रक्तज। इन छहों के लक्षण कहते हैं। १-३।

टिप्पणी—विद्रधि दो प्रकार की होती है। बाह्यविद्रधि—जो त्वचा, स्नायु और मांस में होनेवाली कण्डराओं के समान एवं पीड़ायुक्त होती है। दूसरी अन्तर्विद्रधि होती है

वातज विद्रधि के लक्षण

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः॥ ४॥

जो विद्रधि काली या कुछ लाल हो, कभी छोटी और कभी बड़ी हो जाय, उत्थान (उठना) और प्रपाक (पकना) अनेक प्रकार से हो (क्योंकि वायु के कार्य विषम होते हैं), ऐसी विद्रधि को वातज समझना चाहिए। ४।

पित्तज विद्रधि के लक्षण

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः॥ ५॥

जो विद्रधि पके गूलर के समान लाल अथवा काली हो, उत्पन्न होते ही ज्वर और दाह होने लगे, शीघ्रता से बढ़े और पके, पकने के समय ज्वर और दाह अधिक हो, उसे पित्तज समझना चाहिए। ५।

कफज विद्रधि के लक्षण

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः॥ ६॥
तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः।

जो विद्रधि शराव (सकोरा) के समान हो, रंग कुछ पीला हो, शीतल, स्निग्ध और थोड़ी पीड़ावाली हो। जिसका उत्थान और प्रपाक बहुत दिनों में हो, उसे कफज समझना चाहिए। ६।

पकने पर वातज विद्रधि में पतला स्राव होता है। पित्तज विद्रधि में पीला और कफज विद्रधि में सफेद स्राव होता है।

त्रिदोषज विद्रधि के लक्षण

नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान् ॥ ७ ॥
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ।

सन्निपातज विद्रधि में ऊपर कहे हुए तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। लाल, पीला और काला कई प्रकार के रंग होते हैं। पीड़ा भी अनेक प्रकार की होती है। सुई चुभाने की सी पीड़ा, दाह और खुजली आदि होती है। स्राव भी पतला, पीला और सफेद होता है। घाटाल (नोक अत्यन्त ऊँची, उठी हुई) बड़ी, छोटी, ऊँची, नीची, विषम आकार की होती है। विषम पाक भी होता है, कोई देर में पकती है, कोई शीघ्र पकती है। कोई ऊपर से और कोई भीतर से अनियमित समय में पकती है। ७।

अभिघातज विद्रधि की संप्राप्ति

तस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः ॥ ८ ॥
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥९॥
आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः ।

काष्ठ या पाषाण आदि से चोट लगने पर या शस्त्र आदि से घाव होने पर जो मनुष्य अपथ्य आहार-विहार करता है तो उसके वायु कुपित होकर व्रण की गर्मी को सर्वत्र फैलाकर रक्तसहित पित्त को कुपित कर देता है। उस मनुष्य को ज्वर, प्यास और दाह होता है। यह आगन्तुज या क्षतज विद्रधि है। इसमें पित्त-विद्रधि के लक्षण होते हैं। ८-९।

रक्तज विद्रधि के लक्षण

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ॥ १० ॥
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ।

जिस विद्रधि के आसपास काली फुंसिया निकलें, विद्रधि का रंग भी कुछ काला हो, अत्यन्त दाह और अत्यन्त पीड़ा हो, उसे रक्तज विद्रधि कहते हैं। उसके भी लक्षण पित्त-विद्रधि के समान होते हैं। १०।

टिप्पणी—भोज आदि आचार्य रक्तज विद्रधि को न मानकर 'मक्कल' नामक आर्तव रक्त मे उत्पन्न होनेवाली को रक्तज विद्रधि के नाम से मानते हैं किंतु आचार्य सुश्रुत धातुरूप रक्तज तथा मक्कलसंज्ञक आर्त्तव-रूप रक्तज दोनों ही प्रकार की स्वीकार करके रक्तज में ही सम्मिलित करके एक ही मानते हैं।

अभ्यन्तर विद्रधि की संप्राप्ति

पृथक्संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥११॥
वल्मीकवत् समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ।

अन्तर्विद्रधि के स्थान

गुदेबस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौव ङ्क्षणयोस्तथा ॥१२॥
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि वाऽप्यथ ।
तेषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १३ ॥

लक्षण

अधिष्ठानविशेषेण लिङ्गं शृणु विशेषतः ।
गुदे वातनिरोधश्च बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १४ ॥
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् ।
कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥ १५ ॥
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् ।

सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते ।
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥१६॥

कुपित हुए वातादि दोष पृथक्-पृथक् अथवा सब मिलकर देह के आभ्यन्तर भाग में गुल्मरूप वामी के समान चारो ओर से उठी हुई ऊँची विद्रधि उत्पन्न कर देते हैं । गुदा में, मूत्राशय के मुख में, नाभि, कोख, जाँघों की सन्धि, वृक्क, प्लीहा, यकृत्, हृदय अथवा क्लोम में विद्रधि होती है । आभ्यन्तर विद्रधि के लक्षण भी बाह्य विद्रधि के समान होते हैं । स्थान-भेद से कुछ विशेष लक्षण होते हैं, सुनो । गुदा में विद्रधि होती है तो अपान वायु का अवरोध होता है । मूत्राशय में विद्रधि होती है तो मूत्र कष्ट के साथ थोड़ा-थोड़ा उतरता है । नाभि में विद्रधि होने से हिचकी आती है और पीड़ा के साथ पेट गुड़गुड़ाता है । कोख में विद्रधि होने से पेट में वायु का प्रकोप होता है । जाँघ और लिंगेन्द्रिय की सन्धि में विद्रधि होने से कमर और पीठ में पीड़ा होती है । वृक्क में विद्रधि होने से पार्श्व-संकोच और प्लीहा में विद्रधि होने से श्वास में रुकावट होती है । हृदय में विद्रधि होने से सब अंगों में तीव्र पीड़ा और खाँसी होती है । यकृत् में विद्रधि होने से श्वास और हिचकी आती है तथा क्लोम में विद्रधि होने से रोगी बार-बार बहुत पानी पीता है । ११-१६ ।

स्राव निकलने के मार्ग

नाभेरुपरिजाः पक्का यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः ।

नाभि के ऊपर की विद्रधि जब पकती है तो स्राव ऊर्ध्वमार्ग से अर्थात् मुख के द्वारा होता है और नाभि के नीचे की विद्रधि का स्राव अधोमार्ग अर्थात् गुदा से होता है । नाभि में उत्पन्न विद्रधि का स्राव दोनों मार्गों से होता है ।

साध्यासाध्य लक्षण

अधःस्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १७ ॥

हृन्नाभिबस्तितिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ।
जीवेत् कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ १८ ॥
साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः ।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १९ ॥

गुदा मार्ग से स्राव होने पर रोगी बच सकता है, किन्तु मुख से स्राव होने पर रोगी नहीं बचता। हृदय, नाभि और वस्ति को विद्रधि के अतिरिक्त अन्य स्थानों की विद्रधि में शस्त्र-क्रिया करने पर कदाचित् रोगी बच भी जाता है, किन्तु हृदय, नाभि और बस्ति की विद्रधि चाहे पककर फूटे और चाहे शस्त्र-क्रिया की जाय, रोगी नहीं बचता। इन मर्मस्थानों की विद्रधि असाध्य होती है। अब बाह्य विद्रधि की साध्यासाध्यता कहते हैं। छः प्रकार की बाह्य विद्रधि ऊपर कह आये हैं, उनमें सन्निपातज विद्रधि के अतिरिक्त पाँच प्रकार की विद्रधि साध्य होती हैं। सन्निपातज विद्रधि असाध्य होती है। इन विद्रधियों की अपक्वता, पक्वता और विदग्धता, व्रणशोथ के समान जाननी चाहिए। १७-१९।

टिप्पणी—आचार्य भोज विद्रधि का असाध्यत्व बतलाते हुए कहते हैं कि बस्ति में होनेवाली विद्रधि पकने पर ही असाध्य होती है।

उपद्रव

आध्मातं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विद्रधिनिदानं समाप्तम् ॥ ४० ॥

पेट फूले, मूत्र में रुकावट हो, वमन, हिचकी, प्यास, पीड़ा और श्वास हो, इन उपद्रवों से युक्त विद्रधि रोगी को मार डालती है। २०।

व्रणशोथनिदान

व्रणशोथ के निदान

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ।
षड्विधः स्यात् पृथक्सर्वरक्तागन्तुनिमित्तजः ॥१॥
शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः ।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वादिनिश्चये ॥ २ ॥

एक स्थान पर उत्पन्न शोथ व्रण का पूर्वरूप है। वह छः प्रकार का होता है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और आगन्तुज। शोथ के जो लक्षण पहले कह चुके हैं वही लक्षण इन शोथों में भी होते हैं। पक्व, अपक्व और पच्यमान का निश्चय करने के लिए विशेष लक्षण कहते हैं। १-२।

व्रणशोथ के लक्षण

विषमं पच्यते वातात् पित्तोत्थश्चाचिराच्चिरम् ।
कफजः पित्तवच्छोथो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

वातज व्रणशोथ में विषम पाक होता है अर्थात् कुछ भाग पकता है कुछ नहीं पकता, पित्तज शीघ्र पकता है, कफज देर में पकता है, रक्तज और आगन्तुज व्रणशोथ पित्तज के समान होते हैं। ३।

आमाशोथ के लक्षण

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ।
मन्दवेदनता चैतच्छोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

आम शोथ में थोड़ी उष्णता होती है, शोथ अल्प और कठोर होता है, शोथ का रंग त्वचा के ही समान होता है, पीड़ा कम होती है। ये लक्षण अपक्व शोथ के हैं। ४।

पच्यमान शोथ के लक्षण

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते ।
पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ५ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते ।
पीड्यते पाणिनेवान्तःसूचीभिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥
सोषाचोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावघट्यते ।
आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥७॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातबस्तिवत् ।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥८॥

जब शोथ पकने लगता है तब आग से जलने के समान व्यथा होती है, क्षार लगने के समान चुनचुनाहट होती है, चींटियों के काटने के समान पीड़ा होती है, छेदने के समान, शस्त्र से चीरने के समान, डंडे से मारने के समान, हाथ से दबाने के समान, भीतर सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है । किसी एक स्थान पर दाह होता है, आग के समीप रहने की सी जलन होती है, शोथ विवर्ण हो जाता है । ऐसा मालूम होता है मानो भीतर अँगुली से चलाया जा रहा है । बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा होती है । बैठने, सोने और किसी स्थान में भी शान्ति नहीं मिलती । शोथ की त्वचा वायुपूर्ण बस्ति के समान तन जाती है । ज्वर, प्यास और अरुचि, ये उपद्रव होते हैं । ५-८ ।

टिप्पणी—इन लक्षणों में से कई लक्षण स्थानिक होते है और कई सर्वाङ्गव्यापी या अन्य अङ्गों में होते हैं । इन लक्षणों से पता चलता है कि अब शोथ पच रहा है ।

पक्वशोथ के लक्षण

वेदनोपशमः शोथोऽलोहितोऽल्पो न चोन्नतः ।
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् ।
बस्ताविवाम्बुसंचारःस्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥१०॥

पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ।
भक्ताकाङ्क्षाभवेच्चैतच्छोथानां पक्वलक्षणम् ॥११॥

शोथ पकने पर पीड़ा शान्त हो जाता है, शोथ पीला पड़ जाता है, छोटा हो जाता है, ऊँचा नहीं रहता, त्वचा में सिकुड़न होने लगती है, सुई चुभाने की सी पीड़ा और बार-बार खुजली होती है। ज्वर आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं, शोथ कम हो जाता है, अंगुली से दबाने से दब जाता है, त्वचा कुछ फट जाती है । शोथ में अंगुली दबाने से पीव उस स्थान से हट जाता है जैसे पानी से भरी हुई मशक में अंगुली दबाने से पानी हट जाता है। एक स्थान पर दबाने से पीव दूसरे स्थान पर हट जाता है और वहाँ पीड़ा होती है। शोथ पकने पर खाने की इच्छा होती है। इन लक्षणों से शोथ पक गया समझना चाहिए। ९-११।

एक दोष से आरंभ शोथ में भी पाक के समय सब दोषों का सम्बन्ध होता है—

नर्तेऽनिलाद्रुङ् न विना च पित्तं
पाकः कफं चापि विना न पूयः ।
तस्माद्धि सर्वान् परिपाककाले
पचन्ति शोथांस्त्रय एव दोषाः ॥ १२ ॥

वायु के बिना पीड़ा नहीं होती, पित्त के विना पकता नहीं, कफ के बिना पीव नहीं होता, इसलिए सब शोथ पकने के समय तीनों ही दोषों से पकते हैं। १२।

पूय न निकलने के दोष

कक्षं समासाद्य यथैव वह्नि-
र्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य ।
तथैव पूयो ह्यविनिःसृतो हि
मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥ १३ ॥

आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्वं च यो भिषक् ।
जानीयात् स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥१४॥
यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यो वा पक्वमुपेक्षते ।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥१५॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने व्रणशोथनिदानं समाप्तम् ॥ ४१ ॥

जैसे वायु से प्रेरित अग्नि घास के ढेर को भस्म कर देता है वैसे पीब यदि शोथ में रह जाती है तो मांस, शिरा और स्नायु को जला देता है। १३ ।

जो वैद्य अपक्व, पच्यमान और अच्छे प्रकार पके हुए शोथ को पहचानता है वही वास्तविक वैद्य है। जो नहीं पहचानते वे तस्कर-वृत्ति हैं। (लोभवश चिकित्सा करते हैं)। जो वैद्य मूर्खता से कच्चे शोथ को चीर देता है और जो पके हुए की उपेक्षा करता है, उन दोनों अनिश्चितकारी वैद्यों को चाण्डाल के समान जानना चाहिए। १४-१५ ।

शारीरव्रणनिदान

व्रण के निदान

द्विधा व्रणः स विज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः ।
दोषजाद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

शरीर और आगन्तु भेद से व्रण दो प्रकार के होते हैं। इनमें शारीर व्रण वातादि दोषों के प्रकोप से और आगन्तुव्रण शस्त्र आदि के प्रहार से होता है। १ ।

वातज शारीर व्रण

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥

वातज व्रण निश्चल और कठोर होता है, धीरे-धीरे बहता है, पीड़ा बहुत होती है, जैसे कोई सुई से छेदता हो ऐसा जान पड़ता है, फड़कता है और रंग कुछ काला होता है। २।

पित्तज शारीर व्रण

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः॥३॥

पित्तज व्रण में प्यास, मोह, ज्वर, आर्द्रता, दाह, त्वचा का फटना और दुर्गन्धित स्राव होना, ये लक्षण होते हैं। ३।

कफज शारीर व्रण

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः॥ ४॥

कफज व्रण अत्यन्त पिच्छिल, भारी, चिकना निश्चल और कुछ पीला होता है। पीड़ा कम होती है। कुछ आर्द्र रहता है और देर में पकता है। ४।

रक्तज शारीरव्रण

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद् द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः।

रक्तज व्रण लाल होता है और रुधिर का ही स्राव होता है। वातादिकों में से किन्हीं दो के मिले हुए लक्षण मिलने से द्वन्द्वज और सब के मिले हुए लक्षण होने से त्रिदोषज व्रण होता है।

टिप्पणी—पृथक्-पृथक् दोषों के सम्बन्ध से, दो दोषों के सम्बन्ध से और तीनों दोषों के सम्बन्ध से रक्तज व्रण सात प्रकार के होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर शारीर व्रण के पन्द्रह भेद हुए। आतंक दर्पणकार और आचार्य सुश्रुत ने पन्द्रह भेद माने हैं। आतंकदर्पणकार के मतानुसार पन्द्रह भेद नीचे दिये हैं—वातज, पित्तज, कफज, संघातज, रक्तज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, ये आठ भेद हुए और रुधिर के सम्बन्ध से सात भेद होते हैं। वातरक्तज, पित्तरक्तज, कफरक्तज, वातपित्तरक्तज, वातकफरक्तज, पित्तकफरक्तज, और सन्निपातरक्तज, इस प्रकार पन्द्रह भेद हुए।

साध्यासाध्य लक्षण

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ ५ ॥
धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः ।
गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ ६ ॥
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

त्वचा और मांस से उत्पन्न, मर्मस्थानों के अतिरिक्त अन्य अंगों में उत्पन्न, उपद्रवरहित और नया व्रण हो तथा रोगी तरुण और बुद्धिमान् हो, हेमन्त या शिशिर ऋतु में व्रण हुआ हो तो साध्य होता है। इनमें से कुछ गुण हों और कुछ न हों तो कष्ट-साध्य, और उपद्रव बहुत हों तथा इन सब गुणों से विहीन हो तो असाध्य जानना चाहिए। ५-६।

दुष्ट व्रण के लक्षण

पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः ॥७॥
दुष्टो व्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ।

दुर्गन्धित पीव मिला हुआ सड़ा रुधिर निकलता हो, व्रण गहरा हो गया हो, पुराना हो गया हो, शुद्ध व्रण के लक्षणों से विपरीत लक्षण हों, अत्यन्त दुर्गन्ध हो, वर्ण, स्राव, वेदना और आकृति भी शुद्ध व्रण के विपरीत हो तो उसे दुष्ट व्रण समझना चाहिए। ७।

शुद्ध व्रण के लक्षण

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।८।
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धोव्रण इति स्मृतः ।

व्रण जिह्वातल के समान कांतिवाला, अत्यन्त कोमल, चिकना और स्निग्ध हो, थोड़ी पीड़ावाला हो, न बहुत गहरा और न ऊँचा हो, बहता भी न हो, ये शुद्ध व्रण के लक्षण हैं। ८।

रुह्यमाण व्रण के लक्षण

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ ९ ॥

स्थिराश्च पिडकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ।

व्रण के किनारों का रंग कबूतर के वर्ण के समान हो, व्रण में क्लेद न हो, स्थिर (व्रण फटा हुआ न) हो, व्रण में अंकुर से निकले हों तो समझना चाहिए कि वह भर रहा है । ९ ।

सम्यक्रूढ़ व्रण के लक्षण

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ १० ॥
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत् ।

जब व्रण का मार्ग भर गया हो, मांस ऊँचा न हो, सूजन हो, पीड़ा न हो, वह स्थान समतल हो, त्वचा के समान उसका वर्ण हो गया हो तब व्रण को अच्छी तरह भरा हुआ समझना चाहिए । १० ।

व्याधिविशेष से व्रण की कृच्छ्साध्यता

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥११॥
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ।
वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् ॥१२॥
आगन्तुजो व्रणः सिद्ध्येन्न सिद्ध्येद्दोषसंभवः ।

कुष्ठ रोगी का व्रण, मकड़ी आदि के विष से उत्पन्न हुआ व्रण, धातु के क्षीण होने से जिसका शरीर सूख गया हो उसका व्रण, मधुमेह के रोगी का व्रण और पहले जिस स्थान पर व्रण हो चुका हो उसी स्थान पर फिर उत्पन्न हुआ व्रण कष्टसाध्य होता है। जिस व्रण से वसा, मेद, मज्जा और मस्तुलुङ्ग (सिर के भीतर का गूदा) बहता हो, वह व्रण यदि शस्त्र आदि के प्रहार से हुआ हो तो कष्टसाध्य और दोषों के विकार से हुआ हो तो असाध्य होता है । ११–१२ ।

असाध्य गन्धविकृति

मद्यागुर्वाज्यसुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ॥ १३ ॥
सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ।

जिस व्रण में मदिरा, अगुरु, घी अथवा चमेली, कमल, चन्दन, या चम्पक के समान गन्ध हो अथवा अन्य किसी प्रकार की दिव्य गन्ध हो तो उसे असाध्य समझना चाहिए। मरणासन्न मनुष्यों के ही व्रण में ऐसी गन्ध होती है। १३।

व्रण के असाध्य लक्षण

ये च मर्मस्वसंभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः ॥ १४ ॥
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ।
दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवन्त्यन्तश्च शीतलाः ॥ १५ ॥
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ।
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ १६ ॥
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः ।
वर्जयेदपि तान् वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥१७॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शारीरव्रणनिदानं समाप्तम् ॥ ४२ ॥

जो व्रण मर्मस्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों हो, किन्तु पीड़ा बहुत अधिक हो (मर्मस्थान में होने पर तो पीड़ा अधिक होती ही है), भीतर बहुत जलन होती हो और बाहर से शीतल मालूम होता हो, अथवा भीतर शीतलता और बाहर दाह हो, रोगी का बल और मांस क्षीण हो गया हो, श्वास, खाँसी और अरुचि भी हो तो व्रण असाध्य समझना चाहिए। अथवा जो मर्मस्थान में व्रण हो तथा पीब और रुधिर का स्राव बहुत होता हो, वह भी असाध्य है। तथा सब प्रकार की क्रिया करने पर भी जो व्रण साध्य न हुए हों उनको भी अपना यश बचाता हुआ वैद्य त्याग दे। १४-१७।

सद्योव्रणनिदान

आगन्तुव्रण के निदान

नानाधारमुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥
छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ।
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

शस्त्रों की धार और मुख अनेक प्रकार के होते हैं, शरीर के अनेक अवयवों में उनके प्रहार से जो व्रण होते हैं, उनकी आकृति भी अनेक प्रकार की होती है। उनके भेद कहते हैं, सुनो—छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट, ये छः उनके भेद हैं। अब इनके लक्षण कहते हैं। १-२।

छिन्नव्रण के लक्षण

तिर्यक् छिन्नो ऋजुर्वाऽपि यो व्रणस्त्वायतो भवेत् ।
गात्रस्य पातनं तच्च[1] छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

व्रण शरीर के किसी अवयव में शस्त्र के प्रहार से हुआ हो, कोई अवयव कटकर अलग हो गया हो अथवा अलग न हुआ हो, आकर तिरछा या सीधा हो, व्रण दीर्घ हो उसे छिन्न कहते हैं। ३।

टिप्पणी—छिन्न व्रण धार से कटने पर ही होता है, उसकी नोक से नहीं होता।

भिन्नव्रण के लक्षण

शक्तिकुन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः ।
यत्किञ्चित् प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

शक्ति, भाला, बाण अथवा तलवार की नोक से अथवा दाँत या सींग से आशय में (आमाशय, पक्काशय आदि में) व्रण हो जाय, उसमें से उसी का स्राव हो अर्थात् मूत्राशय में व्रण हुआ

१. चकारादपातनं च ।

हो तो मूत्र का स्राव और रुधिराशय आदि में हुआ हो तो रुधिर आदि का स्राव हो। ये भिन्न व्रण के लक्षण हैं। ४।

टिप्पणी—भिन्न व्रण दो प्रकार से होता है। एक शस्त्र या सींग आदि की नोक से क्षत होने पर, दूसरे किसी आशय (मूत्राशय मलाशय आदि) के विद्ध होने पर। अन्यथा दूसरे प्रकार के व्रण बनते हैं।

कोष्ठ का निरूपण और कोष्ठ में हुए व्रण के लक्षण

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥
तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते।
मूत्रमार्गगुदास्तेभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥
मूर्च्छाश्वासस्तृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदस्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥
लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च।
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि।
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥
पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

आम का स्थान आमाशय, अग्नि का स्थान पच्यमानाशय (अग्न्याशय), मल का स्थान पक्वाशय, मूत्र का स्थान मूत्राशय, रुधिर का स्थान यकृत् और प्लीहा तथा हृदय, उण्डुक (मलाशय) और फुप्फुस, इनको कोष्ठ कहते हैं। कोष्ठ में भिन्न व्रण हो और कोष्ठ रुधिर से भर जाय तो ज्वर और दाह आदि उपद्रव होते हैं। मूत्राशय और पक्वाशय में व्रण

१. उण्डुकः—इत्थरसपाकमलवद्यः शोणितमलस्तज उण्डुकः, स चान्त्रदेशे व्यवस्थितः पुरीषाधानमिति।

होने से लिंगेन्द्रिय और गुदा से रुधिर निकलता है और आमाशय आदि में व्रण होने से मुख और नाक के द्वारा रुधिर निकलता है। मूर्च्छा, श्वास, प्यास, पेट का फूलना, अरुचि, मल-मूत्र और अपान वायु का अवरोध, पसीना बहुत निकलना, आँखों का लाल होना, मुख से लोहे की सी गन्ध आना, देह में दुर्गन्ध, हृदयशूल और पार्श्वशूल, ये उपद्रव होते हैं। स्थानभेद से कुछ विशेष उपद्रव होते हैं, उनको सुनो। आमाशय में रुधिर जाने से रुधिर का वमन होता है। पेट बहुत फूलता है, अत्यन्त पीड़ा होती है तथा पक्वाशय में रुधिर भर जाने से पीड़ा, देह में भारीपन और देह के अधोभाग में शीतलता होती है। ५-१०।

विद्ध के लक्षण

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना।
उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥११॥

सूक्ष्म अग्रभागवाले शल्य (सुई आदि) से जो घाव ऊपर कहे हुए आशयों को छोड़कर अन्य स्थान में हुआ हो और शल्य निकल गया हो अथवा न निकला हो, उस व्रण को विद्ध कहते हैं। ११।

टिप्पणी—विद्ध व्रण में चार विशेषताएँ होती हैं (१) आशयों के सिवा अन्य अङ्गों का विंधना, (२) बारीक नोकवाले शस्त्रों से (नोक से ही) विंधना, (३) विद्ध अंग का ऊँचा उठा होना, (४) या व्रण का मुख नीचा होना। इनके बिना व्रण विद्ध नहीं कहलाता। 'विद्धमुत्तुण्डितमनुत्तुण्डितं भिन्नं निर्भिन्नम्' इति यच्चतुष्प्रकारमभिहितं तत् सर्वं संगृहीतम्।

क्षत के लक्षण

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम्।
विषमं व्रणमङ्गे यत्तत् क्षतं त्वभिधीयते ॥ १२ ॥

जो व्रण न अति छिन्न हो और न अति भिन्न हो, छिन्न और भिन्न दोनों के लक्षण मिलते हों, व्रण विषम हो, उसे क्षत कहते हैं। १२।

पिच्चित के लक्षण

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत् पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥१३॥

प्रहार से अथवा किसी चीज से दब जाने से कोई अंग हड्डी सहित चिपटा हो गया हो, उस व्रण से मज्जा और रुधिर निकलता हो उसे पिच्चित (पिचा हुआ) कहते हैं । १३ ।

घृष्ट के लक्षण

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम् ।
दाहस्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

घिस जाने अथवा चोट लगने से जिस अंग की त्वचा निकल गई हो, दाह और स्राव होता हो, उसे घृष्ट (घिसा हुआ) कहते हैं । १४ ।

सशल्य व्रण के लक्षण

श्यावं सशोथं पिडकाचितं च
मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।
मृदून्नतं बुद्बुदतुल्यमांसं
व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १५ ॥

जो व्रण कुछ काला हो, जिसमें शोथ हो, फुंसियाँ हों, बारबार रुधिर बहता हो, कोमल, ऊँचा और बुल्ले के समान मांस निकला हो तथा पीड़ा होती हो, उसे सशल्य (अर्थात इसके भीतर काँटा वगैरह है) व्रण समझना चाहिए । १५ ।

कोष्ठगत शल्य के लक्षण

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा ।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥१६॥

जो शल्य त्वचा, शिरा, मांस, स्नायु, अस्थि और संधियों

को भेदकर अथवा शिरा आदि को त्यागकर कोष्ठ में पहुँच जाता है वह शल्य-विज्ञानीय अध्याय में कहे उपद्रव[1] करता है। १६।

असाध्य कोष्ठभेद के लक्षण

तत्रान्तर्लोहितं पाण्डुशीतपादकराननम्।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं च विवर्जयेत् ॥१७॥

यदि शल्य कोष्ठ में पहुँच जाय और रुधिर कोष्ठ में जाता हो, बाहर न निकलता हो, मुँह और हाथ-पाँव शीतल तथा पीले पड़ गये हों, श्वास भी शीतल निकलती हो, नेत्र लाल हो गये हों और पेट फूल गया हो, तो ऐसे रोगी को त्याग देना चाहिए। १७।

मर्मस्थानों में हुए क्षत के सामान्य लक्षण

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो
विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववात-
स्तीव्रा रुजावातकृताश्च तास्ताः ॥१८॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्
सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु
सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ १९ ॥

मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि, इन पाँच मर्मस्थानों में क्षत होने से सामान्यतः ये लक्षण होते हैं—भ्रम होता है, रोगी बकता बहुत है, गिर पड़ता है, मनोमोह होता है, विरुद्ध चेष्टाएँ करता है। (हाथ पाँव पटकना) ग्लानि और उष्णता होती है, अंगों और सन्धियों में शिथिलता, मूर्च्छा (इन्द्रियमोह),

१. "कोष्ठगते त्वाटोपानाहा मूत्रपुरीषाहारदर्शनं च व्रणमुखाद्भवति।"

ऊर्ध्ववात, वातकृत आक्षेपक आदि रोग होते हैं। मांस के धोवन के समान रुधिर निकलता है, सब इन्द्रियाँ अपना विषय ग्रहण करने में अशक्त होती हैं,। १८-१९।

शिराओं में हुए विद्ध और क्षत के लक्षण

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं
रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः।
करोति रोगान् विविधान् यथोक्तान्
शिरासु विद्धास्वथवा क्षतासु ॥ २० ॥

मर्मरहित शिराओं में विद्ध अथवा क्षत होने से इन्द्रगोप (बीरबहूटी) के रंग का रक्त बहुत निकलता है और रुधिर के निकल जाने से वायु कुपित होकर आक्षेपक आदि अनेक वातज रोग उत्पन्न कर देता है। २०।

स्नायुविद्ध के लक्षण

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः
क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च।
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि
तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २१ ॥

स्नायुविद्ध होने से शरीर के सब अवयव अपना काम करने में असमर्थ हो जाते हैं, कुबड़ापन होता है, शरीर में संकोचन-प्रसारण आदि की शक्ति नहीं रह जाती, अत्यन्त पीड़ा होती है और व्रण बहुत दिनों में भरता है। २१।

सन्धिक्षत के लक्षण

शोषाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च
बलक्षयः सर्वत एव शोथः।

क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु
स्यात् सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

चल अथवा निश्चल सन्धियों में क्षत होने पर शोथ बहुत बढ़ता है, पीड़ा बहुत होती है, बल क्षीण हो जाता है, शोथ सब ओर से होता है, शरीर में कोई काम करने की शक्ति नहीं रह जाती। (चल और अचल भेद से सन्धियाँ दो प्रकार की होती हैं)। २२।

अस्थिविद्ध के लक्षण

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु
सर्वास्ववस्थासु च नैति शान्तिम्।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्र-
स्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

घोर पीड़ा हो; दिन में, रात में, बैठने-लेटने आदि किसी अवस्था में शान्ति न मिले। शस्त्रक्रियाकुशल वैद्य उसको अस्थिविद्ध समझते हैं। २३।

मर्मरूप शिराविद्ध के लक्षण

यथास्वमेतानि विभावयेच्च
लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु।

(मर्मरहित और मर्मरूप दो प्रकार की शिराएँ होती हैं, उनमें मर्मरहित शिराविद्ध के लक्षण ऊपर कह चुके हैं। अब मर्मरूप शिराविद्ध के लक्षण कहते हैं) मर्मरहित शिराविद्ध के जो लक्षण कहे गये हैं वे सब तथा ऊपर कहे हुए भ्रम-प्रलाप आदि सामान्य लक्षण भी मर्मरूप शिराविद्ध में होते हैं।

मांसमर्म में हुए विद्ध के लक्षण

पाण्डुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति
यो मांसमर्मण्यभिपीडितः स्यात् ॥२४॥

मर्मरूप मांस में यदि विद्ध होता है तो रोगी पाण्डुवर्ण अथवा विवर्ण हो जाता है और उस स्थान में स्पर्श का ज्ञान नहीं होता । २४ ।

सब प्रकार के व्रणों में होनेवाले उपद्रव

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः ।
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ॥ २५ ॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥२६॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने सद्योव्रणनिदानं समाप्तम् ॥ ४३ ॥

किसी प्रकार का व्रण होने पर विसर्प, पक्षघात, शिरास्तम्भ, अपतानक, मोह, उन्माद, व्रण में पीड़ा, ज्वर, प्यास, हनुग्रह, खाँसी, श्वास, वमन, अतीसार, हिचकी और कंप, ये सोलह उपद्रव हो सकते हैं । २५-२६ ।

भग्ननिदान

भग्न के निदान

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताश,
काण्डे च सन्धौ च हि तत्र सन्धौ ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च
तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च षट् च ॥ १ ॥

हे हुताश (अग्निवेश), संक्षेप से भग्न दो प्रकार के होते हैं— काण्डभग्न और सन्धिभग्न । उनमें सन्धिभग्न के छः भेद हैं— उत्पिष्ट (दोनों अस्थियों का परस्पर रगड़ जाना), विश्लिष्ट (अस्थियों का सन्धि से अलग हो जाना), विवर्तित (सन्धि की

दोनों अस्थियाँ टेढ़ी हो जाना), तिर्यग्गत (सन्धि छोड़कर एक अस्थि टेढ़ी हो जाना), ऊर्ध्वक्षिप्त (सन्धि की एक अस्थि दूसरी के ऊपर चढ़ जाना) और अधःक्षिप्त (सन्धि की एक अस्थि दूसरी के नीचे चली जाना) । १ ।

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत ने तिर्यग्गत को तिर्यक्, क्षिप्त को अतिक्षिप्त और अधः को अधःक्षिप्त लिखा है। वेही यहाँ ग्रहण किये हैं।

सन्धिभग्न के सामान्य लक्षण

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा
रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गं

जिस अंग में सन्धि भग्न होती है उस अंग को फैलाने सिकोड़ने और फिराने में तीव्र पीड़ा होती है। स्पर्श नहीं सहा जाता, ये सन्धिभग्न के सामान्य लक्षण हैं।

उत्पिष्ट आदि के लक्षण

उत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ॥ २ ॥
विशेषतो रात्रिभवा रुजा च

विवर्त्तित के लक्षण

विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम् ।
विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः

तिर्यग्गत के लक्षण

तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वक्षिप्त के लक्षण

क्षिप्तेऽति शूलं विषमत्वमस्थ्नोः

अधःक्षिप्त के लक्षण

क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च सन्धेः ।

उत्पिष्ट सन्धिभग्न में दोनों हड्डियों में शोथ होता है, विशेष कर रात्रि में वायु का प्रकोप बढ़ने से पीड़ा अधिक होती है। **विश्लिष्ट** सन्धिभग्न में भी ये दोनों लक्षण, अर्थात् दोनों हड्डियों में शोथ और रात्रि में विशेष पीड़ा होती है तथा सर्वदा अधिक पीड़ा बनी रहती है। **विवर्तित** सन्धिभग्न में सन्धि के समीप तीव्र पीड़ा तथा **तिर्यग्गत** सन्धि में तीव्र पीड़ा होती है। **ऊर्ध्वक्षिप्त** सन्धि में पीड़ा कभी कम कभी अधिक होती है। **अधःक्षिप्त** में पीड़ा तथा सन्धिविघट्टन होता है, अर्थात् सन्धि अलग हो जाती है। २-३।

काण्डभग्न के लक्षण

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्ण-
विचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका ॥ ४ ॥
काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं च
मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ।
छिन्नं द्विधा द्वादशधाऽपि काण्डे
स्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः ॥ ५ ॥
संपीड्यमाने भवतीह शब्दः
स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलाः ।
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो
भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥ ६ ॥

काण्डभग्न बारह प्रकार के होते हैं—कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, अस्थिछल्लिका, काण्डभग्न, अतिपातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र और दो प्रकार के छिन्न। अंगों में शिथिलता, शोथ और पीड़ा की अत्यन्त वृद्धि, दबाने से शब्द होना, स्पर्श न सह सकना, फड़कना, सुई चुभाने की सी पीड़ा, बैठने-

लेटने आदि किसी अवस्था में भी शान्ति न मिलना, ये काण्डभग्न के सामान्य लक्षण हैं। ४-६।

टिप्पणी—१ कर्कटक—दोनों बगलों को पीड़ित करने से झुककर बीच में गाँठ सी उठ आती है, इसका स्वरूप कर्कटक (बेर) के समान होता है। २ अश्वकर्ण—घोड़े के कान के समान बड़ी अस्थि निकल आती है। ३ विचूर्णित—हड्डी चूर्ण की तरह छोटे-छोटे टुकड़ों में हो जाती है। ४ पिचित—हड्डी दबकर पिस जाती है इसमें सूजन बहुत होती है। ५ अस्थि-छल्लिका—अस्थि में से उसका छिलका वक्कल की तरह अलग हो जाता है। ६ काण्डभग्न—काण्डों में भग्न हो जाना। अंग फैलाने पर काँपता है। ७ अतिपातित—हड्डी का पूरी तरह अलग हो जाना। ८ मज्जागत—अस्थि का टुकड़ा अस्थि में घुसकर मज्जा निकाल देता है। ९ स्फुटित—अस्थि का छोटे-छोटे टुकड़ों में टटना और शूक-पूर्ण की तरह पीड़ा होना। १० वक्र अस्थि—एक दूसरे से अलग होकर टेढ़ी हो जाना। ११ छिन्न अणुविदीर्ण—(थोड़ी फटी हुई) अस्थि। १२ दूसरा छिन्न-भिन्न बहुत फटी हुई अस्थि—इस प्रकार ये बारह भेदों के लक्षण हैं।

भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति
समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ७ ॥

काण्डभग्न बहुत प्रकार के होते हैं, संक्षेप से नाम के तुल्य उनको समझना चाहिए। ७।

भग्न के साध्यासाध्य लक्षण

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ८ ॥

जो अल्प भोजन करता हो, जिसे धैर्य न हो, जो वातप्रकृति हो तथा ज्वर, आध्मान, मल-मूत्र और अपान वायु का अवरोध आदि उपद्रव हों, वह रोगी कष्टसाध्य होता है। ८।

भिन्नं कपालं कट्यां तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम्।
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेद्धि विचक्षणः ॥ ९ ॥

असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ।
भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शङ्खे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥१०॥

कपाल में काण्डभग्न हुआ हो तो बुद्धिमान् वैद्य उसकी चिकित्सा न करे, क्योंकि वह असाध्य होता है। कमर में सन्धि-भग्न तथा अधःक्षिप्त असाध्य होता है। जाँघ में उत्पिष्ट, कपाल में विश्लिष्ट, मस्तक में विचूर्णित तथा हृदय, पीठ, कनपटी और चोटी के स्थान में काण्डभग्न असाध्य होते हैं। इनकी चिकित्सा न करे। ९-१०।

असावधानी से सब प्रकार के भग्न असाध्य हो जाते हैं—

सम्यक् सन्धितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात् ।
संक्षोभाद्वाऽपियद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ ११ ॥
तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च ।
कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥१२॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने भग्ननिदानं
समाप्तम् । ४४ ।

जो, अस्थि अच्छे प्रकार संयमित होने पर भी बैठाने की असाव-धानी से, अथवा ठीक बैठाने पर बाँधने की असावधानी से, अथवा ठीक बैठाने और बाँधने पर भी चोट लगने या भयातुर होने से यदि फिर विकृत हो जाती है तो वह असाध्य होती है। उसे त्याग देना चाहिए। ११।

नाक, कान अथवा नेत्रपुट की तरुण (कोमल) अस्थि वक्र हो जाती है। नलक (नली के समान छेदवाली) अस्थि फट जाती है। कपाल-अस्थि टूटकर अलग हो जाती है और रुचक अस्थि (दाँत की हड्डी) टूटकर चूर-चूर हो जाती है, (मूल में 'च' के प्रयोग से वलय अस्थि से प्रयोजन है। यह भी रुचक के समान टूट जाती है)। १२।

नाडीव्रणनिदान

नाडीव्रण की संप्राप्ति और निरुक्ति

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
योवा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः॥१॥

जो मूर्ख मनुष्य कच्चा समझकर पके हुए शोथ की उपेक्षा करता है, अर्थात् शोधन आदि उपचार नहीं करता अथवा जो अपथ्य आहार-विहार करनेवाला मनुष्य पके हुए और बहुत पीब से भरे हुए शोथ की उपेक्षा करता है तो वह पीब मांस आदि को भेदकर भीतर चला जाता है। १।

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु
नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी।

भीतर दूर तक जाने के कारण वह पीब हमेशा बहा करता है। व्रण बाँस की नली के समान हो जाता है और उससे पीब बहता है। नाडी के समान बहने से इसे नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं।

नाडीव्रण की संख्या

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या॥२॥

नाड़ीव्रण पाँच प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यनिमित्तज। २।

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत द्वन्द्वज भी मानते हैं। इस प्रकार आठ प्रकार का नाड़ीव्रण होता है। यही आचार्य गयादास का भी मत है।

वातज नाडीव्रण

तत्रानिलात् परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ।

वातज नाड़ीव्रण कठोर होता है, मुख सूक्ष्म होता है, पीड़ा होती है, रात में फेन सहित अधिक स्राव होता है।

पित्तज नाडीव्रण

पित्तात्तृषाज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥

पित्तज नाड़ीव्रण होने पर प्यास, ज्वर और दाह, ये उपद्रव होते हैं। दिन में पीला, गर्म स्राव अधिक होता है। ३।

कफज नाडीव्रण

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छलास्रा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ।

कफज नाड़ीव्रण में गाढ़ा, सफेद और चिकना स्राव बहुत होता है, व्रण कठोर होता है, खुजली होती है, पीड़ा नहीं होती और रात में स्राव बढ़ जाता है।

त्रिदोषज नाडीव्रण

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥४॥
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्
घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ।

दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुख का सूखना, ये उपद्रव जिस नाडीव्रण के रोगी में हों और ऊपर कहे हुए सब लक्षण हों, उसे वात, पित्त, कफ तीनों दोषों के प्रकोप से समझे। यह नाड़ीव्रण प्राणों का विनाश करनेवाला कालरात्रि के समान भयानक होता है। ४।

शल्यनिमित्तज नाडीव्रण

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु
स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥५॥
सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं
स्रावं करोति सहसा सरुजा च नित्यम् ।

यदि त्वचा, मांस आदि मर्मस्थानों में काँटा आदि शल्य धँस जाता है और टूटकर भीतर रह जाता है, दिखाई न हीं देता, जिससे नाडीव्रण बन जाता है, इसमें से थोड़े ही दिनों में फेन सहित गाढ़े तक्र के समान पीब और गर्म रुधिर मिला हुआ स्राव होने लगता है और पीड़ा होती है । ५ ।

असाध्य लक्षण

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्ये-
च्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नाडीवृणनिदानं
समाप्तम् । ४५ ।

त्रिदोषज नाडीवृण असाध्य होता है और शेष चार प्रकार के नाडीवृण उपाय करने से साध्य हो सकते हैं । ६ ।

भगन्दरनिदान

भगन्दर के निदान

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकाऽऽर्तिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

गुदा के समीप दो अंगुल स्थान में पिडका निकलती है, उसमें पीड़ा होती है। वह जब फूटती है तो भगन्दर हो जाता है। भगन्दर

पाँच प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यनिमित्तज। १।

टिप्पणी—भगन्दर की निरुक्ति करते हुए आचार्य सुश्रुत लिखते हैं, 'भगगुदवस्तिदारणा च भगन्दरा इत्युच्यते' (सु० नि० स्था० अ० ४) अर्थात् वृषण और गुदा के बीच के स्थान (सीवन) पर पहले एक पिडका उत्पन्न होती है, बाद में वही पिडका पककर फूट जाती है। इसी को भगन्दर कहते हैं। फूटने से पहले उसे भगन्दरी पिडका और फूटने पर भगन्दर कहते हैं।

शतपोनक के निदान

कषायरूक्षस्त्वतिकोपितोऽनिल-
स्त्वपानदेशे पिडकां करोति याम्।
सोपेक्षणात् पाकमुपैति दारुणं
रुजा च भिन्नाऽरुणफेनवाहिनी ॥ २ ॥
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां
व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत्।

कसैले और रूखे पदार्थ बहुत खाने से गुदा में रहनेवाली वायु अत्यन्त कुपित होकर पिडका (फोड़ा) उत्पन्न कर देती है। उपेक्षा करने से वह पक जाती है, पीड़ा होती है, फूटने पर फेन सहित रुधिर निकलता है। फिर उसमें चलनी के समान बहुत छेद हो जाते हैं और उनके द्वारा मूत्र, मल और वीर्य निकलने लगता है। इसे शतपोनक कहते हैं। (शतपोनक चलनी का नाम है। चलनी के समान बहुत छेद होते हैं, इसी से इसका नाम शतपोनक है। यह वातज भगन्दर है)। २।

उष्ट्रग्रीव के लक्षण

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं
करोति रक्तां पिडकां गुदाश्रिताम् ॥ ३ ॥

तदाऽऽशुपाकाहिमपूतिवाहिनीं
भगन्दरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥

पित को कुपित करनेवाले आहार-विहार करने से पित्त अत्यन्त कुपित होकर गुदा के समीप रक्तवर्ण की पिडका उत्पन्न कर देता है। वह शीघ्र पक जाती है और उससे गर्म पीव बहता है। (ये पित्तज भगन्दर के लक्षण हैं। पिडका की आकृति ऊँट की ग्रीवा के समान होती है, इसलिए इसका नाम उष्ट्रग्रीव भगंदर है)। ३-४।

परिस्रावी के लक्षण

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ५ ॥

कफज भगन्दर में खुजली होती है, गाढ़ा स्राव होता है, पिडका कठोर और सफेद होती है, पीड़ा कम होती है। इसे परिस्रावी भगन्दर कहते हैं। ५।

शम्बूकावर्त के लक्षण

बहुवर्णरुजा स्रावा पिडका गोस्तनोपमा।
शम्बूकावर्तवन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः ॥ ६ ॥

अनेक प्रकार के रंग, अनेक प्रकार की पीड़ा तथा अनेक प्रकार के स्रावयुक्त गोस्तन (दाख या विना ब्याई गाय के स्तन) के बराबर छोटा शंख-घोंघा के आवर्त के समान छेदवाली नाडीरूप पिडिका को शम्बूकावर्त भगंदर कहते हैं। (यह त्रिदोषज है)। ६।

उन्मार्गी के लक्षण

क्षतादुगतिः पायुगता विवर्धते
ह्युपेक्षणात् स्युः क्रिमयो विदार्यते।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखै-
र्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगन्दरं वदेत् ॥ ७ ॥

यदि काँटा आदि लगने से अथवा नखों से खुजाने से गुदा के समीप घाव हो जाता है तो उससे स्राव होने लगता है। उसकी उपेक्षा करने से कीड़े पैदा हो जाते हैं और वे व्रण में बहुत-से छेद कर देते हैं, उसे उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं। कीड़ों के द्वारा किये हुए मार्ग से मल-मूत्र आदि निकलने लगता है। (यह आगन्तुज है) । ७ ।

असाध्य के लक्षण

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः ।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ८ ॥

सब प्रकार के भगन्दर भयानक और कष्टसाध्य होते हैं। उनमें त्रिदोषज असाध्य और क्षतज (कृमिपूर्ण) अत्यन्त असाध्य है। ८ ।

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ।
भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने भगन्दरनिदानं समाप्तम् ॥ ४६ ॥

जिस भगन्दर से वायु, मल-मूत्र, कीड़े और वीर्य निकलता हो, उस भगन्दर का रोगी नहीं बच सकता। ९ ।

उपदंशनिदान

उपदंश के निदान

हस्ताभिघातान्नखदन्तपाता-
द्धावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने
पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥

हाथ की चोट लगने से, नख या दाँत के द्वारा क्षत होने

से, लिंगेन्द्रिय को न धोने से, अति स्त्री प्रसंग करने से, योनि के दोष से (सुकड़ी, चौड़ी, कर्कश, दुर्गंधित योनि वाली रोगयुक्त स्त्री से मैथुन करने से) अथवा किसी प्रकार के अपचार करने से (खारी, गर्म अथवा अशुद्ध जल से लिंगेन्द्रिय को धोने तथा, रजस्वला ब्रह्मचारिणी से मैथुन करने से) लिंगेन्द्रिय में पाँच प्रकार के उपदंश हो जाते हैं—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और सन्निपातज । १ ।

वातज उपदंश के लक्षण

सतोदभेदैः स्फुरणैः सकृष्णैः
स्फोटैर्व्यवस्येत् पवनोपदंशम् ।

पैत्तिक और रक्तज उपदंश के लक्षण

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः
पित्तेन रक्तात् पिशितावभासैः ॥ १ ॥
स्फोटैः सकृष्णै रुधिरं स्रवन्तं
रक्तात्मकं पित्तसमानलिङ्गम् ।

कफज उपदंश के लक्षण

सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः
शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन ॥ ३ ॥

लिंगेन्द्रिय में सुई चुभाने अथवा भेदन करने के समान पीड़ा और स्पन्दन हो, काले रंग की फुंसियाँ हों तो वातज उपदंश समझना चाहिए। फुंसियाँ पीली (अथवा लाल) और आर्द्र हों, उनमें जलन होती हो तो पित्तज उपदंश समझना चाहिए। फुंसियाँ मांस के रंग की अथवा काली हों, उनसे रुधिर का स्राव होता हो और पित्तज उपदंश के समान लक्षण (दाह और पीड़ा आदि) हों तो रक्तज उपदंश समझे। खुजली, शोथ और सफेद गाढ़ा स्राव, ये कफज उपदंश के लक्षण हैं । २-३ ।

सन्निपातज उपदंश

नानाविधस्रावरुजोपपन्न-
मसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ।

सफेद, लाल, पीला अनेक प्रकार का स्राव हो, पीड़ा और दाह आदि तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो सन्निपातज उपदंश समझना चाहिए। इसे असाध्य कहा है।

असाध्य उपदंश

विशीर्णमांसं क्रिमिभिः प्रजग्धं
मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च ॥ ४ ॥

मांस सड़ गया हो अथवा कीड़ों ने खा लिया हो, अंडकोष शेष रह गया हो (लिंगेन्द्रिय सड़कर नष्ट हो गई हो), उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। वह असाध्य हो जाता है। ४।

संजातमात्रे न करोति मूढः
क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ।
कालेन शोथक्रिमिदाहपाकै-
र्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ५ ॥

विषय में आसक्त जो मूर्ख मनुष्य उपदंश होते ही उसकी चिकित्सा नहीं करता तो कुछ दिनों में लिंगेन्द्रिय में शोथ और दाह होता है, कीड़े पड़ जाते हैं, पक जाती है, मांस सड़ जाता है और इस रोग के कारण वह मनुष्य मर जाता है। ५।

लिंगार्श

अङ्कुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः ।
क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥
कोषस्याभ्यन्तरे सन्धौ सर्वसन्धिगताऽपिवा ।

(सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ।)
लिङ्गवर्तिरभिख्याता लिङ्गार्शं इति चापरे ॥ ७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उपदंशनिदानं समाप्तम् । ४७ ।

मांस के अंकुर के समान छोटे-छोटे फोड़े क्रम से एक के ऊपर एक, अतएव मुर्गे की चोटी के समान, कोष के अन्दर, सन्धि में अथवा सब सन्धियों में होते हैं । ६ । (वे चिकने होते हैं, उनमें पीड़ा होती है, वे तीनों दोषों के प्रकोप से होते हैं और कष्टसाध्य होते हैं) । उनको लिंगवर्ति और कोई वैद्य लिंगार्श कहते हैं । ७ ।

शूकदोषनिदान

शूकदोष के निदान

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

जो मूर्ख मनुष्य (वात्सायन कामसूत्र में लिखे हुए) अनुचित क्रम से (जलशूक एक विषैला कीड़ा होता है, उसका लेप करके) लिंगेन्द्रिय को बढ़ाने की इच्छा करता है, उसे अठारह प्रकार के शूकज रोग हो जाते हैं । १ ।

सर्षपिका के निदान

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका ।
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ २ ॥

जलशूक के लेप से सफेद सरसों के समान फुंसिया निकलती है । ये वात और कफ के प्रकोप से होती हैं, इनको सर्षपिका कहते हैं । २ ।

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत और वागभट्ट ने इसको कफरक्तजन्य माना है ।

अष्ठीलिका के निदान

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुना ऽष्ठीलिका भवेत् ।

यदि लेप अधिक लगाया जाता है तो वायु कुपित होकर अष्ठीलिका (लोहार की निहाई) के समान कठोर पिडका उत्पन्न कर देता है । उसे अष्ठीलिका कहते हैं ।

ग्रथित के निदान

शूकैर्यत् पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत् कफात् ।। ३ ।।

यदि जलशूक का लेप सर्वदा लिंगेन्द्रिय पर लगा रहता है तो कफ के प्रकोप से गाँठ-सी पड़ जाती है, उसे ग्रथित कहते हैं । ३ ।

कुम्भिका के निदान

कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा ।

रक्त-पित्त के प्रकोप से जामुन की गुठली के समान पिडका काले रंग की होती है । इसे कुम्भिका कहते हैं ।

अलजी के निदान

तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथाप्रोक्तां विचक्षणः ।। ४ ।।

प्रमेह पिडका में अलजी नाम की एक पिडका के लक्षण बताये गये हैं । वैसी पिडका जलशूक के लेप से प्रमेह के बिना हो जाती है, इसका भी नाम अलजी है । इसमें लाल या काली फुंसियाँ बहुत-सी होती हैं । ४ ।

मृदित के निदान

मृदितं पीडितं यच्च संरब्धं वातकोपतः ।

लेप के अनन्तर यदि लिंग को हाथ से दबाया या पीड़ित किया जाता है तो वायु के प्रकोप से सूजन हो जाती है ।

संमूढपिडका के निदान

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ।। ५ ।।

शूक लगाकर यदि लिंग को हाथों से बहुत पीडित किया जाता है

तो संमूढ़ पिडका हो जाती है। यह भी वायु के प्रकोप से होती है। ५।

अधिमंथ के निदान

दीर्घा बह्वयश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः।
सोऽधिमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

शूकदोष से कफ और रुधिर के प्रकोप से बड़ी-बड़ी पिडकाएँ बहुत-सी निकलती हैं। वे बीच से फट जाती हैं, वेदना के कारण रोमांच होता है। उनको अधिमंथ कहते हैं। ६।

पुष्करिका के निदान

पिडका पिडकाव्याप्ता पित्तशोणितसंभवा।
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ॥ ७ ॥

जलशूक के लेप से पित्त और रुधिर दूपित होकर लिंगेन्द्रिय के ऊपर पिडका उत्पन्न कर देता है। उसके आस-पास कमल के केसर के समान रंग की बहुत-सी फुंसियाँ निकलती हैं। इन्हें पुष्करिका कहते हैं। ७।

स्पर्शहानि के निदान

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम्।

शूकदोष से जब रुधिर दूषित हो जाता है तो लिंगेन्द्रिय में स्पर्श का ज्ञान नहीं रह जाता। इस व्याधि को स्पर्शहानि कहते हैं।

उत्तमा के निदान

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा तु या ॥ ८ ॥
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा।

बार बार जलशूक का लेप करने से रक्त और पित्त दूषित होने के कारण मूँग या उर्द के बराबर लाल फुंसियाँ निकलती है। इनका उत्तमा नाम है। ८।

शतपोनक के निदान

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः ॥ ९ ॥
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ।

शूकदोष से वात और रुधिर जब कुपित हो जाता है तो लिंगेन्द्रिय में सूजन होती है और बहुत बारीक मुखवाले बहुत से छिद्र हो जाते हैं। इसका नाम शतपोनक है। ९।

त्वक्पाक के निदान

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥ १० ॥

शूक दोष से यदि वात और पित्त कुपित होते हैं तो लिंगेन्द्रिय की त्वचा पक जाती है। रोगी को ज्वर और दाह होता है। इसे त्वक्पाक कहते हैं। १०।

टिप्पणी—सुश्रुत में वातपित्तकृत के स्थान पर 'पित्तरक्तकृत' पाठ मिलता है जिसका अर्थ "पित्त और रक्त से उत्पन्न" है।

शोणितार्बुद के निदान

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिर्निपीडितम् ।
यस्य वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ ११ ॥

जलशूक के लेप से रुधिर विकृत होकर लाल और काली फुंसियाँ लिंगेन्द्रिय पर उत्पन्न कर देता है, इससे लिंग में और फुंसियों में बहुत पीड़ा और शोथ होता है। इसे रक्तार्बुद कहते हैं। ११।

मांसार्बुद के लक्षण

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ।

मांस के दूषित होने से जो रक्तार्बुद निकलता है, उसे मांसार्बुद कहते हैं।

मांसपाक के लक्षण

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वश्च वेदनाः ॥ १२ ॥
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ।

जलशूक का लेप करने से यदि लिंगेन्द्रिय का मांस गल जाता है, और सब प्रकार की पीड़ा होती है, तो उसे मांसपाक समझना चाहिए। यह तीनों दोषों के विकार से होता है।

विद्रधि के लक्षण

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमिति निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

जलशूक के लेप से जब तीनों दोष कुपित हो जाते हैं तो विद्रधि उत्पन्न होती है। विद्रधि के लक्षण पहले कह आये हैं, वही यहाँ भी समझना चाहिए। १३।

तिलकालक के लक्षण

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि वा ।
पातितानि पचन्त्याशु मेढ्ं निरवशेषतः ॥ १४ ॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ।
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान् विद्यात्तिलकालकान् १५ ॥

काले अथवा रंग-विरंग के विषैले जलशूकों का लेप करने से शीघ्र ही संपूर्ण लिंगेन्द्रिय पक जाती है और मांस काला होकर गल जाता है। उसे तिलकालक कहते हैं। यह व्याधि तीनों दोषों के प्रकोप से होती है। मांस काले तिलों के समान काला हो जाता है, इसलिए इसका नाम तिलकालक है। १४–१५।

असाध्य शूकदोष

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ।
विद्रधिश्च न सिद्ध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः १६

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शूकदोषनिदानं समाप्तम् ॥ ४८ ॥

जलशूक के लेप से जितने विकार ऊपर कह चुके हैं, उनमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक असाध्य हैं। १६।

कुष्ठनिदान

कुष्ठ के निदान

विरुद्धान्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ।
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान् प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥
व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् ।
घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् ॥ २ ॥
अजीर्णाध्यशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ।
नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् ॥ ३ ॥
माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ।
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ॥४॥
विप्रान् गुरुन् धर्षयतां पापकर्म च कुर्वताम् ।
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ ५ ॥
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ।
अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

विरुद्ध अन्न-पान (दूध और मछली आदि एक साथ खाने-पीने) से ; पतली, चिकनी और भारी चीजें खाने-पीने से, आती हुई छर्दिको रोकने से; छींक, डकार, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से; भरपेट भोजन करके व्यायाम करने अथवा धूप में बहुत रहने से; पसीना आने पर, मेहनत करने के बाद अथवा भयभीत अवस्था में शीघ्र ही शीतल जल पीने से, अजीर्ण में भोजन करने से, भोजन करने के बाद दुबारा फिर भोजन करने से; वमन, विरेचन, स्नेहन, अनुवासन और बस्तिकर्म में व्यतिक्रम होने से ; नया अन्न, दही, मछली, नमक और खटाई बहुत खाने से ; उर्द, मूली, चावल का आटा, तिल, दूध और गुड़ बहुत खाने-पीने से ; भोजन करने के बाद अन्न पचे विना मैथुन करने से; दिन में सोने से; ब्राह्मणों और गुरुजनों का

अपमान करने से तथा पापकर्म (परद्रव्यापहरण आदि) करने से वातादि तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रुधिर, मांस और लसीका दूषित कर देते हैं, जिससे अठारह प्रकार के कुष्ठरोग पैदा होते हैं। १—६।

टिप्पणी—अठारह प्रकार के कुष्ठों में ७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्रकुष्ठ होते हैं। दद्रुकुष्ठ को सुश्रुत महाकुष्ठ और चरक क्षुद्रकुष्ठ मानते हैं इसी तरह सिध्म को चरक महाकुष्ठ और सुश्रुत क्षुद्रकुष्ठ मानते हैं।

व्यवहार्य यह है कि अत्यन्त उग्र तो महाकुष्ठ की संज्ञा में हैं और साधारण क्षुद्रकुष्ठ में। दद्रु और सिध्म दोनों ही दो-दो प्रकार के होते हैं। सितदद्रु, असितदद्रु, पुष्पिका सिध्म और सिध्म। असितदद्रु महाकुष्ठ हैं इसी प्रकार सिध्म भी समझिए।

कुष्ठ के सात भेद

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः॥ ७॥

यद्यपि कुष्ठरोग तीनों दोषों के प्रकोप से होता है, किन्तु दोष की उल्बणता से कुष्ठ के सात भेद हैं। वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, वात-पित्तजन्य, वात-कफजन्य, पित्त-कफजन्य तथा त्रिदोषजन्य। ७।

टिप्पणी—सभी कुष्ठ त्रिदोषजन्य हैं, किन्तु जो जिस दोष की अधिकता के कारण होता है उसे उस दोषों से उत्पन्न कहा जाता है।

कुष्ठ के पूर्वरूप

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः।
दाहः कण्डूस्त्वचिस्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः श्रमः ८॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम्॥ ९॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्।

कुष्ठरोग होने के पहले ये लक्षण प्रकट होते हैं—देह बहुत चिकनी या रूखी हो जाती है, पसीना बहुत आता है या बिल्कुल

नहीं आता। देह विवर्ण हो जाती है, जलन और खुजली होती है, त्वचा शून्य हो जाती है, देहमें सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, बर्रं काटने के समान देह में चकत्ते और शोथ होता है, अनायास थकावट होती है। व्रण बहुत जल्दी हो जाता है, फिर बहुत दिनों तक भरने नहीं आता। उसमें पीड़ा अधिक होती है, भरने पर भी रूखापन रहता है और अल्प कारण से ही बल बिगड़ जाता है, रोमांच होता है, रक्त काला पड़ जाता है। ८-९।

सप्त महाकुष्ठ के लक्षण

कापालकुष्ठ के लक्षण

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥ १० ॥
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम्।

उदुम्बरकुष्ठ के लक्षण

रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ॥ ११ ॥
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्।

मण्डलकुष्ठ के लक्षण

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् १२
कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते।

ऋष्यजिह्वकुष्ठ के लक्षण

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम् ॥ १३ ॥
यदृष्यजिह्वसंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते।

पुण्डरीककुष्ठ के लक्षण

सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ १४ ॥
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं तदुच्यते।

सिध्मकुष्ठ के लक्षण

श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति ॥ १५ ॥

प्रायश्चोरसि तत् सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ।

काकणकुष्ठ के लक्षण

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥ १६ ॥
त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ।

(कुष्ठ के अठारह भेद पहले कह चुके हैं, उनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं) महाकुष्ठों के लक्षण कहते हैं—जिस कुष्ठ में रोगी की देह काली, लाल अथवा खप्पर के टुकड़े के समान हो जाय, देह रूखी हो, त्वचा पतली और खर्दरी हो, सुई चुभाने की सी पीड़ा होती हो, उसे कापाल कुष्ठ कहते हैं। यह दुःसाध्य होता है। उदुम्बरकुष्ठ—देह में पीड़ा, जलन और खुजली हो, त्वचा रक्तवर्ण और रोएँ पिंगल वर्ण हो गये हों, कुष्ठ स्थान की त्वचा पके गूलर के समान हो गई हो, उसे औदुम्बर कुष्ठ कहते हैं। मण्डलकुष्ठ—देह में सफेद, लाल, कठोर, आर्द्र और स्निग्ध चकत्ते पड़ जायँ और एक दूसरे से मिले हुए हों, उसे मण्डलकुष्ठ कहते हैं। यह कष्टसाध्य होता है। ऋष्यजिह्व कुष्ठ—चकत्ते कठोर, बीच में काले, अन्त में लाल और पीड़ा सहित हों, रीछ की जीभ के समान उनके आकार हों, उसे ऋष्यजिह्व कुष्ठ कहते हैं। पुण्डरीक कुष्ठ—जिसमें चकत्ते कमल के पत्ते के समान सफेद हों, अन्त भाग लाल हो, बीच कुछ ऊँचा और श्वेत-रक्त हो, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। सिध्म कुष्ठ—त्वचा सफेद या लाल हो जाय, खुजली हो, खुजाने से धूल सी उड़े, त्वचा का रंग लौकी के फूल के समान हो जाय, उसे सिध्म कुष्ठ कहते हैं। यह प्रायः छाती में होता है। काकण कुष्ठ—जिसमें चकत्तों का रंग घुँघुची के समान लाल और बीच में काला हो अथवा बीच में लाल और अन्त में काला हो, चकत्ते पक जायँ, तीव्र वेदना हो, तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हों, उसे काकण कुष्ठ कहते हैं। यह असाध्य होता है। १८-१६।

एकादश क्षुद्र कुष्ठ

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥ १७ ॥

तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ।
श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् । १८ ।
वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ।
कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम् ॥ १९ ॥
सकण्डूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्गतम् ।
रक्तं सशूलं कण्डूमत् सस्फोटं यद्गलत्यपि ।
तच्चर्मदलमाख्यातं संस्पर्शासहमुच्यते ॥ २० ॥
सूक्ष्मा बह्वयः पिडकाः स्रावत्यः
पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ।
सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता
ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्राः स्फिचोश्च ॥ २१ ॥
स्फोटाः श्यावारुणाभा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ।
रक्तं श्यावं सदाहार्तिशतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २२ ॥
सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ।

एककुष्ठ—पसीना न आवे, कुष्ठ का स्थान बड़ा हो अर्थात् बड़ी जगह में फैला हो, त्वचा मछली की त्वचा के समान हो जाय, उसे एककुष्ठ कहते हैं। चर्मकुष्ठ—जिस कुष्ठ में त्वचा हाथी की त्वचा के समान मोटी हो जाय, उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं। किटिभ कुष्ठ—त्वचा नीली पड़ जाय और व्रण के स्थान के समान रूखी और कर्कश हो जाय, उसे किटिभ कुष्ठ कहते हैं। वैपादिक कुष्ठ—हथेली और तलुओं की त्वचा फट जाय, उनमें अत्यन्त पीड़ा हो, उसे वैपादिक[1] कहते हैं।

---

१. विचर्चिका और विपादिका एक ही कुष्ठ है। यह पैरों में होता है तो इसका नाम विपादिका और अन्यस्थान में होता है तो विचर्चिका होता है। कुछ वैद्यों का मत है कि पामा और कच्छू एक ही कुष्ठ है, उसकी एक ही संख्या माननी चाहिए।

अलसकुष्ठ—लाल रंग के बहुत से फोड़े निकलें और उनमें खुजली हो, उसे अलस कुष्ठ कहते हैं। दद्रु कुष्ठ—लाल-लाल फुंसियाँ किसी स्थान में निकलें, और उनमें खुजली हो, उसे दद्रु मण्डल कहते हैं। यह मंडलाकार उत्पन्न होता है। चर्मदलकुष्ठ– जिसमें लाल-लाल फोड़े निकलें, उनमें पीड़ा और खुजली हो, त्वचा सड़ गई हो, पीड़ा के मारे स्पर्श न सहा जाय, उसे चर्मदल कहते हैं। पामा—छोटी-छोटी बहुत-सी फुंसियाँ निकलें, उनमें खुजली, जलन और स्राव हो, उसे पामा कहते हैं। कच्छु—वही फुंसियाँ यदि बड़ी हों, जलन बहुत हो, हाथों में अथवा कमर में हों तो उसे कच्छु कहते हैं। विस्फोट—फोड़े लाल या काले हों, त्वचा पतली हो जाय उसे विस्फोट कहते हैं। शतारु—जिसमें फोड़े बहुत हों, जलन और पीड़ा हो, फोड़ों का रंग लाल या काला हो, उसे शतारु कुष्ठ कहते हैं। विचर्चिका—जिसमें नीले रंग की बहुत-सी फुंसियाँ निकलें, उनमें खुजली और स्राव बहुत हो, उसे विचर्चिका कुष्ठ कहते हैं। १७-२२।

दोषभेद से कुष्ठ के लक्षण

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्टं सवेदनम् ॥ २३ ॥
पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ।
कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम्॥२४॥
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।

वातज कुष्ठ में त्वचा और फुंसियाँ नीली अथवा लाल, रूखी और खर्दरी होती हैं तथा पीड़ा होती है। पित्तज कुष्ठ में दाह, और स्राव होता है। कफज कुष्ठ में गीलापन, चिकनापन, खुजली, शीतलता और भारीपन होता है। दो दोषों के प्रकोप से जो कुष्ठ होता है उसमें दो दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा त्रिदोषज में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। २३-२४।

सप्तधातुगत कुष्ठ के लक्षण

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ॥२५॥

त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ।
कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ २६ ॥
बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ।
तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २७ ॥
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।
मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २८ ॥
नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसंभवः ।
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जसमाश्रिते ॥ २९ ॥
दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३० ॥

रसधातुगत कुष्ठ—यदि त्वचा में कुष्ट होता है तो देह विवर्ण हो जाती है, त्वचा रूखी और शून्य होती है, रोमाञ्च होता है और पसीना बहुत आता है । यहाँ त्वचा से मतलब रसधातु समझना चाहिए । रक्त कुष्ठ—जब कुष्ठ रुधिर में प्राप्त हो जाता है तो खुजली होती है और पीब निकलता है । मांसगत कुष्ठ—मांस में जब कुष्ठ प्राप्त हो जाता है तो मुँह बहुत सूखता है, त्वचा कर्कश हो जाती हैं, फोड़े और फुंसियाँ बहुत निकलती हैं, सुई चुभाने को-सी पीड़ा होती है, फोड़े और फुंसियाँ स्थिर रहती हैं । मेदगत कुष्ठ—मेद स्थान में कुष्ठ रोग प्राप्त होने पर हाथों की अँगुलियाँ गिर जाती हैं, चलने की शक्ति नहीं रह जाती, अंगों में टूटने की-सी पीड़ा होती है, व्रण बड़े होते जाते हैं । रस, रुधिर, मांसगत कुष्ठ के भी ये ही लक्षण होते हैं । अस्थिमज्जागत कुष्ठ—अस्थि और मज्जा में जब कुष्ठ प्राप्त होता है तब नाक बैठ जाती है, आँखें लाल हो जाती हैं, घाव में कीड़े पड़ जाते हैं, स्वरभंग हो जाता है । पुरुष के वीर्य में कुष्ठ प्राप्त हो गया हो अथवा स्त्री के रज में कुष्ठ प्राप्त हुआ हो तो उससे पैदा हुई सन्तान को भी कुष्ठ-रोग होता है । २५-३० ।

साध्यासाध्य कुष्ठ

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ।
मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥३१॥
क्रिमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्रिदोषजम् ।
प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ ३२ ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह मानवम् ।

रस, रुधिर और मांसगत कुष्ठ तथा वात और कफ की अधिकता से उत्पन्न कुष्ठ साध्य होता है । मेदोगत कुष्ठ तथा दो दोषों से हुआ कुष्ठ बहुत यत्न करने पर साध्य होता है । मज्जा और अस्थिगत कुष्ठ की चिकित्सा न करनी चाहिए । जिस कुष्ठ में कीड़े पड़ गये हों, प्यास, दाह, और मन्दाग्नि जिस कुष्ठ रोगी को हो, जो कुष्ठ तीनों दोषों के प्रकोप से हुआ हो, फूट गया हो, बहता हो, आँखें लाल हो गई हों, स्वर बैठ गया हो और पंचकर्म (वमन, विरेचन आदि) के गुण निष्फल हो चुके हों वह कुष्ठरोग मनुष्य को मार डालता है । ३१-३२ ।

चिकित्सा के लिए प्रधान दोष के लक्षण

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् ॥३३॥
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः ॥ ३४ ॥
वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ।
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामाचमदलं तथा ॥ ३५ ॥
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वत्रिकं दद्रु सकाकणम् ।
पुण्डरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३६ ॥

कापाल कुष्ठ वात की अधिकता से, औदुम्बर कुष्ठ पित्त की अधिकता से, मंडल और विचर्ची कुष्ठ कफ की अधिकता से, ऋष्य कुष्ठ वात-पित्त की अधिकता से तथा चर्मकुष्ठ, एककुष्ठ, किटिभ,

सिध्म, अलस और विपादिका कुष्ठ वात-कफ की अधिकता से, दद्रु, शतारुषी, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा और चर्मदल कुष्ठ कफ-पित्त की अधिकता से, और काकण कुष्ठ तीनों दोषों की उल्बणता से होता है। कापाल, औदुम्बर, मंडल, दद्रु, काकण, पुण्डरीक और ऋष्यजिह्व, ये सात महाकुष्ठ हैं। ३३-३६।

किलास के निदान और लक्षण

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं वारुणं भवेत्।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३७ ॥
वातादूरूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्।
सदाहं रोमविध्वंसि कफात्श्वेतं घनं गुरु ॥३८॥
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत्।
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३९ ॥

कुष्ठ रोग के उत्पन्न होने के कारण ऊपर कह चुके हैं। उन्हीं कारणों से श्वित्र, किलास और वारुण भी होते हैं। इनमें स्राव नहीं होता और वातादि दोषों का विकार रुधिर मांस और मेद में होने से ये कुष्ठ होते हैं। वात की अधिकता से उत्पन्न किलास कुछ लाल रंग का और रूखा होता है। पित्त की अधिकता से लाल अथवा कमलपत्र के रंग का होता है। उसमें दाह होता है और रोयें गिर जाते हैं। कफ की अधिकता से घने सफ़ेद दाग और खुजली होती है। सघन और भारी होता है। रुधिर, मांस और मेदा में दोषों के प्राप्त होने पर क्रम से ऐसे ही वर्ण किलास के होते हैं, अर्थात् रुधिरगत दोष से रक्तवर्ण, मांसगत दोष से ताम्रवर्ण और मेदोगत दोष से श्वेतवर्ण किलास होता है। श्वित्र के मुख्य दो भेद हैं—एक व्रणज, दूसरा दोषज। यह उत्तरोत्तर कष्टसाध्य होता है। ३७-३९।

टिप्पणी—किलास कुष्ठ सफेद दागवाला, विना बहनेवाला कुष्ट है। केवल त्वग्गत होने पर किलास है। मांसगत अरुण और मेदगत श्वित्र है। चरक में किलास के ही दारुण, वारुण और श्वित्र, तीन नाम बतलाये हैं।

साध्यासाध्य किलास

अशुक्लरोमाऽबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा॥४०॥
गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४१ ॥

रोयें सफेद न हों, बहुत न हो, परस्पर मिला हुआ न हो, नया हो, अग्नि से दग्ध हुए के कारण न हुआ हो, वह श्वित्र साध्य होता है। इसके विपरीत असाध्य होता है, उसकी चिकित्सा न करे। गुदा, हथेली, पैर के तलुए और होठ में उत्पन्न हुआ किलास नया भी असाध्य होता है। यश चाहनेवाले वैद्य को उसकी भी चिकित्सा न करनी चाहिए।.४०-४१।

कुष्ठ आदि संसर्गज रोग

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात् ।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४२ ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने कुष्ठनिदानं समाप्तम् ॥ ४९ ॥

प्रसंग से, देह का स्पर्श करने से, श्वास की वायु से, साथ भोजन करने से, एक शय्या पर साथ सोने से, एक आसन पर साथ बैठने से, पहना हुआ वस्त्र और माला पहनने से, लगाया हुआ चन्दन लगाने से, कुष्ठ, ज्वर, शोष और नेत्राभिष्यन्द तथा अन्य भी संक्रामक रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हो जाते हैं। ४२-४३।

शीतपित्तोदर्दकोठनिदान

शीतपित्त आदि के निदान

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ।
पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीतल वायु लगने से कफ और वायु कुपित होकर, अपने कारणों से संचित पित्त के साथ मिलकर त्वचा और रुधिर आदि में फैल जाते हैं और शीतपित्त (पित्ती) उत्पन्न कर देते हैं । १ ।

पूर्वरूप

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम् ।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

शीतपित्त होने के पहले प्यास, अरुचि, उबकाई, देह में टूटने की सी पीड़ा तथा अंगों में भारीपन होता है और आँखें लाल हो जाती हैं । २ ।

शीतपित्त (उदर्द) के लक्षण

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः ।
सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ।
वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

त्वचा के ऊपर बर्र के काटने के समान चकत्ते पड़ जाते हैं, खुजली और सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है । रोगी के वमन, ज्वर और दाह होता है (यह तीनों दोषों के विकार से होता है । क्योंकि खुजली कफविकार का लक्षण है, सुई चुभाने की सी पीड़ा वातविकार का तथा वमन, ज्वर और दाह पित्तविकार के लक्षण हैं), इसे उदर्द कहते हैं । कुछ वैद्य इसी को शीत-पित्त कहते हैं, किन्तु इन दोनों में इतना भेद है कि शीत-पित्त वात की और उदर्द कफ की अधिकता से होता है । ३-४ ।

उदर्द के लक्षण

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ।
शशिरः कफजो व्याधिरुदर्द इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

चकत्तों का मध्यभाग नीचा हो, चकत्ते लाल हों, उनमें खुजली हो, इसे उदर्द कहते हैं। यह कफजरोग प्रायः सर्दी के दिनों में ही होता है। ५।

कोठ और उत्कोठ के निदान और लक्षण

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ।
उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शीतपित्तोदर्दकोठ-
निदानं समाप्तम् । ५० ।

वमनकारक औषध सेवन करने पर अच्छे प्रकार वमन न होने से, बढ़े हुए पित्त, या कफ अथवा वमन का वेग रोकने से देह में लाल-लाल बहुत-से चकत्ते पड़ जाते हैं, उनमें खुजली होती है उनको कोठ कहते हैं। कोठ निरनुबन्ध होते हैं, अर्थात् क्षण भर में उनकी उत्पत्ति और विनाश होता है—'क्षणिकोत्पादविनाशः कोठ इत्यभिधीयते तज्ज्ञैः।' और उत्कोठ सानुबन्ध होते हैं, अर्थात् बार-बार उत्पन्न होते हैं। ६।

अम्लपित्तनिदान

अम्लपित्त के निदान

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्त-
प्रकोपिपानान्नभजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्
तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अम्लपित्त के लक्षण

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

परस्पर विरुद्ध (मछली, दूध आदि), दूषित, अम्ल, विदाही और पित्त को कुपित करनेवाले पदार्थ खाने-पीने से पित्त कुपित होता है और अपने कारणों से संचित हुआ वह पित्त अम्लपित्त रोग उत्पन्न कर देता है। इसके लक्षण इस प्रकार होते हैं—भोजन का ठीक परिपाक नहीं होता, अनायास थकावट मालूम होती है, उबकाई, कड़वी और अम्ल डकारें आती हैं। देह में भारीपन रहता है, हृदय और कंठ में दाह होता है, अरुचि होती है, इन लक्षणों को देखकर वैद्य अम्लपित्त रोग निश्चित करते हैं। (इसमें वात और कफ का भी अनुबन्ध होता है, क्योंकि उद्गार वायु का और गुरुता कफ का लक्षण है)। १-२।

अधोगत अम्लपित्त

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि
प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।
हृल्लासकोठानलसादहर्ष-
स्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

अम्लपित्त की कदाचित् अधोगति होती है तो ये लक्षण प्रकट होते हैं:—प्यास, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, मोह तथा पीला, काला या लाल रंग का पित्त गुदा मार्ग से गिरता है और दुर्गन्ध हो, उबकाई, कोठ, मन्दाग्नि, रोमांच, पसीना और देह में पीलापन ये लक्षण अम्लपित्त की अधोगति होने पर प्रकट होते हैं। (सदा नहीं रहते, कभी-कभी होते हैं)। ३।

ऊर्ध्वगत अम्लपित्त

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्ण-
मारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम् ।

मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं
श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाऽप्यभुक्ते
करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित् ।
उद्गारमेवं विधमेव कण्ठ-
हृत्कुक्षिदाहं शिरसोरुजं च ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वगति अम्लपित्त में वमन का रंग हरा, पीला, नीला या कुछ लाल होता है। मांस के धोवन के समान अथवा अत्यन्त चिकना और स्वच्छ होता है। भोजन विदग्ध होने पर अथवा बिना भोजन किये ही तिक्त और अम्लपित्त वमन होता है। इसी प्रकार की डकारें भी आती हैं। हृदय, कंठ, कोख में जलन और सिर में पीड़ा होती है। ये लक्षण अम्लपित्त के हैं। ४-५।

कफ-पित्त के लक्षण

करचरणदाहमौष्ण्यं महतो-
मरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ।
जनयति कण्डूमण्डलपिडका-
शतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

हाथ-पाँव में जलन और बड़ी गर्मी मालूम होती है। भोजन में अत्यन्त अरुचि, ज्वर, देह में खुजली होती है, सैकड़ों फुंसियाँ निकलती हैं या चकत्ते पड़ जाते हैं। ऊपर कहे हुए अविपाक आदि रोगसमूह भी होते हैं। ये लक्षण कफ-पित्त के हैं। ६।

साध्यासाध्य अम्लपित्त

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात् संसाध्यते नवः ।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥७॥

यह अम्लपित्त का रोग यदि नया होता है तो यत्न करने से

साध्य हो सकता है। और पुराना होने पर असाध्य हो जाता है। यदि रोगी पथ्य आहार बिहार करनेवाला हुआ तो किसी का पुराना होने पर भी बहुत कष्ट से साध्य हो सकता है।

दोषसंसर्गज अम्लपित्त

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्।
दोषलिङ्गेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥८॥
कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि।
तमसोदर्शनविभ्रमविमोहहर्षाण्यनिलकोपात् ॥९॥
कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः।
दहनबलसादकण्डूनिद्राश्चिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥
उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले।
(तिक्ताम्लकटुकोद्गारहृत्कुक्षिकण्ठदाहकृत् ॥११॥)
भ्रमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽम्लपित्तनिदानं समाप्तम् ॥ ५१ ॥

वातयुक्त अम्लपित्त, वात-कफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त को बुद्धिमान् वैद्य दोषों के लक्षण देखकर पहचाने, क्योंकि यह रोग वैद्यों को छर्दि और अतीसार के भ्रम में डाल देता है। उनके लक्षण अलग-अलग बताते हैं—वातयुक्त अम्लपित्त में कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, अंगों में झुन-झुनाहट, अंगों में पीड़ा, अन्धकार-सा मालूम होना, भ्रम, मोह और रोमांच होता है। कफयुक्त अम्लपित्त में रोगी कफ थूकता है, देह में भारीपन और जड़ता होती है। अरुचि होती है, देह में टूटने की सी पीड़ा होती है, देह शीतल बनी रहती है, बमन होता है, मुँह में कफ भरा-सा रहता है, जठराग्नि और बल की क्षीणता होती है, देह में खुजली

होती है नींद अधिक आती है । वात-कफयुक्त अम्लपित्त में वात और पित्त दोनों के लक्षण प्रकट होते हैं। वात-कफयुक्त अम्लपित्त में (खट्टी कड़ुवी चरपरी डकारें आती हैं और हृदय, कोख और कंठ में जलन होती है) भ्रम, मूर्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिर में पीड़ा, मुँह से लार गिरना और मुँह में मिठास मालूम होना, ये लक्षण प्रकट होते हैं। ८-१२ ।

विसर्पनिदान

विसर्प के निदान

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः ।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥
पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पो द्वन्द्वजास्त्रयः ।
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ॥ २ ॥
एते विसर्पा चत्वार वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ।

द्वन्द्वज विसर्प के नाम

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः ॥३॥
यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसंभवः ।

नमकीन, खट्टे, कड़वे और गर्म आदि पदार्थ बहुत खाने-पीने से वातादि दोष कुपित होकर विसर्परोग उत्पन्न कर देते हैं । यह रोग देह भर में फैल जाता है, इसी से इसका नाम विसर्प है । विसर्परोग सात प्रकार का होता है:--वात की अधिकता से, पित्त की अधिकता से, कफ की अधिकता से, तीनों दोषों के प्रकोप से, वातपित्त से, वात-कफ से और पित्त-कफ से । वात, पित्त से जो विसर्परोग होता है उसे आग्नेय कहते हैं । वात-कफ से उत्पन्न विसर्प को ग्रन्थि तथा पित्त-कफ से उत्पन्न विसर्प को कर्दमक कहते हैं । १-३ ।

विसर्प के दोष-दूष्य

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥४॥
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ।

वातादि तीनों दोष, रुधिर, लसीका, त्वचा और मांस को जब दूषित कर देते हैं तो ऊपर कहे हुए सात प्रकार के विसर्पों की उत्पत्ति होती है। ये सात धातुएँ विसर्प की उत्पत्ति का कारण हैं। ४ ।

वातज विसर्प

तत्र वाताद्वि वीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥ ५ ॥
शोथस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्तिहर्षवान् ।

वातज विसर्प में वातज्वर के समान पीड़ा होती है। देह में शोथ, सुई चुभाने की सी पीड़ा, तोड़ने की सी पीड़ा, अनायास थकावट, रोमाञ्च और फड़कन होती है। ५ ।

पित्तज विसर्प

पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥ ६ ॥

पित्तज विसर्प में पित्तज्वर के समान लक्षण होते हैं। देह बहुत लाल हो जाती है, रोग बड़ी तेजी से दौड़ता है। ६ ।

कफज और सन्निपातज विसर्प

कफात् कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।
सन्निपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः ॥ ७ ॥

कफज विसर्प में कफज्वर के समान लक्षण होते हैं। देह में चिकनापन और खुजली होती है। सन्निपातज विसर्प में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। ७ ।

आग्नेय विसर्प के लक्षण

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ।
ग्रन्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ ८ ॥
करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् ।

यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत् स सः ॥ ६ ॥
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते ।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्‌द्रुतं स च ॥ १० ॥
मर्मानुसारी स्याद्वातोविसर्पोऽतिबलस्ततः ।
व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ ११ ॥
हिक्कां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना ।
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १२ ॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान् ।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥१३॥

वात-पित्त से जो विसर्प होता है उसमें ज्वर, वमन, अतीसार, मूर्च्छा, प्यास, भ्रम, सन्धियों में टूटन की सी पीड़ा, मन्दाग्नि, तमक और अरुचि होती है । सम्पूर्ण शरीर अंगार के समान हो जाता है । जिस-जिस स्थान में विसर्प फैलता है, वह स्थान बुझे हुए अंगार के समान काला, नीला अथवा लाल हो जाता है । आग से जले हुए के समान फोड़े निकलते हैं । जब यह विसर्प मर्मस्थानों (उदर और हृदय) में पहुँचता है और वात की अधिकता बहुत हो जाती है तो सब अंगों में पीड़ा होती है, संज्ञा और निद्रा नष्ट हो जाती है, श्वास और हिचकी आती है । वह रोगी पृथ्वी, शय्या या आसन पर कहीं भी शान्ति नहीं पाता । कोई अंग हिलने पर बड़ा कष्ट होता है । उसका मन और शरीर दोनों मोहित हो जाते हैं, जिससे बड़ी गहरी निद्रा (बेहोशी) आती है, जगाने पर भी नहीं जगता (अर्थात् मर जाता है) इसे आग्नेय विसर्प कहते हैं । ८-१३ ।

ग्रन्थिविसर्प के लक्षण

कफेन रुद्धः पवनो भित्वा तं बहुधा कफम् ।
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥१४॥

दूषयित्वा तु दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ।
ग्रन्थीनां कुरुते मालां सरक्तां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥१५॥
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ।
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ १६ ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ।

वृद्ध रक्तवाले मनुष्य के शरीर में अपने कारणों से कफ जब कुपित हो जाता है और वायु की गति को रोक देता है तो वायु कफ को भेदकर त्वचा, शिरा, स्नायु और मांसगत रुधिर में प्राप्त होकर उसको दूषित करके लम्बी अथवा छोटी, गोल, ऊँची, कठोर, लाल-लाल गाँठों की माला उत्पन्न कर देता है। उनमें बड़ी पीड़ा होती है। रोगी को ज्वर, श्वास, खाँसी, हिचकी, अतीसार, वमन, भ्रम, मोह, मूर्छा, अंगों में टूटने की सी पीड़ा होती है। मुँह सूखता है, देह विवर्ण हो जाती है। इसे ग्रन्थिविसर्प कहते हैं। यह कफ और वायु के प्रकोप से होता है। १४-१६।

कर्दमविसर्प के लक्षण

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥१७॥
अङ्गावसादविक्षेपौ प्रलापारोचकभ्रमाः ।
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् १८
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ।
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ १९ ॥
पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ।
स्निग्धोऽसितोमेचकाभो मलिनः शोथवान् गुरुः २०
गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ।
पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥ २१ ॥

शवगन्धी च विसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ।

कफ और पित्त के प्रकोप से जो विसर्प होता है उसमें ज्वर आता है, अंग जकड़ जाते हैं, निद्रा, तन्द्रा, शिर में और अंगों में पीड़ा, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मूर्छा, मन्दाग्नि, हड्फूटन, प्यास और इन्द्रियों में भारीपन होता है। मुँह और नाक में कफ भरा-सा रहता है। आम-दस्त होते हैं। यह विसर्प प्रायः आमाशय में उत्पन्न होता है (और वहीं स्थिर रहता है; क्योंकि आमाशय कफ-पित्त का स्थान है), पीड़ा अधिक नहीं होती। पीली या लाल फुन्सियाँ बहुत निकलती हैं। वे चिकनी, काली, नीली या मैले रंग की होती हैं। भारी शोथ होता है, भीतर से पकता है, बड़ी जलन होती है, दबाने से आर्द्र हो जाता और फट जाता है। मांस गल जाता है और कीचड़ के समान हो जाता है। उसमें नसें और स्नायु दीखने लगती हैं। उसमें मुर्दे की सी दुर्गन्ध आती है। इसे कर्दमविसर्प कहते हैं। १७-२१।

क्षतविसर्प के लक्षण

बाह्यहेतोः क्षतात् क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥२२॥
विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ।
स्फोटैःशोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥२३॥
ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः ।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २४ ॥

बाह्य कारणों से क्षतजविसर्प होता है। देह में जब कहीं घाव हो जाता है तो वायु कुपित होकर पित्त और रुधिर को प्रेरित करके विसर्प पैदा कर देता है। कुलथी के समान फोड़े निकलते हैं, शोथ, ज्वर, पीड़ा और दाह होता है। रंग काला पड़ जाता है। ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचा और मांस का फटना, अनायास थकावट मालूम होना, अरुचि, अन्न का ठीक परिपाक न होना, ये विसर्प के उपद्रव हैं। (क्षतविसर्प के शेष लक्षण पित्तविसर्प के समान होते हैं, अतएव पित्तविसर्प के अन्तर्गत मानने से संख्या नहीं बढ़ती)। २२-२४।

साध्यासाध्य विसर्प

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥२५॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विसर्पनिदानं समाप्तम् ॥ ५२ ॥

वात, पित्त अथवा कफ, एक दोष से उत्पन्न हुआ विसर्प साध्य होता है । सन्निपातज और क्षतज विसर्प असाध्य होते हैं । पित्तज विसर्प (आग्नेय विसर्प) में यदि शरीर काजल के समान काला हो जाय तो असाध्य हो जाता है, तथा मर्मस्थानों में उत्पन्न विसर्प कष्ट-साध्य होते हैं । भोज ने मर्मज विसर्प को भी असाध्य कहा है । २५ ।

विस्फोटनिदान

विस्फोटक के निदान

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्ष-
क्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण
कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् २

कड़वे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, रूखे और खारे पदार्थ अधिक खाने-पीने से, अजीर्ण रहने से, भोजन पचे विना फिर भोजन करने से, धूप में बहुत तपने से, ऋतुओं के दोष से, ऋतुओं के परिवर्तन में वातादि दोष कुपित हो जाते हैं और त्वचा में आश्रित होकर रुधिर, मांस और अस्थियों को दूषित करके दारुण विस्फोट (फोड़े) उत्पन्न कर देते हैं । इसमें पहले ज्वर आता है । १-२ ।

विस्फोटक के सामान्य लक्षण

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ३ ॥

वातिक विस्फोट के लक्षण

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरस्तृट् पर्वभेदनम् ।
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

पैत्तिक विस्फोट के लक्षण

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

श्लैष्मिक विस्फोट के लक्षण

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ।
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

द्वन्द्वज विस्फोट के लक्षण

वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ।
कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ७ ॥
कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ।

रक्त-पित्त के विकार से जो विस्फोट होता है, उसमें ज्वर के साथ आग से जले हुए के समान देह भर में अथवा किसी स्थान में फोड़े निकलते हैं (इसमें वात का भी अनुबन्ध होता है) ।

वातज विस्फोट में शिर में पीड़ा, देह भर में अत्यन्त पीड़ा, ज्वर, प्यास और सन्धियों में टूटने की सी पीड़ा होती है । रंग काला होता है । ३–४ ।

पित्तज विस्फोट में ज्वर, दाह, पीड़ा, स्राव, फोड़ों का पकना और प्यास होती है, रंग पीला या लाल होता है । ५ ।

कफज विस्फोट में वमन, अरुचि और देह में जड़ता होती है फोड़े कठोर होते हैं और खुजली होती है । रंग कुछ हलके पीले रंग

का हो जाता है। फोड़े देर में पकते हैं और पीड़ा कम होती है। ६।

वात-पित्त से जो विस्फोट होता है, उसमें तीव्र वेदना होती है। कफ-वात से जो विस्फोट होता है, उसमें खुजली, आर्द्रता और भारीपन होता है। कफ-पित्त से उत्पन्न विस्फोट में खुजली, दाह, ज्वर और वमन होता है। ७।

सन्निपातज के लक्षण

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥८॥
दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजाज्वराः ।
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यः स्यात्त्रिदोषजः ९

जिस विस्फोट का मध्यभाग कुछ नीचा और चारों ओर ऊँचा हो, विस्फोट कठिन हो और थोड़ा पके, जलन हो, देह कुछ लाल हो जाय, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीड़ा, ज्वर, प्रलाप, कम्प और तन्द्रा हो, वह त्रिदोषज विस्फोट है। यह असाध्य होता है। ८-९।

रक्तज विस्फोट के लक्षण

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि ।

विस्फोट के साध्य असाध्य लक्षण

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विस्फोटनिदानं समाप्तम् ॥ ५३ ॥

जो विस्फोट लाल रंग के निकलें और घुँघची या मूँगा के समान लाल बने रहें तो रुधिर-पित्त के प्रकोप से समझना चाहिए। सैकड़ों अनुभूत औषधियाँ देने पर भी वे साध्य नहीं होते। १०।

एक दोष से उत्पन्न विस्फोट साध्य होता है। द्वन्द्वज कष्टसाध्य और बहुत उपद्रवों से युक्त त्रिदोषज विस्फोट दारुण और असाध्य होता है। ११।

मसूरिकानिदान

मसूरिका के निदान और संप्राप्ति

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः।
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥
क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः ॥ २ ॥
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकाः स्युर्मसूरिकाः।

मसूरिका का पूर्वरूप

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रमः ॥ ३ ॥
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागश्च जायते।

कड़वे, खट्टे, नमकीन और खारी पदार्थ बहुत खाने से, विरुद्ध भोजन करने से, भोजन पचे बिना फिर भोजन करने से, दूषित शाक, अथवा दूषित लोबिया और उरद खाने से, दूषित वायु में रहने से, दूषित जल पीने से, देश के क्रूरग्रहों की दृष्टि पड़ने से, वातादि दोष कुपित होकर, दूषित रुधिर से मिलकर (कड़वे तीखे आदि पदार्थ खाने से रुधिर भी दूषित हो जाता है) देह में मसूर के (मूँग आदि के समान) आकार की फुंसियाँ उत्पन्न कर देते हैं। पूर्वरूप—फुन्सियाँ निकलने के पहले ज्वर आता है, खुजली होती है, देह में टूटने की सी पीड़ा होती है, कहीं चैन नहीं पड़ती, भ्रम होता है, त्वचा में सूजन हो जाती है, देह विवर्ण और नेत्र लाल हो जाते हैं। १-३।

टिप्पणी—क्रूरग्रहों की दृष्टि पड़ने का आशय है शनैश्चर के चौथे आठवें, बारहवें घर में आने से मसूरिका हो जाती है। इसी प्रकार राहु केतु आदि के विषय में समझिए। यह ज्योतिषशास्त्र का विषय है।

वातज मसूरिका

स्फोटाः श्यावारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः॥४॥

कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ।
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः ५॥
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ।

वातज मसूरिका काली या लाल, रूखी और कठोर होती हैं। पीड़ा बहुत होती है, देर में पकती हैं । जोड़ों और हड्डियों में टूटने की-सी पीड़ा होती है। खाँसी आती है । देह में कम्प, बेचैनी और अनायास थकावट मालूम होती है । तालु, जीभ और ओष्ठ सूखते हैं। प्यास और अरुचि होती है। ४-५ ।

पित्तज मसूरिका

रक्ताः पीतासिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥६ ॥
भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ।
विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा ॥७॥
मुखपाकोऽक्षिरागश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।

पित्तज मसूरिका लाल, पीली या काली होती हैं। उनमें पीड़ा और जलन बहुत होती है। शीघ्र पक जाती हैं। मलभेद, अंगों में टूटने की-सी पीड़ा, दाह, प्यास, अरुचि, मुख का पकना, आँखों का लाल होना और बड़े वेग से ज्वर आना, ये उपद्रव पित्तज मसूरिका में होते हैं। ६–७।

रक्तज मसूरिका

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

रक्तज मसूरिका में भी पित्तज मसूरिका के सब लक्षण प्रकट होते हैं। ८।

कफज मसूरिका

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ।
हृल्लासः सारुचिर्निद्रातन्द्रालस्यसमन्विताः ॥ ९ ॥

श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः ।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥१०॥

कफज मसूरिका में मुँह से कफ निकलता है, देह गीले कपड़े से पोंछी हुई सी मालूम देती है, सिर में पीड़ा और देह में भारीपन रहता है। उबकाई, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य, ये उपद्रव होते हैं। मसूरिका सफ़ेद, चिकनी और स्थूल होती हैं। उनमें खुजली होती है, पीड़ा कम होती है और देर में पकती हैं। ९-१०।

सन्निपातज मसूरिका

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः ।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥११॥
कण्ठरोधारुचिस्तम्भप्रलापारतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः १२

त्रिदोषज मसूरिका नीली, चपटी, फैली हुई और बीच में बैठी हुई होती हैं। उनमें अत्यन्त पीड़ा होती है, देर में पकती हैं, उनसे पीब बहुत निकलता है। मुर्दे की सी गंध आती है। गला रुँध जाता है। अरुचि, देह में जड़ता, प्रलाप, शान्ति न मिलना, ये उपद्रव होते हैं, इनको चर्मदल भी कहते हैं। ये असाध्य होती हैं। ११-१२।

रोमांतिक के लक्षण

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

रोमकूप के उभार के समान बहुत छोटी लाल रंग की मसूरिका कफ और पित्त के प्रकोप से होती हैं। इनके निकलने पर खाँसी और अरुचि होती है। निकलने के पहले ज्वर आता है। इनको रोमांतिका कहते हैं। १३।

रसधातुगत मसूरिका

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः ।

स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च १४

रसगत मसूरिका पानी के बुलबुले के समान होती हैं, फूटने पर उनसे पानी बहता है। ये अल्प दोषों से होती हैं, इसलिए साध्य होती हैं। त्वक् शब्द से यहाँ रसधातु का ग्रहण है। १४।

रुधिरगत मसूरिका

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च १५

रुधिरगत मसूरिका बहुत लाल होती हैं, शीघ्र पक जाती हैं। उनके ऊपर की खाल पतली होती है। फूटने पर उनसे रुधिर बहता है। ये साध्य होती हैं, किन्तु यदि रुधिर अत्यन्त दूषित हो जाता है तो असाध्य हो जाती हैं। १५।

मांसगत मसूरिका

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाका घनत्वचः ।
गात्रशूलतृषाकण्डूज्वरारतिसमन्विताः ॥ १६ ॥

मांसगत मसूरिका कठोर और चिकनी होती हैं, उनके ऊपर की खाल मोटी होती है। देर में पकती हैं। उनके निकलने पर देह में पीड़ा, प्यास, खुजली, ज्वर और बेचैनी होती है। १६।

मेदोगत मसूरिका

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किंचिदुन्नताः ।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥१७॥
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ।

मेदोगत मसूरिका मंडलाकार होती हैं। कोमल, कुछ ऊँची, मोटी और चिकनी होती हैं। उनमें पीड़ा अधिक होती है और दारुण ज्वर आता है। मन और इंद्रियाँ मूर्च्छित हो जाती हैं, बेचैनी और जलन होती है। ये असाध्य होती हैं। इनके निकलने पर बहुत कम लोग बचते हैं। १७।

अस्थिमज्जागत मसूरिका

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः ॥१८॥
मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ।
छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति हि ॥१९॥
भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ।

मज्जागत मसूरिका बहुत छोटी होती हैं। देह के समान वर्णवाली, रूखी, चिपटी और कुछ ऊँची होती हैं। अत्यन्त मूर्च्छा, पीड़ा और बेचैनी रहती है। मर्मस्थानों का छेदन कर देती हैं। ऐसा मालूम होता है, मानों देह भर की अस्थियों में भौंरे काट रहे हैं। इसमें शीघ्र ही प्राण नष्ट हो जाते हैं। १८-१९।

टिप्पणी—दोनों में में सामान्यतया ये लक्षण पाये जाते हैं। भ्रमरेणेव आदि अर्थात् हड्डियों को भौंरे काट रहे है। ये लक्षण विशेषतः अस्थिगत मसूरिका के हैं।

शुक्रगत मसूरिका

पक्वाभाः पिडकाः स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः २०
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ।
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि ॥२१॥
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम् ।
दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥२२॥

शुक्रगत मसूरिका सूक्ष्म, चिकनी और पकी हुई के समान होती हैं। अत्यन्त पीड़ा होतो है। देह गीली, गीले कपड़े से पोंछी हुई सी मालूम देती है। बेचैनी, मूर्च्छा, दाह और उन्माद होता है। इसके केवल चिह्न बताये गये हैं, किन्तु इसकी कोई चिकित्सा नहीं है। इसमें रोगी नहीं बचता।

ऊपर जो सप्तधातुगत मसूरिका के लक्षण बताये गये हैं, उनमें, वातादि दोष भी मिले होते हैं, अतएव दोषों के लक्षण भी देखना चाहिए। दोषों के प्रकोप के बिना धातुएँ दूषित नहीं होतीं। २०-२२।

साध्यासाध्य विचार

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजा : श्लेष्मजास्तथा ।
श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिका: ॥२३॥

रसगत मसूरिका तथा रक्तजा, पित्तजा कफजा और कफ-पित्तजा सुखसाध्य होती हैं और अन्य सब कष्टसाध्य हैं । २३ ।

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः ।
कृच्छ्रसाध्यतमास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २४ ॥

वातजा, वात-पित्तजा, वात-कफजा और कफ-वातजा अत्यन्त कष्ट-साध्य होती हैं । बड़ी सावधानी से इनकी चिकित्सा करनी चाहिए । २४ ।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
प्रवालसदृशाः काश्चित् काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥२५॥
लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसंनिभाः ।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २६ ॥

तीनो दोषों से उत्पन्न मसूरिका असाध्य होती हैं, उनके लक्षण बताते हैं । इनमें कोई मूँगे के समान लाल, कोई जामुन के समान और कोई लोह की गोली के समान काली होती है । किसी का वर्ण अलसी के फल के समान होता है । दोषों के भेद से इनके कितने ही रंग होते हैं । २५-२६ ।

असाध्य मसूरिका

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।
प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥२७॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ।
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थवेदनम् ॥ २८ ॥
मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः ।
लक्षणानि च दृश्यन्ते न दद्यादत्र भेषजम् ॥ २९ ॥

खाँसी, हिचकी, बेहोशी, तेज ज्वर, प्रलाप, बेचैनी, मूर्छा, प्यास, दाह, नेत्रों का टेढ़ा होना, मुँह, नाक और आँखों से रुधिर का निकलना, श्वास लेने के साथ गले में घुरघुराहट और अत्यन्त पीड़ा, ये लक्षण मसूरिका के जिस रोगी के हों, उसे असाध्य समझ कर वैद्य को उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। २७-२९।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्।
स भृशं त्यजति प्राणान् तृषार्तो वायुदूषितः॥३०॥

जो मसूरिका का रोगी नाक से बहुत जल्दी-जल्दी श्वास ले, प्यास बहुत लगे, वह वायु के दूषित होने के कारण नहीं बच सकता। ३०।

मसूरिका के उपद्रव

मसूरिकान्ते शोथः स्यात् कर्पूरे मणिबन्धके।
तथांसफलके चापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥३१॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मसूरिकानिदानं समाप्तम्॥ ५४॥

मसूरिका के अन्त में रोगी की कोहनी, मणिबन्ध (कलाई) और कन्धों के ऊपर यदि शोथ हो तो यह भयङ्कर कष्टसाध्य होता है। ३१।

क्षुद्ररोगनिदान

अजगल्लिका के लक्षण

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंनिभाः।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः॥ १॥

बालकों के कफ और वायु के प्रकोप से मूँग के समान चिकनी और गाँठ सी बँधी हुई देह के ही वर्ण के समान फुंसियाँ निकलती हैं। उनको अजगल्लिका कहते हैं। १।

टिप्पणी—यह प्रायः बालकों के ही होती हैं। कभी-कभी युवाओं के भी देखी जाती हैं।

यवप्रख्या के लक्षण

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।
पिडका कफवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ २ ॥

कफ और वायु के ही प्रकोप से जौ के आकार की फुंसियाँ निकलती हैं। वे भी गाँठ के समान होती हैं, मांस के आश्रय से निकलती हैं और कठोर होती हैं। उनको यवप्रख्या कहते हैं। २।

अन्त्रालजी के लक्षण

घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमण्डलाम् ।
अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

कफ और वात से कठोर, ऊँची और चक्कदार फुंसियाँ निकलती हैं, उनमें बाहर को ओर मुँह नहीं होता। इनमें बहुत थोड़ी पीव होती है। इन्हें अन्त्रालजी कहते हैं (भोज ने अन्त्रालजी पिडका को स्नायुगत कहा है)। ३।

विवृता के लक्षण

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसंनिभाम् ।
विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥४ ॥

यह पिडका पित्त के प्रकोप से निकलती है, पके गूलर के समान लाल होती है। उसमें बड़ी जलन होती है। घेरा भी उसका बड़ा होता है और फूटने पर उसका मुँह भी बड़ा होता है। इसे विवृता कहते हैं। ४।

कच्छपिका के लक्षण

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोपमाः ।
कफानिलाभ्यां पिडका ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः॥ ५ ॥

कफ और वायु के प्रकोप से, कछुए के आकार की पाँच या छः कछुए के समान कठोर पिडका निकलती हैं। इनको कच्छपिका कहते हैं। ५।

वल्मीक के लक्षण

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे
सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ।
ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां
जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ६ ॥
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भि-
र्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं
निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ७ ॥

अपथ्य आचरण करनेवाले मनुष्यों के ग्रीवा में, कन्धों में, बगल में, हाथ या पाँव में, किसी भी जोड़ में अथवा कंठ में तीनों दोषों के प्रकोप से बामी के समान शिखराकार ग्रन्थि निकलती है और उपचार न करने से क्रमशः बढ़ती है। उसका अग्रभाग ऊँचा हो, फूटने पर अनेक मुँह हो जायँ, सुई चुभाने की की सी पीड़ा हो, विसर्प के समान फैले, उसे वल्मीक कहते हैं। यह असाध्य होती है। पुरानी तो विशेष रूप से असाध्य होती है। ६-७।

इन्द्रविद्धा के लक्षण

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम् ।
इन्द्रविद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥८॥

वात और पित्त के विकार से यह पिडका निकलती है। इसके चारो ओर कमल की केसर के समान छोटी-छोटी बहुत-सी फुंसियाँ निकलती हैं। इस पिडका को इन्द्रविद्धा कहते हैं। ८।

गर्दभिका के लक्षण

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडकाचितम् ।
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥९॥

वात और पित्त के विकार से मंडलाकार तथा गोल और ऊँची ग्रन्थि निकलती है। इसके पास बहुत सी लाल-लाल फुंसियाँ होती हैं। इसमें पीड़ा बहुत होती है। इसे गर्दभिका कहते हैं। ६।

पाषाणगर्दभ के लक्षण

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः।१०।

वात और कफ के प्रकोप से ठोढ़ी की सन्धि में पत्थर के समान कठोर शोथ होता है। वह चिकना और स्थिर होता है। पीड़ा कम होती है। इसे पाषाणगर्दभ कहते हैं। १०।

पनसिका के लक्षण

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम्।
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम्।११।

वात और कफ के प्रकोप से कान के भीतर स्थिर फुंसी निकलती है। उसमें पीड़ा बहुत होती है। इसे पनसिका कहते हैं। ११।

जालगर्दभ के लक्षण

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान्।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः॥ १२॥

पित्त के प्रकोप से हलका शोथ होता है। यह पकता नहीं, किन्तु विसर्प के समान फैलता है। इसमें दाह और ज्वर होता है। इसे जालगर्दभ कहते हैं। १२।

टिप्पणी—चक्रदत्त ने "अपाकवान्" का अर्थ ईषत्पाकवान् किया है, क्योंकि पित्तकृत होने से पाक का सर्वथा अभाव अयुक्त है। भोज ने इसकी उत्पत्ति तीनों दोषों से और पित्त की उल्बणता से बताई है।

इरिवेल्लिका के लक्षण

पिडकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।
सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् १३॥

तीनों दोषों के प्रकोप से सिर गोल पिडका निकलती है। इसमें बहुत पीड़ा होती है, ज्वर आता है, तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। इसे इरिवेल्लिका कहते हैं। १३।

कक्षा के लक्षण

बाहुपार्श्वांसकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्।
पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

पित्त के प्रकोप से बाहु, पसली, कन्धे और काँख में फोड़ा निकलता है। यह काले रंग का होता है, इसमें पीड़ा बहुत होती है। इसे कक्षा कहते हैं। १४।

गन्धमाला के लक्षण

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसंनिभाम्।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ १५ ॥

फोड़े के समान एक छोटी पिडका निकलती है। यह त्वचा के आश्रित होती है, पित्त के ही प्रकोप से यह भी निकलती है। इसे गन्धमाला कहते हैं। १५।

अग्निरोहिणी के लक्षण

कक्षभागेषु यः स्फोटः जायते मांसदारणः।
अन्तर्दाहज्वरकरो दीप्तपावकसंनिभः ॥ १६ ॥

सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम्।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सर्वदोषजाम् ॥१७॥

काँख में या उसके आसपास मांस को विदीर्ण करनेवाला अंगार के समान लाल-लाल फोड़ा निकलता है। इसमें ज्वर और अन्तर्दाह होता है। यह तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता है (आरम्भ से ही चिकित्सा न करने पर असाध्य होता है)। यदि वात की अधिकता होती है तो सात दिन में, पित्त की अधिकता से दस दिन में और कफ की अधिकता से पन्द्रह दिन में रोगी मर जाता है। इसे अग्निरोहिणी कहते हैं। १६-१७।

चिप्प और कुनख के लक्षण

नखमांसमधिष्ठाय वायुः पित्तं च देहिनाम् ।
कुर्वातेदाहपाकौ चतं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ।।१८।।
तदेवाल्पतरैर्दोषैः परुषं कुनखं वदेत् ।। १६ ।।

कुपित वायु और पित्त नख के मांस में प्राप्त होकर उस स्थान को पका देते हैं। उसमें दाह होता है। इस व्याधि को चिप्प कहते हैं। अगर यह अल्प दोषों से होती है और कठोर होती है तो इसे कुनख कहते हैं। १८-१६।

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत ने चिप्प के लक्षण में पाठान्तर मानकर दाह और पाक के साथ-साथ वेदना होना भी माना है। और कुनख में कृष्णता और रूक्षता दो लक्षण और भी कहे हैं। कुनख का दूसरा नाम कुलीन भी कहा है।

अनुशयी के लक्षण

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् ।
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तः प्रपाकिनीम् २०।।

पाँव में अल्प शोथ होता है। उसका रंग पाँव के ही समान रहता है, भीतर से पकता है, इसलिए गम्भीर होता है। इसे अनुशयी कहते हैं। २०।

विदारी के लक्षण

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्क्षणसन्धिषु ।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ।। २१ ।।

काँख और वंक्षण की सन्धियों में तीनों दोषों के प्रकोप से विदारीकन्द के समान गोल और लाल पिडका निकलती है। इसे विदारिका कहते हैं। इसमें सब दोषों के लक्षण मिलते हैं। २१।

शर्करा के लक्षण

प्राप्य मांसशिरास्नायुः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः ।
ग्रन्थि करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ।।२२।।

स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ।
मांसं संशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २३ ॥
दुर्गन्धिक्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ।
स्रवन्ति रक्तं महसा तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥२४॥

कुपित कफ और वायु मांस, शिरा, मेद और स्नायु में प्राप्त होकर गाँठ के समान पिडका उत्पन्न कर देते हैं। वह जब फूटती है तो मधु, घी अथवा चरबी के समान स्राव होता है। इसके बाद वायु वृद्धि को प्राप्त होकर मांस को सुखाकर एक गाँठ उत्पन्न कर देता है। इसे शर्करा कहते हैं। बाद में इसी शर्करा की शिराओं से लाल, पीला, काला अनेक रंग के क्लेदयुक्त दुर्गन्धित रुधिर का स्राव होने लगता है। उसे शर्करार्बुद कहते हैं। २२-२४।

पाददारी के लक्षण

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ।
पादयोः कुरुते दारीं पाददारीं तमादिशेत् ॥२५॥

जो मनुष्य हमेशा चला करता है, उसके पाँवों को वायु अत्यन्त रूक्ष कर देता है। इसलिए पैरों की खाल फट जाती है। इसे पाद-दारी कहते हैं। २५।

टिप्पणी—कुष्ठ के भेद विपादिका से इसमें यही भेद है कि इसमें कुष्ठ के कोई भी लक्षण नहीं होते।

कदर के लक्षण

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं हि तत् ॥२६॥

पैर में कंकड़-पत्थर या काँटा आदि गड़ जाने से बेर के समान ऊँची गाँठ निकल आती है। इसे कदर (गोखुरू) कहते हैं। २६।

टिप्पणी—भोज का कहना है कि यह व्याधि हाथों में भी होती है। कुपित वात और कफ हाथ-पैर में गंभीर एवं कठोर मांसकील उत्पन्न कर देते हैं। उस मनुष्य को वह स्थान ऐसा मालूम देता है मानो इसके भीतर कोई शल्य है। इस रोग को कई आचार्य शर्कराकदर और कई वातकण्टक कहते हैं।

अलसक के लक्षण

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २७ ॥

दूषित कीचड़ लगने से पाँव की अँगुलियों के बीच में खुजली, जलन और पीड़ा होने लगती है। अँगुलियाँ गीली रहने से यह व्याधि होती है। २७।

टिप्पणी—यह कफ और रुधिर के विकार से होता है, क्योंकि खुजली कफ का तथा दाह और पीड़ा रुधिर का लक्षण है। लोक में इसे 'खारुहा', 'पाकुया' और 'ओटी' कहते हैं।

इन्द्रलुप्त के लक्षण

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः २८ ॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसंभवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभाव्यते ॥२९॥

वात और पित्त कुपित होकर जब रोमकूपों में प्राप्त होते हैं तो रोएँ गिर जाते हैं। उसके बाद कफ और रुधिर के दोष से रोमकूप अवरुद्ध हो जाते हैं, इसलिए फिर वहाँ दूसरे रोएँ नहीं निकलते। इसे इन्द्रलुप्त, खालित्य अथवा रुह्य कहते हैं। २८-२९।

टिप्पणी—विदेह का कहना है कि यह व्याधि स्त्रियों को नहीं होती, क्योंकि स्त्रियाँ व्यायाम नहीं करतीं, अतएव वात-पित्त का प्रकोप न होने से रोएँ नहीं गिरते। और मासिक रजोस्राव होने से रुधिर का विकार नहीं होता, इसलिए यदि रोएँ गिरते भी हैं तो रोमकूप अवरुद्ध नहीं होते और रोएँ फिर निकल आते हैं। कार्त्तिक का कहना है कि कि इन्द्रलुप्त दाढ़ी में होता है, खालित्य सिर में और रुह्य देह भर में होता है, किन्तु इसका प्रमाण अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता।

दारुणक के लक्षण

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते ।
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३० ॥

कफ और वायु के प्रकोप से केशों के स्थान में खुजली और रूक्षता हो जाती है, त्वचा कठोर हो जाती है। इसे दारुणक कहते हैं। ३०।

टिप्पणी—विदेह के मत से इस व्याधि में पित्त और रुधिर का भी अनुबन्ध होता है। जैसे पाटल की सी कान्तिवाला पीड़ा युक्त कठोर सिर की त्वचा में उत्पन्न होता है। इसमें वायु से तोद, कफ से खुजली और पित्त तथा रक्त से पिपासा, दाह और लाली होती है।

अरूंषि के लक्षण

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्ध्नि तु।
कफासृक्क्रिमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम्॥३१॥

कफ, रुधिर और क्रिमियों (कीड़ों) के प्रकोप से सिर में छोटी-छोटी फुंसियाँ निकलती हैं। उनसे स्राव होता है और गीली बनी रहती हैं। इनको अरूंषिका कहते हैं। ३१।

पलित के लक्षण

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते॥३२॥

बहुत क्रोध, शोक और परिश्रम करने से उत्पन्न शरीर की ऊष्मा और पित्त सिर में प्राप्त हो जाता है, जिससे केश पक जाते हैं। इसे पलित कहते हैं। ३२।

युवानपिडका के लक्षण

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः।
युवानपिडका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः॥३३॥

कफ, वायु और रुधिर के विकार से युवा पुरुषों के मुख पर सेमर के काँटे के समान फुन्सियाँ निकलती हैं। इन्हें युवानडिका कहते हैं। इनके निकलने से मुख की कान्ति नष्ट हो जाती है। ३३।

टिप्पणी—ये पिडकाएँ जवानी के प्रारम्भ में ही होती हैं। इनका सम्बन्ध वीर्य से भी मानते हैं। क्योंकि जिनको जल्दी ही सम्भोग का अवसर मिल जाता है उनके कम होती हैं या नहीं भी होती हैं। १७ से २२ वर्ष तक की आयु में प्रायः होती हैं। कच्ची फोड़ने पर पीड़ा और

शोथ होता है। पकने पर फोड़ने से उनमें एक सफ़ेद सी कील निकलती है जिससे १-२ दिन में पिडका शान्त हो जाती है। यदि पकने पर भी वह कील न निकाली जाय तो वह सूखकर काली हो जाती है और चेहरे को अधिक कुरूप कर देती है। किसी-किसी को तो वीर्य की कमी होने से संभोग करते रहने पर भी बहुत होती हैं। ये दोष के कारण होती हैं।

पद्मिनीकटक के लक्षण

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डुकण्डुरम्।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥३४॥

कफ और वायु के प्रकोप से एक गोल पीला चकत्ता पड़ जाता है। उसमें खुजली होती है और उसके आसपस कुछ काँटे से निकलते हैं। इसे पद्मिनीकंटक कहते हैं। ३४।

जतुमणि के लक्षण

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम्।
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ॥३५॥

कफ और रुधिर के विकार से कुछ ऊँचा, देह के ही समान रंग का मंडल पड़ जाता है। इस लक्षण को कुछ आचार्य अंगभेद से शुभाशुभ फल का सूचक बताते हैं। यह जन्म से ही होता है। इसे जतुमणि, लक्ष्म अथवा लक्ष्य (लहसन) कहते हैं। इसमें पीड़ा नहीं होती। ३५।

मषक के लक्षण

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं तु तत् ॥ ३६ ॥

वायु के प्रकोप से (कफ और मेद दूषित होने से) उरद के समान काला ऊँचा मस्सा निकलता है। उसमें पीड़ा नहीं होती; निश्चल रहता है। इसे मषक (मस्सा) कहते हैं। ३६।

तिलकालक के लक्षण

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च।
वातपित्तकफोच्छोषात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥३७॥

वात-पित्त की अधिकता के कारण कफ सूख जाने से तिल के बराबर काले दाग त्वचा के ऊपर पड़ जाते हैं, इनमें पीड़ा नहीं होती। ये उभरे न होकर त्वचा के समान धरातल से होते हैं। इनको तिलकालक कहते हैं। ३७।

न्यच्छ के लक्षण

महद्वा यदि वा चाल्पं श्यावं वा यदि वाऽसितम्।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥३८॥

देह में छोटे या बड़े, काले अथवा नीले चकत्ते से पड़ जाते हैं। इनमें भी पीड़ा नहीं होती। इनको न्यच्छ या लच्छन कहते हैं। (ये भी जन्मकाल से ही होते हैं। भोज का मत है कि पित्तरक्तयुक्त वायु के विकार से ये होते हैं)। ३८।

व्यंग के लक्षण

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः॥ ३९ ॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्।

क्रोध अथवा परिश्रम के कारण कुपित हुआ वायु पित्त के साथ मिलकर मुख के ऊपर काले रंग का एक मंडल-सा बना देता है। इसमें भी पीड़ा नहीं होती। इसे व्यंग (झाईं) कहते हैं। ३९।

नीलिका के लक्षण

कृष्णमेवं गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥४०॥

इन्हीं कारणों से और इसी प्रकार का नीले रंग का मंडल देह में अथवा मुँह के ऊपर हो जाता है। इसे नीलिका कहते हैं। ४०।

परिवर्तिका के लक्षण

मर्दनात् पीडानाद्वाऽति तथैवाप्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्॥ ४१ ॥
तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्तते।

मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ ४२ ॥
सरुजां वातसंभूतां तां विद्यात् परिवर्तिकाम् ।
सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥४३॥

लिङ्गेन्द्रिय को बहुत खुजलाने से अथवा बहुत दबाने से या उसमें किसी प्रकार की चोट लगने से मणि के ऊपर की खाल में व्यान वायु प्राप्त हो जाता है, जिससे वह खाल सूजकर गाँठ के समान मणि के नीचे लटक जाती है। इसमें पीड़ा होती है। यह वात के प्रकोप से होती है। इसे परिवर्तिका कहते हैं। यदि कफ का सम्बन्ध होता है तो शोथ कठोर होता है, और उसमें खुजली होती है (पित्त के सम्बन्ध से दाह होता है)। ४१-४३।

अवपाटिका के लक्षण

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥४४॥
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ।

जिस कन्या को मासिकधर्म न हुआ हो, उसकी योनि का छिद्र छोटा होता है, उसके साथ बलपूर्वक मैथुन करने से लिंग की त्वचा फट जाती है अथवा हाथ से बलपूर्वक त्वचा को ऊपर चढ़ाने से त्वचा फट जाती है। उसे अवपाटिका कहते हैं। ४४।

टिप्पणी—वात आदि दोषों की बहुलता के अनुसार अलग-अलग लक्षण भी होते हैं।

निरुद्धप्रकश के लक्षण

वातोपसृष्टे मेढ्रे वै चर्म संश्रयते मणिम् ॥ ४५ ॥
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ।
निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम् ॥ ४६ ॥
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ।
निरुद्धप्रकशं विद्यात् सरुजं वातसंभवम् ॥ ४७ ॥

लिङ्ग में वायु का प्रकोप होने से मणि के ऊपर की त्वचा सूख जाती है। त्वचा के संकोच से मूत्र का मार्ग रुक जाता है, इसे निरुद्धप्रकश कहते हैं। मूत्र का मार्ग रुक जाने से मूत्र मन्दधार से निकलता है। यह वायु के प्रकोप से होता है। मणि खुल नहीं सकती और पीड़ा होती है। ४५-४७।

टिप्पणी—अन्य आचार्यों के मत से इसमें अन्य दोष भी बाद में सम्मिलित हो जाते हैं और उन दोषों के लक्षण भी होते हैं।

सन्निरुद्धगुद के लक्षण

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः।
निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥४८॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात् सुदारुणम् ॥४९॥

मल और अपानवायु का वेग रोकने से गुदा में स्थित वायु कुपित होकर गुदा का मार्ग अवरुद्ध कर देती है। गुदा का द्वार सूक्ष्म हो जाने से बड़े कष्ट से मल निकलता है। इस दारुण व्याधि को सन्निरुद्धगुद कहते हैं। ४८-४९।

अहिपूतन के लक्षण

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा ५०॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५१ ॥

बालकों की गुदा यदि अच्छे प्रकार धोई नहीं जाती तो उसमें मल-मूत्र और पसीना लगा रहने से, कफ और रुधिर के प्रकोप से खुजली होने लगती है। खुजलाने से फुंसियाँ निकल आती हैं, उनसे स्राव होता है, बहुत से व्रण हो जाते हैं। इस दारुण व्याधि को अहिपूतन कहते हैं। ५०-५१।

वृषणकच्छू के लक्षण

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ।
यदाप्रक्लिद्यते स्वेदात् कण्डूं जनयते तदा ॥५२॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥५३॥

स्नान न करने से, अण्डकोष को अच्छी तरह न धोने से, अण्डकोष के ऊपर मैल जम जाता है और जब पसीना आता है तब वह फूलता है और खुजली होने लगती है। खुजलाने से फुंसियाँ निकलती हैं और उनसे स्राव होता है। इसे वृषणकच्छू कहते हैं। यह कफ और रुधिर के प्रकोप से होता है। ५२-५३।

गुदभ्रंश के लक्षण

प्रवाहणातीसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत ॥ ५४ ॥

रूक्ष और दुर्बल देहवाले मनुष्यों को जब अतीसार रोग होता है अथवा जब वे बलपूर्वक मल निकालने का उद्योग करते हैं तो उनकी गुदा बाहर निकल आती है। उसे गुदभ्रंश कहते हैं। ५४।

शूकरदंष्ट्र के लक्षण

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ।
कण्डूमान् ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥५५॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम् ॥ ३८ ॥

पित्त और रुधिर के विकार से देह में फुंसियाँ निकलती हैं, चारों ओर त्वचा लाल हो जाती है तथा पक जाती है। उनमें खुजली, दाह और अत्यन्त पीड़ा होती है, रोगी को ज्वर आ जाता है। इसे शूकर-दंष्ट्र या बराहदाढ़ कहते हैं। ५५।

मुखरोगनिदान

मुखरोग के निदान

आनूपपिशितक्षीरदधिमत्स्यातिसेवनात् ।
मुखमध्ये गदान् कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥१॥

जिन देशों में जल बहुत संचित रहता है, उन देशों के जीवों का मांस बहुत खाने से अथवा दूध, दही और मछली बहुत खाने से कफ आदि तीनों दोष कुपित होकर मुख में बहुत रोग उत्पन्न कर देते हैं । १ ।

टिप्पणी—मुख में ६५ रोग होते हैं । यथा दाँतों में ८, ओठों में ८, दन्तों की जड़ में १५, तालुए में ९, जीभ में ५, गले में १७ और सम्पूर्ण मुख में ३ ।

ओष्ठगत ८ रोग

वातज ओष्ठरोग

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ।
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ २ ॥

अब ओष्ठ के आठ रोग पहले बतलाते हैं । वायु के प्रकोप से ओष्ठ रूखे, कर्कश और निश्चल हो जाते हैं । उनकी त्वचा कुछ चिटक जाती अथवा बहुत फट जाती है । वातजन्य वेदना होती है । २ ।

पित्तज ओष्ठरोग

चीयेते पिडकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः ।
सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ३॥

पित्त के प्रकोप से ओठों के ऊपर पीले रंग की फुन्सियाँ निकलती हैं । उनमें पित्तजन्य विकार होते हैं अथवा दाह-पाकयुक्त पिडकाएँ होती हैं । ३ ।

कफज ओष्ठरोग

सवर्णाभिश्च चीयेते पिडकाभिरवेदनौ ।
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥४॥

कफ के प्रकोप से ओठों के ऊपर उस स्थान के ही रंग की फुन्सियाँ निकलती हैं। उनमें पीड़ा कम होती है। ये चिकनी, शीतल और भारी होती हैं। ४।

सन्निपातज ओष्ठरोग

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकाचितौ ॥ ५ ॥

तीनों दोषों के प्रकोप से होठ कभी काले, कभी पीले, कभी सफेद हो जाते हैं। वातादि दोषों के कारण फुन्सियाँ अनेक रंग की और अनेक प्रकार की वेदनावाली होती हैं। ५।

रक्तज ओष्ठरोग

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिर्निपीडितौ।
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

रुधिर के विकार से खजूर के फल के समान लाल और पीली फुन्सियाँ होठों पर निकलती हैं, उनसे रुधिर का स्राव होता है। ६।

मांसज ओष्ठरोग

गुरू स्थूलौ मांसदुष्टौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥७॥

मांस दूषित होने से ओठ मांसपिण्ड के समान स्थूल, ऊँचे और उभरे हुए हो जाते हैं। ओठों के दोनों तरफ किनारों में कीड़े भी उत्पन्न हो जाते हैं। ७।

मेदोज ओष्ठरोग

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू।
अच्छं स्फटिकसंकाशमास्रवं स्रवतो भृशम् ॥८॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति।

मेद के विकार से ओठ घी के मण्ड के समान और भारी हो जाते हैं। उनमें खुजली होती है और स्फटिक मणि के समान स्वच्छ स्राव

बहुत होता है। व्रण न तो भरते हैं और न कोमल ही पड़ते हैं। ८।

अभिघातज ओष्ठरोग

क्षतजाभौ विदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः ॥ ९ ॥
ग्रथितौ च तथा स्यातामोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ।

ओठों में चोट लगने से उत्पन्न ओष्ठरोग में ओठ रक्तवर्ण की कान्तियुक्त हो जाते हैं। उनकी त्वचा कुछ फट जाती है और क्षत होने से घाव हो जाता है अथवा फटती नहीं केवल गाँठ पड़ जाती है और उसमें खुजली होती है । (इसमें वायु का प्रकोप और कफ-रुधिर का अनुबन्ध होता है)। ९।

दन्तमूलगत १५ रोग

शीताद के लक्षण

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥१०॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥११॥

अब मसूढ़ों में होनेवाले पन्द्रह रोग कहते हैं—मसूढ़ों से अकस्मात् रुधिर निकलने लगता है, मसूढ़े कोमल, आर्द्र और काले हो जाते हैं। उनमें दुर्गन्ध आती है। मसूढ़े परस्पर पक जाते हैं अर्थात् एक के पकने से दूसरे भी पक जाते हैं। उनका मांस सड़ जाता है। इस व्याधि को शीताद कहते हैं। यह कफ और रुधिर के विकार से होता है। १०-११।

दन्तपुप्पुट के लक्षण

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥१२॥

दो या तीन दाँतों की जड़ों में भारी शोथ हो जाता है, इस रोग को दंतपुप्पुटक कहते हैं। यह रोग भी कफ और रुधिर के विकार से होता है। १२।

दन्तवेष्ठ के लक्षण

स्रवन्ति पूयरुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥१३॥

मसूढ़ों से पीब और रुधिर निकलता है, दाँत हिलने लगते हैं, मसूढ़े पक भी जाते है, इसे दन्तवेष्ट कहते हैं। यह रुधिर के विकार से होता है। १३।

शौषिर के लक्षण

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः ।
लालास्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः ।१४।

दाँतों की जड़ों में सूजन और पीड़ा होती है तथा लार बहती है। इसे शौषिर कहते हैं। यह कफ और रुधिर के प्रकोप से होता है। १४।

महाशौषिर के लक्षण

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ।
यस्मिन् स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः ॥१५॥

दाँत हिलने लगें, तालु ओंठ और दाँत भी फट जायँ तो उसे महाशौषिर कहते हैं। यह तीन दोषों के विकार से होता है। १५।

टिप्पणी—भोज का मत है कि यह रोग असाध्य होता है और रोगी सात दिन में मर जाता है।

परिदर के लक्षण

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक् ।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥१६॥

मसूढ़ों का मांस सड़ जाने से रोगी रुधिर थूकता है। इस रोग को परिदर कहते हैं। यह पित्त, कफ और रुधिर के विकार से होता है।१६।

उपकुश के लक्षण

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च ।
यस्मिन् सोपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥१७॥

मसूढ़े पक जायँ, उनमें दाह हो, दाह और पाक के कारण दाँत हिलने लगें तो उसे उपकुश कहते हैं। यह पित्त और रुधिर के कोप से होता है। १७।

वैदर्भ के लक्षण

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान्।
चला भवन्ति दन्ताश्च स वैदर्भोऽभिघातजः ॥१८॥

मसूढ़ों को दतून आदि से बहुत घिसने पर मसूढ़ों में शोथ हो जाता है और दाँत हिलने लगते हैं। यह अभिघातज व्याधि है। इसे वैदर्भ कहते हैं। १८।

खलिवर्धन के लक्षण

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः।
खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥१९॥

वायु के प्रकोप से दाँत के ऊपर दूसरा दाँत निकलता है। दाँत निकलते समय तीव्र वेदना होती है। जब दाँत निकल आता है तब पीड़ा शान्त हो जाती है। इसे खलिबर्धन कहते हैं। १९।

कराल के लक्षण

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः।
करालान्विकटान् दन्तान् करालो न स सिध्यति २०

मसूढ़ों में प्राप्त वायु धीरे धीरे दाँतों को विषम और विकृत कर देता है। इस रोग का नाम कराल है। यह असाध्य होता है। २०।

अधिमांसक के लक्षण

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महारुजः।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥

नीचे की दाढ़ों में जो सबसे पीछे दाढ़ होती है, उसमें कफ के विकार से भारी शोथ और अत्यन्त पीड़ा होने लगती है और मुँह से लार गिरती है। इसे अधिमांस कहते हैं।

पंच दंतनाड़ी

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ २१ ॥

दाँतों के मूल में भी पाँच प्रकार के नाड़ीव्रण (नासूर) होते हैं (नाड़ीव्रण के जो लक्षण पहले कह चुके हैं वे सब इनमें भी होते हैं) । २१ ।

दन्तगत ८ रोग

दालन के लक्षण

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ।
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥२२॥

अब दाँतों में होनेवाले आठ रोग कहते हैं—दाँतों में वायु के विकार से विदीर्ण करने के समान अत्यन्त पीड़ा होती है । इस व्याधि का नाम दालन है । २२ ।

क्रिमिदन्त के लक्षण

कृष्णश्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः ।
अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः क्रिमिदन्तकः ॥२३॥

वायु और रुधिर के प्रकोप से दाँतों की जड़ में कीड़े पड़ जाते हैं, तब दाँत में काले रंग का छिद्र हो जाता है । शोथ और अत्यन्त पीड़ा होती है, दाँत हिलने लगता है, दाँत की जड़ से रुधिर निकलता है, अकारण पीड़ा होने लगती है । इसे क्रिमिदन्तक कहते हैं । २३ ।

भंजनक के लक्षण

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते ।
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञितः ॥ २४ ॥

जिससे दाँत गिरने लगते हैं और मुँह टेढ़ा हो जाता है, उसे भंजनक कहते हैं । यह व्याधि कफ और वात के विकार से होती है । २४ ।

दंतहर्ष के लक्षण

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ।
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २५ ॥

पित्त और वायु के प्रकोप से दाँतों में शीत, रूक्ष, वायु और खट्टी चीजों का स्प र्श नहीं सहा जाता । इसे दन्तहर्ष कहते हैं । २५ ।

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः ।
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २६ ॥

दन्तशर्करा के लक्षण

दाँतों में संचित मैल पित्त और वायु के प्रकोप से सूखकर जम जाता है और जमे हुए रेत के समान खर्दरा हो जाता है । इसे दन्त-शर्करा कहते हैं । २६ ।

कपालिका के लक्षण

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा ।
कपालिकेति विज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी ॥२७॥

वही शर्करा हड्डी के समान कठोर होकर जब फट जाती है तो उसे कपालिका कहते हैं । यह रोग प्रत्येक अवस्था में दाँतों को नष्ट कर देता है । २७ ।

श्यावदंतक के लक्षण

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥२८॥

पित्त और रुधिर के विकार से जो सम्पूर्ण दाँत जले हुए के समान नीला या काला हो जाय उसे श्यावदन्तक कहते हैं । २८ ।

दंतविद्रधि के लक्षण

दन्तमांसे मलैः सास्रैर्बाह्यान्तः श्वयथुर्गुरुः ।
सदाहरुक् स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ २९ ॥

मसूढ़ों में वात, पित्त, कफ और रुधिर के विकार से भीतर और बाहर भारी शोथ हो जाता है। इसमें दाह और पीड़ा होती है, फूटने पर रुधिर और पीव निकलता है। इसे दन्तविद्रधि कहते हैं। २९।

जिह्वागत ५ रोग

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता
भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा।
पित्तेन दह्यत्युपचीयते च
दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च।
कफेन गुर्वी बहुला चिता च
मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥३०॥

अब जिह्वा के रोग कहते हैं—वायु के विकार से जीभ फट जाती है, शून्य हो जाती है, जीभ शाक-वृक्ष के पत्तों के समान हो जाती है अर्थात् जीभ के ऊपर काँटे से निकलते हैं। पित्त के विकार से काँटे कुछ बड़े और लाल होते हैं, उनमें जलन होती है। कफ के विकार से जीभ स्थूल हो जाती है। सेमर के काँटे के समान मांस के अंकुर जीभ के ऊपर निकलते हैं। इस व्याधि को जाडी कहते हैं। ३०।

अलास के लक्षण

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः
सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो
मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ३१ ॥

जीभ के नीचे जो दारुण शोथ होता है, उसकी अलाससंज्ञा है। यह कफ और रुधिर के प्रकोप से होता है। यह रोग जब बढ़ता है तो जीभ में जड़ता हो जाती है और जीभ का मूल पक जाता है

(जड़ता वायु के प्रकोप से, और पाक पित्त के प्रकोप से होता है। अतएव यह व्याधि त्रिदोषज है और असाध्य होती है)। ३१।

उपजिह्विका के लक्षण

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वा-
मुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः।
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः
सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः ॥ ३२ ॥

जिह्वा के अग्रभाग के आकार की सूजन जीभ के ऊपर हो जाती है, उससे जीभ ऊँची हो जाती है। उसमें खुजली और बहुत जलन होती है। लार गिरती है। यह रोग कफ और रुधिर के विकार से होता है। इसे उपजिह्विका कहते हैं। ३२।

तालुगत ६ रोग

कंठशुंडी के लक्षण

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूले प्रवृद्धो
दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति
व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ३३

कफ और रुधिर के विकार से तालु के मूल में शोथ होता है। यह बढ़कर वायु से भरी हुई चमड़े की थैली के समान हो जाता है। इस शोथ के होने पर प्यास, खाँसी और श्वास, ये उपद्रव होते हैं। वैद्य इसे कंठशुंडी कहते हैं। ३३।

तुंडिकेरी के लक्षण

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी
प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु।

कफ और रुधिर के प्रकोप से तालु में स्थूल शोथ हो जाता है।

उसमें सुई चुभाने की सी पीड़ा और जलन होती है। शोथ पक भी जाता है। इसे तुंडिकेरी कहते हैं। (पीड़ा और जलन होती हैं, इसलिए वात और पित्त का भी अनुबन्ध समझना चाहिए)।

अध्रुष के लक्षण

मृदुः शोथो लोहितः शोणितोत्थो
ज्ञेयोऽध्रुषः सज्वरस्तीव्ररुक् च ।। ३४ ।।

रुधिर के विकार से तालु में जो शोथ होता है, वह लाल रंग का और कोमल होता है। इस शोथ में तीव्र पीड़ा होती है और रोगी को ज्वर आता है। इसे अध्रुष कहते हैं। ३४।

कच्छप के लक्षण

कूर्मोन्नतोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा
रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा तु ।

कफ के विकार से तालु में कछुए के समान ऊँचा शोथ होता है। इसमें पीड़ा कम होती है। यह शीघ्र नहीं बढ़ता। इसे कच्छप कहते हैं।

ताल्वर्बुद के लक्षण

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं
विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ।। ३५ ।।

तालु में रुधिर के विकार से कमल की कली के आकार का शोथ लाल रंग का होता है, इसे ताल्वर्बुद कहते हैं। रक्तार्बुद के लक्षण जो पहले कह चुके हैं, वे लक्षण इसमें भी होते हैं। ३५।

मांससंघात के लक्षण

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये
कफाच्छूनं मांससंघातमाहुः ।

तालु में कफ के विकार से मांस दूषित होकर सूज जाता है। इसमें पीड़ा नहीं होती। इसे मांससंघात कहते हैं।

तालुपुप्पुट के लक्षण

नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात् स्या-
न्मेदोयुक्तात् पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ ३६ ॥

कफ और मेद के विकार से तालु में बेर के समान स्थिर शोथ होता है। इसमें पीड़ा नहीं होती। इसे तालुपुप्पुट कहते हैं। ३६।

तालुशोष के लक्षण

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः
श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च।

वायु के कोप से तालु में अत्यन्त शोष होता है, तालु फट जाता है, उग्र श्वास आती है। इसे तालुशोष कहते हैं (वाग्भट ने वात-पित्त के प्रकोप से उत्पन्न कहा है)।

तालुपाक के लक्षण

पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थघोरं
तालुन्येनं तालुपाकं वदन्ति ॥ ३७॥

पित्त के विकार से तालु अत्यन्त पक जाता है। इसे तालुपाक कहते हैं। ३७।

कंठगत १७ रोग

रोहिणी के लक्षण

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्।
गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरै-
र्निहन्त्यसून् व्याधिरियं हि रोहिणी ॥३८॥

अब कंठ के सत्रह रोग कहते हैं—गले में वात, पित्त और कफ के प्रकोप से मांस और रुधिर दूषित होकर गले को

अवरुद्ध करनेवाले मांस के अंकुर उत्पन्न कर देते हैं। यह त्रिदोषज व्याधि असाध्य होती है और रोगी के प्राण हर लेती है। इसे रोहिणी कहते हैं। ३८।

टिप्पणी—त्रिदोष-जन्य होने पर भी आगे दोषभेद से लक्षण लिखे हैं। वे दोष उल्बणता के कारण ही लिखे हैं। खरनाद तंत्र में लिखा है—त्रिदोषजा रोहिणी शीघ्र, श्लेष्मजा ३ दिन में, पित्तजा ५ दिन में और वातजा ७ दिन में मार डालती है।

वातजा रोहिणी के लक्षण

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु
मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधिनो ये।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा
वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ३९ ॥

जीभ के चारों ओर मांस के अंकुर निकलें और उनमें अत्यन्त पीड़ा हो तथा कंठ रुक जाय, उसे वातज रोहिणी समझना चाहिए। इसमें वातसम्बन्धी कंप आदि सब उपद्रव होते हैं। ३९।

पित्तजा रोहिणी के लक्षण

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका
तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा तु।

गले में मांस के अंकुर बड़ी शीघ्रता से उत्पन्न हो जायँ, शीघ्र उनमें जलन हो और शीघ्र पक जायँ, रोगी को तीव्र ज्वर आवे, उसे पित्तजा रोहिणी समझना चाहिए।

कफजा रोहिणी के लक्षण

स्रोतोनिरोधिन्यचलोद्गता च
स्थिराङ्कुरा या कफसंभवा सा ॥ ४० ॥

यदि मांस के अंकुर स्थिर और अचल हों, कंठ को रोक दें, उसे कफजा रोहिणी समझना चाहिए। ४०।

त्रिदोषजा रोहिणी के लक्षण

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या
त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता च ।

जो रोहिणी गहरी पकनेवाली हो, औषध करने से कुछ लाभ न हो, उसे त्रिदोषज समझना चाहिए। इसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

रक्तजा के लक्षण

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा
साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ ४१ ॥

गले में बहुत-सी फुन्सियाँ निकलें, पित्तज रोहिणी के समान सब लक्षण हों तो उसे रक्तजा रोहिणी समझना चाहिए। यह साध्य होती है। ४१।

कंठशालूक के लक्षण

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो
ग्रन्थिर्गले कंटकशूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्य-
स्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ४२ ॥

गले में बेर की गुठली के समान ग्रन्थि निकले, उसमें सूक्ष्म काँटे शूक के समान हों तथा दृढ़ और खर्दरी हो तो वह शस्त्र से काटने पर साध्य होती है। उसे कंठशालूक कहते हैं। ४२।

अधिजिह्विका के लक्षण

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु
जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष
विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४३ ॥

जीभ के अग्रभाग के सदृश कफ और रुधिर के विकार से जीभ के ऊपर शोथ होता है, इसे अधिजिह्व कहते हैं। अगर यह शोथ पक जाय तो उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। वह असाध्य हो जाता है।४३।

वलय के लक्षण

बलास एवायतमुन्नतं च
शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं
विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ४४ ॥

कफ के प्रकोप से गले में ऊँचा और दीर्घ शोथ हो जाता है। उसके कारण रोगी कुछ खा नहीं सकता, क्योंकि वह मार्ग को रोक देता है। चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं होता, इसलिए उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। इसे वलय कहते हैं। ४४।

बलाश के लक्षण

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ
श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहु-
र्बलाशसंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ४५ ॥

वृद्धि को प्राप्त कफ और वायु गले में शोथ उत्पन्न कर देते हैं। इस शोथ में पीड़ा होती है, रोगी को श्वास आने लगती है, इस दुस्तर रोग से मर्मस्थानों में पीड़ा होती है। बुद्धिमान् वैद्य इसे बलाशरोग कहते हैं। ४५।

एकवृन्द के लक्षण

वृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः
सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ
व्याधिर्बलाशक्षतजप्रसूतः ॥ ४६ ॥

गले में गोल और ऊँचा शोथ हो जाय, उसमें मन्द दाह और खुजली हो, कुछ पके और कुछ कोमल भी रहे, शोथ भारी हो, उसका नाम एकवृन्द है। यह व्याधि कफ और रुधिर के विकार से होती है। ४६।

वृन्द के लक्षण

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं
तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपा-
ज्ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ४७ ॥

एकवृन्द की अवस्थाविशेष को वृन्द कहते हैं। शोथ उसी प्रकार का ऊँचा और गोल होता है। इसमें दाह अधिक होता है, रोगी को तीव्र ज्वर आता है। यह पित्त और रुधिर के विकार से होता है। यदि वायु का अनुबन्ध होता है तो सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है। ४७।

शतघ्नी के लक्षण

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या
चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषा-
ज्ज्ञेया शतघ्नी च शतघ्निरूपा ॥ ४८ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से गले में कठोर और लम्बा शोथ होता है और उसके ऊपर मांस के बहुत से अंकुर काँटे के समान निकलते हैं, जिनसे कंठ अवरुद्ध हो जाता है। पीड़ा, दाह और खुजली आदि तीनों दोषों की वेदना होती है। यह व्याधि असाध्य होती है। रोगी के प्राण हर लेती है। शतघ्नी के आकार की होने से इसे शतघ्नी कहते हैं। ४८।

टिप्पणी—शतघ्नी एक शस्त्र का नाम है जिसमें एक लोहे की शिला पर लोहे के शूल लगे हुए होते हैं।

गलायु के लक्षण

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः
स्थिरोऽतिरुग्यः कफरक्तमूर्तिः ।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च
स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ॥ ४६ ॥

गले में कफ और रुधिर के विकार से आँवले की गुठली के समान स्थिर ग्रन्थि निकलती है, उसमें अत्यन्त पीड़ा होती है। ऐसा मालूम होता है मानो गले में कुछ खाद्य पदार्थ अटका हुआ हो। यह शस्त्र से काटने पर साध्य होती है। इसे गलायु कहते हैं। ४६।

गलविद्रधि के लक्षण

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः
शोथो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषर्गलविद्रधिस्तु
तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५० ॥

तीनों दोषों के प्रकोप से गले में भारी शोथ होता है। यह संपूर्ण कंठ में व्याप्त रहता है। इसमें दाह, खुजली, पीड़ा आदि तीनों दोषों के उपद्रव होते हैं। इसे गलविद्रधि कहते हैं। पहले जो सन्निपातज विद्रधि के लक्षण कह आये हैं, उसी के से लक्षण इसमें भी होते हैं। ५०।

गलौघ के लक्षण

शोथो महानन्नजलावरोधी
तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन
गले गलौघः परिकीर्त्यते तु ॥ ५१ ॥

कफ और रुधिर के विकार से गले में महान् शोथ होता है,

जिसके कारण अन्न और जल गले से नीचे नहीं उतरता। रोगी को तीव्र ज्वर आता है; उदान वायु की गति भी रुक जाती है। उसे गलौघ कहते हैं। ५१।

स्वरघ्न के लक्षण

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं
भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु
ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः ॥५२॥

गले में वायु के मार्ग में कफ रुक जाने से रोगी को निरन्तर श्वास आती रहती है, मूर्छा आती है अथवा अन्धकार-सा मालूम होता है, स्वरभंग हो जाता है, गला सूखता है, रोगी बोल नहीं सकता, गले से नीचे कुछ नहीं उतरता। इस वातज रोग को स्वरघ्न कहते हैं। ५२।

मांसतान के लक्षण

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो
गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानेति बिभर्ति संज्ञां
प्राणप्रणुत् सर्वकृतो विकारः ॥ ५३ ॥

गले में महाकष्टदायी शोथ हो, क्रम से उसका विस्तार हो और सम्पूर्ण गला रुक जाय, इसे मांसतान कहते हैं। यह तीनों दोषों के विकार से होता है और रोगी के प्राण नष्ट कर देता है। ५३।

विदारी के लक्षण

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्र-
मन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं
पार्श्वे विशेषात् स तु येन शेते ॥ ५४ ॥

गले में पित्त के प्रकोप से जो शोथ होता है, उसका रंग लाल, उसमें सुई चुभाने की सी पीड़ा और दाह होता है। उसका मांस सड़ जाता है, और उसमें दुर्गन्ध आती है। इसे विदारी कहते हैं मनुष्य जिस करवट अधिक सोता है, उसी भाग में विशेषकर यह रोग होता है ।५४।

मुखपाक

सर्वसर के लक्षण

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ता-
यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ।
रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतै-
र्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात् ।
अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णै-
र्यस्याचितं चापि स वै कफेन ॥ ५५ ॥

मुख में, होंठ, तालू और जिह्वा आदि सब स्थानों में छोटी छोटी फुंसियाँ (छाले) निकलती हैं। ये यदि वायु के प्रकोप से होती हैं तो उनमें सुई चुभाने की-सी पीड़ा होती है। पित्त के प्रकोप से होती हैं तो फुंसियाँ छोटी, लाल या पीली होती हैं और उनमें जलन होती है। यदि कफ के प्रकोप से होती हैं तो खुजली होती है। उनका रंग स्थान के ही समान होता है। उनमें पीड़ा कम होती है। इस रोग को सर्वसर कहते हैं। ५५।

असाध्य मुखरोग

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः ।
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ च त्रिलिङ्गगतिशौषिरौ ॥ ५६ ॥
दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः ।
जिह्वारोगे बलाशस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ५७ ॥

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलाशश्च विदरका ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥५८॥
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥५९॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मुखरोगनिदानं समाप्तम् । ५६ ।

ओष्ठ के रोगों में त्रिदोषज रोग तथा मांस के विकार से और रुधिर के विकार से उत्पन्न, ये तीन रोग असाध्य होते हैं। मसूढ़ों में तीनों दोषों के प्रकोप से नाड़ीव्रण और महाशौषिर, ये दो रोग असाध्य होते हैं। दाँतों के रोगों में श्यावदन्तक, दालन और भंजनक, ये तीन रोग असाध्य होते हैं। जिह्वा के रोगों में बलाश रोग असाध्य होता है। तालु के रोगों में अर्बुद रोग असाध्य होता है। गले के रोगों में स्वरघ्न, वलय, बृन्द, बलाश, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी, ये सब रोग असाध्य होते हैं। सब मिलाकर मुख में १९ रोग असाध्य होते हैं। वैद्य को इन रोगों को छोड़कर अन्य रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए। ५८-५९।

कर्णरोगनिदान

कर्णशूल

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्
समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषश्च यथास्वमावृतः
स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ १ ॥

कानों में प्राप्त वायु की गति जब प्रतिलोम हो जाती है तो कानों में अत्यन्त पीड़ा होती है। पित्त, कफ और रुधिर अपने कारणों से कुपित होकर वायु को आवृत कर देते हैं, तब वायु की

गति प्रतिलोम होने से कानों में पीड़ा होती है। यह कर्णशूल रोग दुःसाध्य होता है। १।

टिप्पणी—कर्ण रोग २८ प्रकार के होते हैं।

कर्णनाद के लक्षण

कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वरान्।
भेरी मृदङ्गशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

कर्णस्रोत में स्थित वायु के कुपित होने से मृदंग, शंख और नगाड़े के शब्द के समान अनेक प्रकार के शब्द सुन पड़ते हैं। इसे कर्णनाद कहते हैं। २।

बाधिर्य के लक्षण

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ३

केवल वायु अथवा कफ-वायु शब्दवह स्रोत को रोक देता है तो बाधिर्य (बहिरापन) रोग हो जाता है। ३।

कर्णक्ष्वेड के लक्षण

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम्।
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥

पित्त आदि से युक्त वायु कानों में बाँसुरी बजने का-सा शब्द उत्पन्न कर देता है। इसे कर्णक्ष्वेड कहते हैं। ४।

कर्णस्राव के लक्षण

शिरोऽभिघातादथवा निमज्जतो
जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः
स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

सिर में चोट लगने से अथवा स्नान करते समय कानों में पानी

जाने से अथवा कान में फुंसी निकलकर पक जाने से कान से पीब बहने लगता है। इसमें वायु का विकार होता है। इसे कर्णस्राव कहते हैं। ५।

कर्णकंडू और कर्णगूथ के लक्षण

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूं करोति च।
पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥६॥

कफसंयुक्त वायु कुपित होकर कानों के भीतर खुजली पैदा कर देता है, इसे कर्णकंडू कहते हैं। तथा पित्त की गर्मी कफ को सुखा देती है, तब भी कानों में खुजली होने लगती है। इसे कर्णगूथ कहते हैं। ६।

कर्णप्रतिनाह के लक्षण

स कर्णगूथो द्रवतां गतो यदा
विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो
भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

वह कर्णगूथ पसीने से अथवा कान में तेल डालने से जब गीला हो जाता है तो नाक या मुँह में प्राप्त होता है। उससे सिर में अर्धावभेदक (आधासीसी) पीड़ा होने लगती है। इसे कर्णप्रतिनाह कहते हैं। ७।

क्रिमिकर्ण के लक्षण

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः
सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।
तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते
भिषग्भिराद्यैः क्रिमिकर्णको गदः ॥८॥

जब कानों के भीतर कीड़े पड़ जाते हैं अथवा मक्खियाँ अण्डे रखती हैं, तब कानों में क्रिमि के लक्षण प्रकट होते हैं। वैद्यों ने इसे क्रिमिकर्णक कहा है (यह त्रिदोषज रोग है)। ८।

कर्णप्रविष्ट पतंगादि के लक्षण

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥९॥
कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा फरफरायते ।
कीटे चरति रुक् तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥१०॥

कान में यदि खनखजूरा या पतंगा घुस जाता है तो बड़ी बेचैनी और व्याकुलता होती है। अत्यन्त पीड़ा होती है, कान में सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है। जब कीड़ा फड़फड़ाता या चलता है तो पीड़ा अधिक होती है और जब स्थिर रहता है तो पीड़ा कम होती है। ९-१०।

कर्णविद्रधि के लक्षण

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधि-
र्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्
प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

कान में चोट लगने या क्षत होने से कान में विद्रधि होती है, अथवा दोषों के प्रकोप से भी कान में विद्रधि होती है। तब कान से लाल या पीला रक्तस्राव होता है, सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है। धुआँ निकलने के समान मालूम होता है, दाह और चूसने के समान पीड़ा होती है। ११।

कर्णपाक और पूतिकर्ण के लक्षण

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ।
कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥
पूयं स्रवति पूतिर्वा स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।

पित्त के प्रकोप से, कान में विद्रधि होने और पकने से अथवा पानी भर जाने से कान में दुर्गन्ध अथवा गीलापन होता है, इसे

कर्णपाक कहते हैं। कान से पीब निकलता है और दुर्गन्ध आती है। इसे पूतिकर्ण कहते हैं। १२।

टिप्पणी—इन दोनों रोगों में प्रायः पीड़ा नहीं होती और कभी होती भी है।

कर्णशोथ, कर्णार्बुद और कर्णार्श

[1]कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

चरकोक्त कर्णरोगचतुष्टय

नादोऽतिरुक् कर्णमलस्य शोषः
स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात्।
शोथः सरागो दरणं विदाहः
सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥ १४ ॥
वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ल-
स्निग्धस्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च।
सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्
स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

अब चरक में कहे हुए चार प्रकार के कर्णरोग कहते हैं—वायु के प्रकोप से कान में शब्द होने लगता है, अत्यन्त पीड़ा होती है, कान में मैल सूख जाता है, पतला स्राव होता है और कान से सुनाई नहीं देता। पित्त के प्रकोप से लालरंग का शोथ होता है, कान फट जाता है, जलन होती है, पीला और दुर्गन्धित स्राव

१. कर्णशोथ, कर्णार्बुद और कर्णार्श में पहिले वर्णन किये हुए शोथ, अर्बुद और अर्श के लक्षण होते हैं (अन्तर यही है कि अन्य स्थानों पर न होकर कान में होते हैं।)। कर्णशोथ चार प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज और रक्तज। ऐसे ही चार प्रकार के अर्श भी होते हैं। अर्बुद सात प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मांसज, मेदोज और शिरानिमित्तज। इस प्रकार सुश्रुत में कहे हुए कर्ण रोग अट्ठाइस प्रकार के हैं।

होता है। कफ के प्रकोप से विपरीत सुनाई देता है, खुजली होती है, स्थिर शोथ होता है, सफेद और चिकना स्राव होता है, थोड़ी पीड़ा होती है। तीनों दोषों के प्रकोप से तीनों दोषों के लक्षण होते हैं और जिस दोष की अधिकता होती है, उसी दोष के वर्ण का स्राव होता है। १४-१५।

कर्णपाली के रोग

परिपोटक

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसाऽतिप्रवर्धिते।
कर्णशोथो भवेत् पाल्यां सरुजः परिपोटवान्।
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात् परिपोटकः ॥१६॥

अब कर्णपाली के विकार कहते हैं—सुकुमारता के कारण देर में बढ़नेवाले कान के छिद्र को यदि सहसा बढ़ाने का उद्योग किया जाता है तो कर्णपाली में शोथ हो जाता है। त्वचा कुछ फट जाती है, पीड़ा होती है, शोथ काला या लाल और निश्चल होता है। यह व्याधि वायु के प्रकोप से होती है। इसे परिपोटक कहते हैं। १६।

उत्पात के लक्षण

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि।
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥१७॥
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः।

भारी आभूषण पहनने से अथवा चोट लगने से या खींचने से कर्णपाली में शोथ हो जाता है। यह शोथ काला या लाल होता है, दाह और पीड़ा होती है, पक जाता है। यह रोग रक्त और पित्त के विकार से होता है। इसे उत्पात कहते हैं। (कालापन रोग के प्रभाव से अथवा वायु के अनुबन्ध से होता है, क्योंकि पित्त और रक्त के विकार से कालापन नहीं होता)। १७।

उन्मन्थक के लक्षण

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ १८ ॥

कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ।
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ १९ ॥
संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूपाकरुजान्वितः ।
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धनः ॥ २० ॥

कर्णवेध कराकर बलपूर्वक कर्णपाली को बढ़ाने का उद्योग करने से वायु कुपित होकर और कफ के साथ मिलकर शोथ कर देता है, इसमें पीड़ा कम होती है, शोथ निश्चल होता है और खुजली होती है। इसे उन्मन्थक कहते हैं। यह विकार कफ और वात के दोष से होता है। दुःखवर्धन कर्णबेध ठीक स्थान पर न होने और पाली बढ़ाने का उद्योग करने पर तीनों दोषों के प्रकोप से शोथ होता है। वह शोथ पक जाता है, पीड़ा और खुजली होती है। इसे दुःखवर्धन कहते हैं। १८-२०।

परिलेही के लक्षण

कफासृक्क्रिमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः ।
कुर्वन्ति पाल्यां पिडकाः कण्डूदाहरुजान्विताः २१
कफासृक्क्रिमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः ।
लिहेत् सशष्कुलीं पालीं परिलेहीति सःस्मृतः २२

इति श्रीमाधकरविरचिते माधवनिदाने कर्णरोगनिदानं
समाप्तम् ॥ ५७ ॥

कफ, रुधिर और क्रिमि के प्रकोप से कर्णपाली में सरसों के समान फुंसियाँ निकलती हैं, उनमें पीड़ा, जलन और खुजली होती है। यह व्याधि फैलती जाती है और शष्कुली तक फैल जाती है। यह मांस को चाट लेती है, इसलिए इसे परिलेही कहते हैं। २१-२२।

नासारोगनिदान

अपीनस के निदान

आनह्यते यस्य विशुष्यते च
प्रक्लिद्यते धूप्यति चापि नासा ।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तु-
र्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ।
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं
ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ १ ॥

नासिका सूखे, कभी आर्द्र रहे, वायुशोषित कफ के कारण रुंध जाय, जलन हो, गंध का ज्ञान न हो, नासारोग के कारण जिह्वा को भी रस का ज्ञान न हो, इसे अपीनसरोग कहते हैं। यह वायु और कफ के विकार से होता है। कफ-वातज प्रतिश्याय के समान अन्य लक्षण होते हैं। १।

पूतिनस्य के लक्षण

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले
संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु ।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां
तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ २ ॥

पित्त, कफ और रुधिर के प्रकोप से कंठ और तालु के मूल में वायु दूषित हो जाता है। तब मुख और नाक से दुर्गन्ध आती है। इस रोग को पूतिनस्य कहते हैं। २।

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने पूतिनस्य में आँख और शिर में पीड़ा, नाक में खुजली, ज्वर और नाक से रक्तयुक्त दुर्गन्धित स्राव होना और बतलाया है।

नासापाक के लक्षण

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्या-
द्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः ।
तं नासिकापाकमिति व्यवस्ये-
द्विक्लेदकोथावथवाऽपि यत्र ॥ ३ ॥

नासिका में रहनेवाला पित्त बहुत से व्रण उत्पन्न कर देता है। इसके विकार से नाक पक जाती है, आर्द्रता रहती है, सड़ने की दुर्गन्ध आती है। इसे नासापाक कहते हैं। ३।

पूयरक्त के लक्षण

दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तो-
र्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ।
नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं
तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥

मस्तक में पित्त और रक्त की अधिकता के कारण सब दोषों के कुपित होने से अथवा चोट लगने से नाक के द्वारा रुधिर मिला हुआ पीव निकलने लगता है। इसे पूयरक्त कहते हैं। ४।

दोषज क्षवथु (छींक) के लक्षण

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो
यस्यानिलो नासिकया निरेति ।
कफानुजातो बहुशोऽतिशब्द-
स्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ ५ ॥

नासिका के शृंगाटक नामक मर्मस्थान में कुपित हुई वायु कफ के साथ मिलकर अत्यन्त शब्द के साथ बार-बार नाक से निकलती है। इस रोग को शास्त्र के ज्ञानकारों ने क्षवथु रोग कहा है। ५।

आगन्तुज क्षवथु के लक्षण

तीक्ष्णोपयोगादभिजिघ्रतो वा
भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्म-
ण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥

कोई तीक्ष्ण कटु पदार्थ सूँघने से, अथवा राई आदि तीक्ष्ण पदार्थ खाने से, अथवा सूर्य की ओर देखने से अथवा सूत्र आदि नाक में छोड़ने से, अथवा तरुणास्थि (नासा वंशास्थि) या शृंगाटक नामक मर्मस्थान में चोट लगने से आगन्तुज क्षवथु होता है। ६।

भ्रंशथु के लक्षण

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य
सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ।
प्राक्संचितो मूर्धनि सूर्यतप्त-
स्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

मस्तक में पहले से ही संचित कफ कुपित गाढ़ा और खारी होकर सूर्य की उष्णता पाकर नाक से निकलता है। इसे भ्रंशथुरोग कहते हैं। ७।

दीप्त के लक्षण

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु
विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तो-
र्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

नाक में अत्यन्त दाह हो, धुएँ के समान वायु निकले, नासिका में जले हुए के समान पीड़ा हो तो इस रोग को दीप्त कहते हैं। ८।

प्रतीनाह के लक्षण

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो
रुन्ध्यात् प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

श्वास के मार्ग को वायु के साथ कफ रोक दे, इसे प्रतीनाह कहते हैं।

नासास्राव के लक्षण

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा
दोषः स्रवेत् स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

नाक से 'अधिक' पतला पीला, पीला या सफेद कफ निकलता हो उसे नासास्राव कहते हैं। ९।

नासाशोष के लक्षण

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन
गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तु-
र्यस्मिन् स नासापरिशोष उक्तः ॥ १० ॥

वायु (और पित्त) के प्रकोप से नासिका का स्रोत और स्रोतगत कफ सूख जाय, नाक में दाह बहुत हो (दाह पित्त के बिना नहीं होता) बड़े कष्ट के साथ श्वास आती-जाती हो, उसे नासाशोष कहते हैं। १०।

आमपीनस के लक्षण

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः ।
क्षामः ष्ठीवत्यथाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥

सिर में भारीपन, अरुचि, नाक से पतला स्राव, स्वर की क्षीणता और बार-बार थूक का आना ये आमपीनस के लक्षण हैं। ११।

पक्वपीनस के लक्षण

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति ।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च परिपक्वस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

ऊपर कहे हुए आमपीनस के सब लक्षण हों, किन्तु कफ गाढ़ा होकर नाक में ही लीन हो जाय, स्वर और वर्ण विशुद्ध हो, ये परिपक्व पीनस के लक्षण हैं। १२।

प्रतिश्याय के निदान और संप्राप्ति

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्य-
क्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतै-
रवश्यया मैथुनबाष्पधूमैः ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो
वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १३ ॥

(प्रतिश्याय पाँच प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और रक्तज। उनके निदान दो प्रकार के हैं—एक सद्योजनक, दूसरा संचय आदि क्रम से उत्पन्न। सद्योजनक के निदान पहले कहते हैं) मलमूत्र आदि के वेग रोकने से, अजीर्ण होने से, नाक में धूलि जाने से, अत्यन्त भाषण करने से, बहुत क्रोध करने से, ऋतु की विषमता से, नाक के द्वारा धुवाँ या धूलि आदि जाने पर, सिर पीड़ित होने से, रात में जागने से, दिन में सोने से, शीतल जल पीने से, तुषार (बर्फ या कुहाँसा) गिरने से, अधिक मैथुन करने से, रोने से अथवा धुएँ में रहने से, सिर में कफ कुपित हो जाता और वायु वृद्धि को प्राप्त होकर प्रतिश्याय उत्पन्न कर देता है। १३।

चयं गता मूर्धनि मारुतादयः
पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपणै-
स्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥१४॥

वातादि तीनों दोष पृथक्-पृथक् अथवा रुधिर अथवा समस्त

दोष जब सिर में संचित हो जाते हैं तो अपने-अपने कारणों से कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न कर देते हैं। यह संचय आदि क्रम से उत्पन्न प्रतिश्याय है। १४।

प्रतिश्याय के पूर्वरूप

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता
स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा
नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः॥ १५॥

प्रतिश्याय होने के पहले इसके लक्षण इस प्रकार होते हैं—छींकें आती हैं, सिर भारी हो जाता है देह जकड़ जाती है, अंगों में टूटने की सी पीड़ा होती है, रोमाञ्च होता है, तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं। १५।

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने प्रतिश्याय के पूर्वरूप में नासिका से धूआँ सा निकलना, शिर में पीड़ा, तालु फटना (खुजली), गले का स्वर बैठना, मुख से कफ या थूक बार-बार आना और सिर में भारीपन बतलाए हैं।

वातज प्रतिश्याय के लक्षण

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा॥१६॥
क्षवप्रवृत्तिरत्यर्थं वक्त्रवैरस्यमेव च।
भवेत् स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके॥१७॥

अब वातादि दोषों के प्रतिश्याय अलग-अलग कहते हैं—नाक में कफ जकड़ जाय, नाक के स्रोत रुँध जाय, पतला स्राव हो, कंठ, तालु और होठ सूखें, दोनों कनपटियों में सुई चुभाने की सी पीड़ा हो, छींकें बहुत आवें, मुख में विरसता हो और स्वर भंग हो जाय, ये वातज प्रतिश्याय के लक्षण हैं। १६-१७।

पित्तज प्रतिश्याय के लक्षण

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके।

गन्ध का ज्ञान नहीं रह जाता, आँखों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, देह में शोथ, मन्दाग्नि और खाँसी हो जाती है। २७।

अन्य षोडश नासारोग

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ।
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ २८ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नासारोगनिदानं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के अर्श और चार प्रकार के रक्तपित्त, इतने और रोग नासिका[1] में होते हैं। २८।

नेत्ररोगनिदान

उष्णाभितप्तस्य जले प्रवेशा-
द्दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च
छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥
द्रवात्तथाऽन्नान्निशि सेविताच्च
विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनकोपशोका-
च्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥

---

१. सुश्रुत में इकतीस प्रकार के नासारोग कहे हैं। उनकी पूर्ति इस प्रकार होती है—पन्द्रह प्रकार के रोग ऊपर कह चुके हैं तथा सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के अर्श और एक रक्तपित्त, यह सोलह मिलाकर इकतीस होते हैं। मधुकोश-व्याख्याकार ने चतुर्विध रक्तपित्त की एक ही संख्या की है।

तथा ऋतूनां च विपर्ययेण
क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ।
वाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च
नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥ ३ ॥

धूप में तपने के बाद स्नान करने से, बहुत दूर देखने से, दिन में सोने और रात में जागने से, धूप में बहुत रहने से, आँखों में धूलि या धुआँ जाने से, वमन का वेग रोकने से अथवा वमन बहुत होने से, रात में द्रव पदार्थ भोजन करने से, मल-मूत्र और अधोवायु के वेग रोकने से, बहुत क्रोध, शोक और रोदन करने से, सिर में चोट लगने से, बहुत मदिरा पीने से, विपरीत ऋतुचर्या करने से, अत्यन्त क्लेश में रहने से, बहुत मैथुन करने से, आँसुओं को रोकने से और सूक्ष्म वस्तु देखने से वातादि दोष कुपित होकर नेत्रों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं। १-३।

टिप्पणी—नेत्ररोगों की संख्या आचार्य सुश्रुत ने ७६ वर्णन की है। दोष-क्रम से इनकी संख्या इस प्रकार है—वात से १०, पित्त से १०, कफ से १३, रक्त से १६, सन्निपात, से २५ और बाह्यज २, इस प्रकार ७६ हुए। आश्रयभेद से नेत्र-सन्धियों में ९, नेत्र के वर्त्म भाग में २१, नेत्र के शुक्ल भाग में ११, कृष्ण भाग में ४, नेत्र के सर्वभाग में १७, नेत्र के दृष्टिभाग में १२, अनिमित्त और निमित्तज २ आगन्तुज होते हैं, इस प्रकार कुल ७६ हुए।

सर्वनयनगत अभिष्यन्द रोग

वातात् पित्तात् कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात से, पित्त से, कफ से और रुधिर से चार प्रकार के अभिष्यन्द होते हैं। अभिष्यन्द से प्रायः सब प्रकार के घोर नेत्र रोग उत्पन्न होते है।४।

वाताभिष्यन्द के लक्षण

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्ष-
संघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ।

विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च
वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

वातज अभिष्यन्द में ये लक्षण होते हैं—आँखों में चुभाने की सी पीड़ा, जड़ता, करकराहट, रूक्षता और सिर में पीड़ा होती है। नेत्रों से शीतल आँसू गिरते हैं, पर नेत्र सूखे-से रहते हैं। देह में रोमांच होता है। ५।

पित्ताभिष्यन्द के लक्षण

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा
धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च
पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पित्तज अभिष्यन्द में दाह और पाक होता है, शीतल वस्तुओं की इच्छा होती है, आँखों से धुआँ-सा निकलता है। गरम आँसू बहुत गिरते हैं और आँखें कुछ पीली होती हैं। ६।

कफाभिष्यन्द के लक्षण

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः
कण्डूपदेहावतिशीतता च।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि
कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

कफज अभिष्यन्द में आँखों में शोथ और भारीपन होता है, खुजली होती है, आँखों में चिपचिपाहट बनी रहती है, आँखों में शीतलता रहती है, उष्ण वस्तुओं की इच्छा होती है तथा गाढ़ा और चिकना स्राव बार-बार हुआ करता है।

रक्ताभिष्यन्द के लक्षण

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च
नाड्यः समन्तादतिलोहिताश्च।

पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि
रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

रक्तज अभिष्यन्द में नेत्र लाल हो जाते हैं, नेत्रों के चारों ओर की नसें भी लाल हो जाती हैं, आँसू भी कुछ लाल निकलते हैं तथा पित्तज अभिष्यन्द के भी लक्षण होते हैं। ८।

चार प्रकार के अविमन्थ रोग

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदना ॥ ९ ॥

अभिष्यन्द की यदि चिकित्सा नहीं की जाती और रोग बढ़ जाता है तो अत्यन्त पीड़ा करनेवाले वातज, पित्तज, कफज और रक्तज चार प्रकार के अधिमन्थ हो जाते हैं। वातज अभिष्यन्द से वातज अधिमन्थ होता है और वातजनित तोद आदि सब वेदनाएँ होती हैं। इसी प्रकार सब अधिमन्थों को समझना चाहिए। ९।

अविमन्थ के सामान्य लक्षण

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ।
शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥१०॥

अधिमन्थ के सामान्य लक्षण इस प्रकार होते हैं—व्याधि के प्रभाव से नेत्र और आधे सिर में मथने की सी पीड़ा अथवा उखाड़ने की सी अत्यन्त पीड़ा होती है। और वातज आदि जिस अभिष्यन्द से होता है, उस अभिष्यन्द के लक्षण जो ऊपर कह चुके हैं वे सब प्रकट होते हैं। १०।

दोषभेद से दृष्टिविनाश की अवधि

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्रा-
दधिमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात्
षड्रात्राद्वैवातिकस्तं निहन्यात्
मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥ ११ ॥

अपथ्य उपचार करने से कफज अधिमन्थ सात दिन में, रक्तज अधिमन्थ पाँच दिन में, वातज अधिमन्थ छः दिन में और पित्तज अधिमन्थ तत्काल अथवा तीन दिन में नेत्रों की दृष्टि नष्ट कर देता है ११।

नेत्ररोग की सामता

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोथसमन्वितम् ।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १२ ॥

जब तक आँख में पीड़ा अधिक हो, आँखें लाल हों, शोथ हो, करकराहट, सुई चुभाने की सी पीड़ा और शूल हो, आँसू आते हों, तब तक रोग को आम (कच्चा) समझना चाहिए । १२ ।

टिप्पणी—साम और निराम का भेद चिकित्सा की सुविधा के लिए है । जैसे कहा है—सामनेत्र रोगों में चार दिन तक स्वेद, प्रलेप, तिक्त अन्न का सेवन और धूम्रपान कराना चाहिए एवं छः दिन तक लंघन और पाचन कराना चाहिए ।

नेत्ररोग की निरामता

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ।
प्रशस्तवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दोषमादिशेत् ॥१३॥

पीड़ा कम हो, शोथ और आँसू भी शान्त हो जायँ, आँखों का वर्ण स्वच्छ हो जाय, आँखों में खुजली हो तब समझना चाहिए कि दोष पक गये । ये निराम के लक्षण हैं । १३ ।

नेत्रपाक के लक्षण

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसंनिभः ।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोथजः ।
शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १४ ॥

सशोथ नेत्रपाक—आँखें लाल हों, शोथ हो, इसलिए आँखें पके हुए गूलर के समान हो जायँ, खुजली हो और आँसू आते हों, यह शोथ सहित नेत्रपाक है । शोथहीन नेत्रपाक में शोथ को छोड़कर अन्य सब लक्षण होते हैं । यह त्रिदोषज रोग है । १४ ।

हताधिमन्थ के लक्षण

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो
वातात्मकः सादयति प्रसह्य।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष
हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १५ ॥

वातज अधिमन्थ की उपेक्षा करने से प्रवृद्ध वायु आँखों को सुखा देता है और आँखों में सुई चुभाने के समान तथा अनेक प्रकार की अत्यन्त पीड़ा होती हैं, यह रोग असाध्य है। इसे हताधिमन्थ कहते हैं। १५।

टिप्पणी—हताधिमन्थ को आचार्य विदेह ने अपने तंत्र में दो प्रकार का लिखा है। १ दृष्ट्युत्क्षेप और दूसरा सकलनयनशोष। दृष्ट्युत्क्षेप—कुपित वायु जब आभ्यन्तरिक शिराओं में जाकर स्थित हो जाता है तब वह नेत्र में प्राप्त होकर शीघ्र ही दृष्टि को बाहर निकाल देता है इससे मथानी की तरह मथता सा शूल, तोद होता है और नेत्र बाहर निकल आते हैं।

सकलनयनशोष—यही वायु क्षीण तेजवाले नेत्र को सुखा देता है और वह नेत्र कमल की तरह सूख कर नष्ट हो जाता है। वायु के प्रकोप से उत्पन्न इसी रोग को हताधिमन्थ कहते हैं। यह असाध्य होता है।

वातपर्याय के लक्षण

वारंवारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः।
रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥१६॥

प्रवृद्ध वायु क्रम से कभी नेत्रों में और कभी भौंहों में बार-बार प्राप्त होकर अनेक प्रकार की तीव्र पीड़ा उत्पन्न करता है, इसे वात-पर्यय कहते हैं। १६।

शुष्काक्षिपाक के लक्षण

यत् कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म
संदह्यते चाविलदर्शनं यत्।
सुदारुणं यत् प्रतिबोधने च
शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १७ ॥

प्रवृद्ध वायु के द्वारा आँखों की पलकें अत्यन्त रूक्ष हो जाती हैं, पलकें खोलने और मूँदने में अत्यन्त पीड़ा और जलन होती है। इसे शुष्काक्षिपाक कहते हैं। यह रुधिर और वायु के विकार से होता है। देखने में कष्ट होता है। १७।

अन्यतोवात के लक्षण

यस्यावटुकर्णशिरोहनुस्थो
मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च
तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १८ ॥

जिसके घाँटी (गर्दन का पिछला भाग) में, कानों में, सिर में, ठोढ़ी में अथवा गर्दन के दोनों बगल की नाड़ी में अथवा अन्य किसी स्थान में कुपित हुआ वायु आँखों और भौंहों में पीड़ा उत्पन्न करता है, उस रोग को अन्यतोवात कहते हैं। १८।

टिप्पणी—वातपर्याय और अन्यतोवात में यह भेद है कि वहाँ वायु भ्रू पक्ष्म और नयनों में बार-बार क्रमशः तीव्र पीड़ाएँ करता है और यहाँ वायु घाटी आदि में स्थित रहता है और पीड़ा आँख तथा भौंहों में करता है।

अम्लाध्युषित के लक्षण

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते।
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १९ ॥

खटाई अधिक खाने से आँखों में शोथ और दाह होता है। आँखों से आँसू बहते हैं, नेत्र कुछ नीले रंग के और कोरें लाल हो जाती हैं, सम्पूर्ण नेत्र पक जाते हैं। इसे अम्लाध्युषित अथवा पित्ताध्युषित कहते हैं। यह पित्त के विकार से होता है। १९।

शिरोत्पात के लक्षण

अवेदना वाऽपि सवेदना वा
यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।

मुहुर्विरज्यन्ति च याः स ताहृग्-
व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २० ॥

आँखों की नसें ताम्रवर्ण हो जाती हैं, कभी बहुत लाल हो जाती हैं, किसी को पीड़ा होती है और किसी को पीड़ा नहीं होती। इस रोग को शिरोत्पात कहते हैं (यह रुधिर के विकार से होता है)। २०।

शिराप्रहर्ष के लक्षण

मोहात्शिरोत्पात उपेक्षितस्तु
जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः।
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं
तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१ ॥

इतिसर्वगताः।

मूर्खतावश शिरोत्पात की उपेक्षा करने से शिराप्रहर्ष रोग हो जाता है। इसमें ताँबे के रंग का स्राव बहुत होता है। आँखों से दिखाई भी नहीं देता। २१।

सव्रण शुक्ल के लक्षण

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे
सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च
तत् सव्रणं शुक्र (क) मुदाहरन्ति ॥२२॥

नेत्र के काले मण्डल में चार प्रकार के शुक्र (फूला) होते हैं। उनके लक्षण क्रम से होते हैं—जो शुक्र गड्ढा सा और गोल मालूम होता हो, उसमें सुई चुभाने की सी पीड़ा होती हो और निरन्तर उष्ण स्राव होता हो, उसे सव्रण शुक्र कहते हैं। २२।

साध्य सव्रण शुक्र के लक्षण

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च
न चावगाढं न च संस्रवेद्धि।

अवेदनं वा न च युग्मशुक्लं
तत् सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २३ ॥

जो शुक्र दृष्टि के समीप नहीं होता और अवगाढ़ (गहरा) नहीं होता अथवा त्वचा पर ही होता है, उसमें स्राव बहुत नहीं होता और पीड़ा अधिक नहीं होती और युग्म नहीं होता अर्थात् एक ही होता है, वह कदाचित् साध्य हो सकता है। इसके विपरीत असाध्य होता है। २३।

अव्रण शुक्र के लक्षण

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं
शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाश-
मथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ २४ ॥

जो शुक्र कृष्णभाग में शंख, चन्द्रमा अथवा कुन्द के समान श्वेत हो, अभिष्यन्द के कारण हुआ हो अथवा पतले बादल के समान दिखाई देता हो; चूसने के समान पीड़ा हो, वह साध्य होता है। इसे अव्रण शुक्र कहते हैं। २४।

अवस्थाभेद से अव्रण शुक्र की कृच्छ्रसाध्यता

गम्भीरजातं बहुलं च शुक्लं
चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।
विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा
चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च
चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ २५ ॥

जिसकी उत्पत्ति दो-तीन त्वचाओं से हुई हो, सफ़ेद हो, मोटा हो (पतले बादल की समानतावाले सव्रण शुक्र से अधिक मोटा)

और बहुत दिनों का पुराना हो, वह कष्टसाध्य होता है। जिसके मध्य में कुछ नीचा हो अथवा मांस से आच्छादित-सा अर्थात् कुछ ऊँचा हो, स्थिर न हो, शिराओं से आच्छादित होने के कारण सूक्ष्म हो, दृष्टि रोक रक्खी हो, दो त्वचाओं में अर्थात् दो पटलों में व्याप्त हो, मध्य में सफेद और अन्त में लाल हो, बहुत दिनों का पुराना हो, वह असाध्य होता है। उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। २५।

टिप्पणी—कई आचार्य इन लक्षणों को सव्रण शुक्र और अव्रण शुक्र विषयक मानते हैं और कई आचार्य इन लक्षणों को सव्रण शुक्र और अव्रण शुक्र के लिए साधारण मानते हैं। यही इनमें मतभेद है।

शुक्ल की असाध्यता

उष्णाश्रुपातः पिडका च नेत्रे
यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम्।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचि-
दन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २६ ॥

जिस शुक्रयुक्त नेत्र में मूँग के बराबर सफेद पिडका हो, आँखों से गरम आँसू निकलें, वह (अव्रण शुक्र) भी असाध्य होता है। तित्तिर के पक्ष के समान चितकबरा अव्रण शुक्र भी असाध्य होता है। २६।

अक्षिपाकात्यय के लक्षण

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि
दोषेण यस्यासितमण्डलं च।
तमक्षिपाकात्ययमक्षिरोगं
सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ २७ ॥

जो शुक्र सम्पूर्ण काले मंडल में फैल गया हो, उसे तीनों दोषों के प्रकोप से समझना चाहिए। उसे अक्षिपाकात्यय कहते हैं। यह भी असाध्य होता है।

अजकाजात के लक्षण

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्
सलोहितो लोहितपिच्छिलास्रः ।
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति
तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ २८ ॥
इति कृष्णजाः ।

जो शुक्र बकरी की (सूखी) मेंगनी के समान बड़ा हो, पीड़ा होती हो, कुछ लाल हो, लाल और चिकने आँसू आते हों, सम्पूर्ण काले मंडल में फैल गया हो, उसे अजकाजात कहते हैं। २७-२८।

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने तृतीय पटलगत माना है।

प्रथम पटलस्थ दोष के लक्षण

प्रथमे पटले दोषा यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थिताः ।
अव्यक्तानि स रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥२९॥

दृष्टि के प्रथम पटल में जब दोष प्राप्त होते हैं तब वह मनुष्य कभी सब पदार्थों को साफ़ देखता है और कभी अव्यक्त रूप देखता है। २९।

टिप्पणी—दृष्टि में चार पटल होते हैं। १ बाह्यरस रक्ताश्रय, २ मांसाश्रय, ३ मेदआश्रय, ४ कालकास्थिसंश्रय। जब इनमें दोष पहुँचते हैं तो दृष्टि की क्या गति होती है यही क्रमशः दिखया है।

द्वितीय पटलस्थ दोष के लक्षण

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ।
मक्षिकामशकांश्चापि जालकानि च पश्यति ॥३०॥
मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन् कुण्डलानि च ।
परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च ॥३१॥
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ।

समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ३२ ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ।

द्वितीय पटल में जब दोष प्राप्त होते हैं तब दृष्टि को बहुत विह्वल कर देते हैं । आँखों के सामने मंडल-सा नाचता हुआ दीखता है, मक्खी और मच्छर-से दिखाई देते हैं; जाली, पताका, कुण्डल अथवा किरणों-सी दिखाई देती हैं ; उछलते हुए मेंढक आदि जलजीव अनेक रंग के सब ओर दिखाई देते हैं ; वर्षा, बादल और अन्धकार दीखता है : समीप की वस्तुएँ दूर रक्खी हुई-सी और दूर में रक्खी हुई समीप ही स्थित मालूम होती हैं, क्योंकि विषयभ्रान्ति हो जाती है । बहुत उद्योग करने पर भी सुई का छिद्र नहीं दिखाई देता । ३०-३२ ।

तृतीय पटलस्थ दोष के लक्षण

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात् तृतीयं पटलं गते ॥३३॥
महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ।
कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानीव पश्यति ॥३४॥
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ।

जब दोष तीसरे पटल में पहुँच जाते हैं तो रोगी ऊपर की वस्तुएँ तो देखता है पर नीचे की नहीं देख सकता । बड़े पदार्थ भी वस्त्र से ढके हुए के समान मालूम होते हैं । कर्ण, नेत्र और नासिका-हीन तथा विकृत रूप देखता है । जिस दोष की अधिकता होती है, उसी दोष के वर्ण की सब वस्तुएँ दिखाई देती हैं । जैसे कफ की अधिकता होती है तो सफेद और पित्त की अधिकता से पीली या लाल इत्यादि । ३३-३४ ।

अधः ऊर्ध्व प्रदेशस्थ दोष के लक्षण

अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३५ ॥
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति ।
समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥३६॥

दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्धृस्वं च पश्यति ।
द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥३७॥
दोषे दृष्ट्याश्रिते तिर्यक् स एकं मन्यते द्विधा ।

दृष्टिमंडल के अधोभाग में यदि दोष प्राप्त होते हैं तो रोगी समीप में स्थित वस्तुएँ नहीं देख सकता । ऊपर के भाग में दोष होते हैं तो दूर की वस्तु नहीं देख सकता । पार्श्व भाग में यदि दोष के विकार होते हैं तो पार्श्व की वस्तु नहीं देख सकता । यदि सब ओर दोषों का विकार होता है, तो रोगी बहुत-सी चीजों को मिली हुई देखता है । दृष्टि के मध्य में दोष होने से बड़ी वस्तुओं का आकार छोटा देखता है । दो स्थानों में दोष होने से वस्तुओं के दो भाग देखता है । अनियत स्थान में दोष होने से वस्तुओं के कई टुकड़े देखता है । दोष तिरछे स्थित होने से एक वस्तु के दो रूप देखता है । ३५–३७ ।

चतुर्थ पटलस्थ दोष के लक्षण

तिमिराख्यः स व दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ॥ ३८ ॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम् ।
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ ३९ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरीक्षे च विद्युतः ।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णून्यथ पश्यति ४०

रोग जब नेत्र के चतुर्थ पटल में पहुँच जाता है, तो उसे तिमिर रोग कहते हैं । तिमिर रोग सम्पूर्ण दृष्टि को रुद्ध कर देता है । इसे लिंगनाश भी कहते हैं । यह लिंगनाश जब तक अत्यन्त वृद्धि को नहीं प्राप्त होता तब तक आकाश में नक्षत्र, बिजली, सूर्य, चन्द्रमा, निर्मल तेज और चमकती हुई चीजें दिखाई देती हैं । ३८–४० ।

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः ।

तृतीय पटल में प्राप्त रोग की काच संज्ञा और चतुर्थ पटल में

प्राप्त रोग की लिंगनाश और नीलिका संज्ञा है। (यस्तृतीयपटलस्थितः काचसंज्ञितो दोषः स एवोपेक्षया चतुर्थे पटले पुनर्लिङ्गनाशो नीलिका च)

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि जब दोष तीसरे पटल में आते हैं तो पहिले तिमिर होता है, इसके वातादि क्रम से छः प्रकार होते हैं और यही तिमिर रोग युक्त होने पर काच कहलाता है और उसी प्रकार वातादि क्रम से छः प्रकार होते हैं।

दोषविशेष से रूपविशेष दर्शन

वातेन चापि रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति ॥४१॥
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः।
पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ॥ ४२ ॥
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति।
कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ४३
(पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रमेवाभ्रसंप्लवम्।)
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः।
पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥४४॥
स सितान्यपि कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः।
सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति ॥४५॥
बहुधा च द्विधा चापि सर्वाण्येव समन्ततः।
हीनाधिकाङ्गान्यपि तु ज्योतींष्यपि च भूयसा ४६

वायु-विकार से जो तिमिर होता है, उसमें सब चीजें घूमती हुई दिखाई देती हैं। मटमैली अथवा लाल और तिरछी दिखाई देती हैं। पित्त के प्रकोप से यदि तिमिर होता है तो सूर्य, खद्योत, इन्द्रधनुष, बिजली और नाचते हुए मयूरों को और नीले (व काले) रंग के देखता है। कफ के तिमिर में सब पदार्थों को स्निग्ध, श्वेत (स्थूल पदार्थों को और बादलों के न होने पर भी उनको देखता है)

और पानी में भीगे हुए के समान देखता है। रक्तजन्य तिमिर में मनुष्य अनेक प्रकार के अन्धकार देखता है, सब पदार्थों को रक्तवर्ण देखता है। श्वेत पदार्थों को भी काले व पीले रंग के देखता है। सन्निपात के तिमिर में रूप अनेक वर्ण के तथा विपरीत, एक रूप के अनेक रूप व दो रूप दीखते हैं, अथवा न्यून अंगवाले व अधिक अंगवाले अथवा चमकते हुए दीखते हैं। ४१-४६।

परिम्लायि तिमिर के विशिष्ट लक्षण

पित्तं कुर्यात् परिम्लायि मूर्च्छितं पित्ततेजसा।
पीता दिशस्तु खद्योतान् भास्करं चापि पश्यति॥४७॥
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव वा।

रुधिर से मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायि नामक लिंगनाश उत्पन्न करता है। इस लिंगनाश से दिशाएँ पीली दिखाई देती हैं। सूर्य और खद्योत भी दिखाई देते हैं। वृक्ष खद्योतों से अथवा तेज से व्याप्त दिखाई देते हैं। ४७।

वातजादि लिंगनाश के राग

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम्॥४८॥
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो
म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्।
कफात् सितः शोणितजः सरक्तः
समस्तदोषप्रभवो विचित्रः॥ ४९ ॥

वातादि दोषों के कारण छः प्रकार के जो लिंगनाश कह चुके हैं, उनसे नेत्रों के जो रंग होते हैं उनका वर्णन करते हैं। वात से लिंगनाश होता है तो नेत्रों का रंग लाल हो जाता है। पित्त से परिम्लायी लिंगनाश होने से नेत्र नीलवर्ण हो जाते हैं। कफ से लिंगनाश होने पर नेत्र सफेद हो जाते हैं। रुधिर से लिंगनाश होता है तो नेत्र कुछ लाल हो जाते हैं। तीनों दोषों से लिंगनाश होता है तो नेत्र अनेक रंग के हो जाते हैं। ४८-४९।

वातिक राग के विशिष्ट लक्षण

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।

दृष्टि के ऊपर मोटे काँच के समान लाल मंडल वातजन्य लिंग-नाश में होता है ।

परिम्लायि के विशिष्ट लक्षण

परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायिनीलं च मण्डलम् ।५०।
दोषक्षयात् स्वयं तत्र कदाचित् स्यात्तु दर्शनम् ।

परिम्लायी नामक लिंगनाश में म्लान और नील वर्ण मंडल होता है । दोष के नष्ट होने पर कभी-कभी रोगी देखने लगता (दोष का अर्थ किसी-किसी ने कर्म किया है, अर्थात् दुष्कर्मों का फल भोगने के पश्चात) । ५० ।

वातजादि लिंगनाश के राग का विशेष विवरण

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ।। ५१ ।।
पित्तान्मंडलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ।
श्लेष्मणा बहुलं पीतं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ।।५२।।
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो विन्दुरिवाम्भसः ।
मृज्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ।। ५३ ।।
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ।
दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ।। ५४ ।।

वात से लिंगनाश होता है तो मंडल लाल, चंचल और कठोर होता है । पित्त से लिंगनाश होता है तो मंडल नीला, काँसे के समान कुछ पीला अथवा श्वेतपीत होता है । कफ से उत्पन्न लिंगनाश में मंडल मोटा, पीला, शंख, कुन्द अथवा चन्द्रमा के समान सफेद होता है अथवा कमल के पत्ते पर पड़े हुए बिन्दु के समान चंचल और सफेद होता है । आँख को मलने पर यह मंडल फैल

जाता है। रुधिर से हुए लिंगनाश में मंडल प्रवाल के समान अथवा कमल-पुष्प की पंखड़ी के समान (लाल रंग का) होता है। त्रिदोष से उत्पन्न लिंगनाश में मंडल अनेक रंग का होता है। वातादि दोषों के भेद से विचित्र वर्ण का होता है। ५१-५४।

षड् लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा
दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव वाच्याः।

दृष्टि में १२ रोग होते हैं। छः लिंगनाश के जो ऊपर कह चुके और छः पित्तविदग्धदृष्टि आदि के आगे कहेंगे।

पित्तविदग्धदृष्टि (दिवांध) के लक्षण

पित्तेन दुष्टेन सदा तु दृष्टिः
पीता भवेद्यस्य नरस्य किञ्चित् ॥ ५५ ॥
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्
स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः।
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे
दिवा च पश्येन्निशि चेक्षते सः ॥ ५६ ॥
रात्रौ च शीतानुगृहीतदृष्टिः
पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत्।

दूषित पित्त यदि नेत्रों के प्रथम या द्वितीय पटल में प्राप्त होता है तो दृष्टि किंचित् पीतवर्ण हो जाती है, वह मनुष्य सब पदार्थों को पीतवर्ण देखता है। इस रोग को पित्तविदग्धदृष्टि कहते हैं। और जब दूषित पित्त नेत्रों के तृतीय पटल में प्राप्त होता है तो वह मनुष्य दिन में नहीं देखता, रात्रि में देखता है; क्योंकि रात्रि में नेत्रों में शीतलता पहुँचती और पित्त की अल्पता होती है, इसलिए रात्रि में देख सकता है। ५५-५६।

कफविदग्ध दृष्टि (रात्र्यन्ध) के लक्षण

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टि-
स्तान्येव शुक्लानि तु मन्यते सः ।। ५७ ।।
त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो
नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः
पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ।। ५८ ।।

दूषित कफ यदि नेत्र के प्रथम या द्वितीय पटल में प्राप्त होता है तो वह मनुष्य सब पदार्थों को श्वेतवर्ण देखता है और जब तीसरे पटल में पहुँचता है तो उस मनुष्य को रात्र्यन्ध कर देता है। वह रात्रि में नहीं देखता, दिन में सूर्य की ऊष्मा से कफ की अल्पता होने के कारण वह देख सकता है। (अल्प दोष से रात्र्यन्ध होता है और जब दोष बढ़ जाता है तो रोगी दिन में भी नहीं देखता)। ५७-५८।

धूमदर्शी के लक्षण

शोकज्वरायासशिरोभितापै-
रभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।
धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान्
स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ।। ५९ ।।

शोक से, ज्वर से, अधिक परिश्रम करने से अथवा सिर की पीड़ा के कारण कुपित हुआ पित्त दृष्टि में विकार उत्पन्न कर देता है। वह मनुष्य दिन में सब पदार्थों को धुएँ के समान देखता है। उसे धूमदर्शी कहते हैं। (इस विकार में दोष तीसरे पटल में और किसी के मत से चौथे पटल में प्राप्त होता है । रात्रि में पित्त के क्षीण होने से दृष्टि साफ़ रहती है)। ५९।

ह्रस्वजाड्य के लक्षण

यो ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्रा-
द्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत् ।

जिसे दिन में सब पदार्थ छोटे दीखें और देखने में कष्ट हो उसे ह्रस्वजाड्य कहते हैं । यह पित्तज विकार है । दृष्टि के मध्य में दोष प्राप्त हो जाता है इससे दिन में सब पदार्थ छोटे दीखते हैं और रात में नहीं दीखते ।

नकुलान्ध्य के लक्षण

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टि-
र्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ६० ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत
स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ।

जिस मनुष्य की दृष्टि दोष से व्याप्त होने के कारण न्योले की दृष्टि के समान चमकती है और वह मनुष्य दिन में सब पदार्थों को अनेक वर्ण देखता है (रात में दृष्टि नष्ट हो जाती है), उस विकार को नकुलान्ध्य कहते हैं । ६० ।

टिप्पणी—ह्रस्वजाड्य और नकुलान्ध्य में यदि दोष चौथे पटल में पहुँच जाते हैं तो नेत्रों का रंग नीला, पीला या लाल हो जाता है तब रोग असाध्य हो जाता है ।

गम्भीरिका के लक्षण

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा
संकोचमभ्यन्तरतस्तु याति ॥ ६१ ॥
रुजावगाढा च तमक्षिरोगं
गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।

वायु के प्रकोप से जिसकी दृष्टि में विकार हो जाता है, उसकी दृष्टि भीतर को संकुचित हो जाती है और अत्यन्त पीड़ा होती है ।

इस नेत्ररोग को गम्भीरिका कहते हैं। चारों पटल में वायु का प्रकोप होने से यह रोग असाध्य हो जाता है। ६१।

सनिमित्त लिंगनाश के लक्षण

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ
निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ६२ ॥
निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापात्-
ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनः सः।

सुश्रुत में दृष्टिगत १२ रोग कहे हैं। उनके अतिरिक्त दो बाह्य नेत्रविकार (लिंगनाश) आगन्तुज और बताये हैं। एक सनिमित्त लिंगनाश, दूसरा अनिमित्त लिंगनाश। विषैले फूलों के गंधवाले पवन के स्पर्शरूप निमित्त से मस्तक में संताप होकर जो लिंगनाश होता है उसे सनिमित्त लिंगनाश कहते हैं। अभिष्यन्द के लक्षणों से इस रोग का ज्ञान करना चाहिए। (गदाधर आचार्य ने रक्ताभिष्यन्द के लक्षणों से और कार्तिक आचार्य ने सन्निपाताभिष्यन्द के लक्षणों से इस रोग का निश्चय करना बताया है। यह असाध्य है)। ६२।

अनिमित्त लिंगनाश के लक्षण

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां
संदर्शनेनापि च भास्करस्य ॥ ६३ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य
स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः।
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति
वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ६४ ॥

इति दृष्टिगताः

देवर्षि, गन्धर्व, महोरग और सूर्य के सम्मुख देखने से जिस मनुष्य की दृष्टि नष्ट हो जाती है उस विकार को अनिमित्त लिंग-

नाश कहते हैं। इस रोग में नेत्र स्वच्छ बने रहते हैं, दृष्टि वैडूर्यमणि के समान रंगवाली और विमल रहती है। काच आदि कोई दोष नहीं होता, केवल दृष्टि की शक्ति नष्ट होती है। (यह असाध्य है)। ६३-६४।

श्वेतभाग के रोग

प्रस्तार्यर्म के लक्षण

प्रस्तार्यर्म तनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते।

नेत्र के श्वेत भाग में जो मांस बढ़े और वह सूक्ष्म फैला हुआ नीला या लाल रंग का हो उसे प्रस्तार्यर्म कहते हैं। (यह तीनों दोषों के प्रकोप से होता है)।

शुक्लार्म के लक्षण

सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्धते चिरात्॥६५॥

नेत्र के श्वेत भाग में बढ़ा हुआ मांस यदि किंचित् श्वेत, कोमल हो और बहुत दिनों में बढ़े तो उसे शुक्लार्म कहते हैं। यह कफ के प्रकोप से होता है। ६५।

रक्तार्म के लक्षण

पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते।

यदि श्वेत भाग में बढ़ा हुआ मांस लाल कमल की पंखड़ी के समान वर्णवाला और कोमल हो तो उसे रक्तार्म कहते हैं। यह रुधिर के विकार से होता है।

अधिमांसार्म के लक्षण

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम्॥

जो विस्तीर्ण, कोमल, स्थूल और यकृत् के समान लोहितवर्ण हो उस बढ़े हुए मांस को अधिकमांस कहते हैं। इसका रंग नीला भी होता है। (यह तीनों दोषों के विकार से होता है, क्योंकि सुश्रुत में त्रिदोषज प्रकरण में इसका निदान लिखा है)।

स्नाय्वर्म के लक्षण

स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम्।६६।

जो अर्म कठोर और शुष्क हो, बहता न हो उसे स्नाय्वर्म कहते हैं।

टिप्पणी—यह प्रस्तार्यर्म से उत्पन्न होता है, क्योंकि प्रस्तार्यर्म में स्राव होता है और जब वायु के प्रकोप से स्राव बन्द हो जाता है तो अर्म शुष्क और कठोर हो जाता है। उस अवस्था में इसका नाम स्नाय्वर्म है। यह सन्निपातज होने पर भी साध्य होता है। ६६।

शुक्तिका के लक्षण

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये
शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः।

नेत्र के श्वेत भाग में नीले रंग का, मांस के समान अथवा सीप के समान रंग का जो बिन्दु होता है उसे शुक्ति कहते हैं।

टिप्पणी—आचार्य वाग्भट ने इसके लक्षणों में कहा है कि यह पित्तज है। इसमें मैले दर्पण के समान अथवा पूरा सफेद बिन्दु होता है, दाह तथा पीड़ा होती है एवं ज्वर, अतिसार, पिपासा आदि उपद्रव भी होते हैं।

अर्जुन के लक्षण

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः
शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥६७॥

नेत्र के श्वेत भाग में एक बिन्दु खरगोश के रुधिर के समान लाल रंग का होता है, उसे अर्जुन कहते हैं। यह रुधिर के प्रकोप से होता है। ६७।

टिप्पणी—कल्याण विनिश्चय आचार्य के मतानुसार कृष्ण भाग में श्वेत बिन्दु को कफात्मक शुक्ल और शुक्ल भाग में स्थित रक्तबिन्दु को शोणितात्मक अर्जुन जानना चाहिए।

पिष्टक के लक्षण

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले पिष्टं समुन्नतम्।
पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसंनिभम् ॥६८॥

कफ और वायु के प्रकोप से नेत्र के श्वेत भाग में पिष्ट के लेप के समान ऊँचा, कफ के कारण सफेद और वायु के कारण किंचित

नीला, अतएव मलाक्त (मैल लगे हुए) दर्पण के समान विकार होता है। उसे पिष्टक कहते हैं। ६८।

टिप्पणी—आचार्य सुश्रुत ने इसे केवल कफज माना है।

शिराजाल के लक्षण

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु।

नेत्र के श्वेत भाग में शिराओं के द्वारा जल के आकार का एक बिन्दु किंचित् रक्तवर्ण और कठोर होता है, इसे शिराजाल कहते हैं। यह रक्तज होता है।

शिराजपिडका के लक्षण

शुक्लस्थाः सितपिडकाः शिरावृता या-
स्ता ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः।

नेत्र के श्वेत भाग में कृष्ण भाग के समीप, शिराओं से आच्छादित श्वेत पिडका होती है, इसे शिराजपिडका कहते हैं। यह विकार त्रिदोषज होता है, क्योंकि सुश्रुत ने त्रिदोषज साध्य प्रकरण में इसका उल्लेख किया है।

बलासग्रथित के लक्षण

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः॥ ६९॥

इति शुक्लजाः

कांस्य के समान कान्तियुक्त अथवा जलबिन्दु के समान सफेद, कठोर, कुछ ऊँची पिडका नेत्र के श्वेत भाग में हो जाती है, उसे बलासग्रथित कहते हैं। (यह कफ और वायु के प्रकोप से होती है)। ६९।

सन्धिगत रोग

पूयालस के लक्षण

पक्वः शोथः सन्धिजो यः सतोदः
स्रवेत् पूयं पूति पूयालसाख्यः।

(नेत्र के श्वेत भाग में होनेवाले ११ रोग कह चुके। अब सन्धियों में होनेवाले रोग कहते हैं)

कनीनिका सन्धि में शोथ होता है, वह पकता है, उसमें सुई चुभने की सी पीड़ा होती है और उसमें दुर्गन्धित पीब बहती है, उसे पूयालस कहते हैं।

टिप्पणी—यह त्रिदोषज है, क्योंकि सुश्रुत ने साध्य त्रिदोषज प्रकरण में इसका उल्लेख किया है। सन्धिगत ६ रोग होते हैं १ पूयालस, २ उपनाह, ३ पूयस्राव, ४ पैत्तिकस्राव, ५ श्लैष्मिकस्राव, ६ रक्तजस्राव, ७ पर्वणिका, ८ अलजी, ९ क्रिमिग्रन्थि।

श्लेष्मोपनाह के लक्षण

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी
कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ७० ॥

दृष्टि की सन्धि में बड़ी-सी गाँठ हो जाती है, वह कुछ पकती है, खुजली होती है, पीड़ा कम होती है। इसे श्लेष्मोपनाह कहते हैं। ७०।

टिप्पणी—वातश्लेष्मजन्य होने पर भी कफ का प्राबल्य होने से श्लेष्मोपनाह कहा है। आश्रय के प्रभाव से यह ग्रन्थि लाल रंग की होती है। सुश्रुत ने इस ग्रन्थि में अल्पस्राव होना भी लिखा है।

चारों प्रकार के स्राव की संप्राप्ति

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः
कुर्युः स्रावान् लक्षणैः स्वैरुपेतान्।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके
तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥ ७१ ॥

कफ आदि दोष अश्रुवाहिनी धमनियों (दो अश्रुवाहिनी धमनी हैं) द्वारा नेत्रान्तर्गत सन्धियों में प्राप्त होकर अपने-अपने लक्षणों के चार प्रकार के स्राव करते हैं। इसे नेत्रनाडी कहते हैं। (सन्निपातज, कफज, रक्तज और पित्तज भेद से स्राव चार प्रकार के होते हैं। व्याधि के प्रभाव से वातज स्राव नहीं होता। इनके लक्षण कहते हैं)। ७१।

पूयास्राव के लक्षण

पाकात् सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पूयं
पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु ।

नेत्रान्तर्गत सन्धि में शोथ होता है, वह पकता है, उससे पीब निकलता है, इसे पूयास्राव कहते हैं। यह रोग त्रिदोषज होता है।

टिप्पणी—कुछ आचार्यों ने इसे असाध्य बतलाया है, किन्तु साध्य तो है ही।

श्लेष्मस्राव के लक्षण

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु
श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारो मतस्तु ॥७२॥

जो स्राव सफेद, गाढ़ा और पिच्छिल हो (पिच्छिल के स्थान पर नीरुज पाठ किसी-किसी पुस्तक में है, जिसका अर्थ पीड़ारहित), उस विकार को श्लेष्मस्राव समझना चाहिए। ७२।

रक्तस्राव के लक्षण

रक्तस्रावः शोणितोत्थो विकारः
स्रवेद्दुष्टं तत्र रक्तं प्रभूतम् ।

नेत्रों से निरन्तर बहुत-सा दूषित रुधिर निकले, वह रक्तज स्राव रुधिर के विकार से होता है।

पित्तस्राव के लक्षण

हरिद्राभं पीतमुष्णं जलाभं
पित्तात्स्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात् ॥७३॥

हल्दी के समान पीला, जल के समान स्वच्छ, उष्ण स्राव नेत्र की सन्धियों से होता हो तो उसे पित्तज समझना चाहिए। ७३।

पर्वणी के लक्षण

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना
रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोथा ।
जाता सन्धौ कृष्णशुक्ले-

नेत्र के श्वेत और कृष्ण भाग की सन्धि में एक गोलाकार, सूक्ष्म, ताम्रवर्ण शोथ दाह-शूलयुक्त (पिडका) होता है, इसे पर्वणी कहते हैं। यह विकार रुधिर से अथवा कफवायु से होता है।

अलजी के लक्षण

ऽलजी स्या-
तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ७४ ॥

ऊपर कहे हुए (पर्वणी के) लक्षणों से युक्त श्वेत और कृष्ण भाग की सन्धि में अलजी नाम का एक विकार होता है। (यह शोथ पर्वणी की अपेक्षा स्थूल होता है) ॥ ७४ ॥

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने पर्वणी और अलजी दोनों के भेद को स्पष्ट किया है। पर्वणी में रक्त, कफ और वायु अंकुर के समान ग्रन्थि उत्पन्न करते हैं। इसमें दाह, चोष, ऊष्मा और पीत-अश्रुता होती है। अलजी में रक्त के साथ तीनों दोष मिलकर द्राक्षा के समान ग्रन्थि होती है। इसमें सुई चुभाने के समान पीड़ा और अश्रु की अधिकता होती है। यह असाध्य है।

क्रिमिग्रन्थि के लक्षण

क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च
कण्डूं कुर्युः क्रिमयः सन्धिजाताः।
नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ
चरन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ ७५ ॥

इति सन्धिगताः

नेत्र के शुक्ल भाग और पलकों की सन्धि में अनेक प्रकार के कीड़े उत्पन्न होकर ग्रन्थि उत्पन्न कर देते हैं और खुजली करते हैं, फिर नेत्र के अभ्यन्तर भाग को दूषित करके नेत्रों को खाते रहते हैं। इस विकार को क्रिमिग्रन्थि कहते हैं ॥ ७५ ॥

टिप्पणी—विदेह ने इस विकार को सन्निपातज बताया है। ये क्रिमि अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं।

वर्त्मगत रोग

उत्संग पिडका के लक्षण

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या ।
सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७६ ॥

पलकों के अभ्यन्तर भाग में ताँबे के रंग की पिडका होती है। उसका मुख भीतर को होता है। पलकों के ऊपर भी कुछ शोथ दिखाई देता है। पिडका स्थूल होती है और उसमें खुजली भी होती है। इसे उत्संगपिडका कहते हैं। यह विकार तीनों दोषों से होता है। ७६।

टिप्पणी—विदेह ने इस पिडका के विशेष लक्षण कहे हैं। यह पिडका बाहर नहीं दिखाई देती, कठिन और मंद वेदना युक्त होती है, इसके फूटने पर अण्डे के रस के समान स्राव होता है।

कुम्भीका के लक्षण

वर्त्मान्ते पिडका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।
कुम्भीकाबीजप्रतिमाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः । ७७ ।

पलकों के बार-बार भर जानेवाली भीतर अनार के बीजों के आकार की पिडकाएँ निकलती हैं। वे फूटती और बहती हैं। इन्हें कुम्भीका कहते हैं। यह विकार सन्निपातज और असाध्य होता है। ७७।

पोथकी के लक्षण

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसंनिभाः ।
रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥७८॥

पलकों में सरसों के बराबर लाल लाल फुंसियाँ होती हैं। उनमें भारीपन, खुजली, स्राव और पीड़ा होती है। इनको पोथकी कहते हैं। ७८।

टिप्पणी—ये पिडकाएँ कफज, साध्य एवं लाल होती हैं।

वर्त्मशर्करा के लक्षण

पिडका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता ।
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥७९॥

पलकों में एक स्थूल और खरदरी पिडका होती है, उसके आसपास छोटी-छोटी फुंसियाँ निकलती हैं। यह पिडका पलकों को दूषित कर देती है। इसे वर्त्मशर्करा कहते हैं। (विदेह ने इसे भी त्रिदोषज कहा है)। ७९।

अर्शोवर्त्म के लक्षण

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडका मन्दवेदनाः ।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ८०

पलकों के भीतर ककड़ी के बीज के समान जो पिडका कोमल अथवा कठोर होती है और उसमें पीड़ा कम होती है. उसको अर्शोवर्त्म कहते हैं। इसे भी कुछ आचार्यों ने त्रिदोष से उत्पन्न कहा है. और उनके मत से बाह्य भाग में भी ये पिडकाएँ होती हैं। ८०।

शुष्कार्श के लक्षण

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।
व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शोनाम नामतः ।८१।

पलकों के भीतरी भाग में शुष्क, कठोर, खरदरे और बड़े अंकुर निकलते हैं। ये बहुत कष्टदायक होते हैं। इस व्याधि का नाम शुष्कार्श है। . विदेह ने इसे भी सन्निपातज कहा है)। ८१।

अञ्जना के लक्षण

दाहतोदवती ताम्रा पिडका वर्त्मसंभवा ।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ।।८२।।

पलकों के भीतर रक्तवर्ण पिडका होती है, वह कोमल और सूक्ष्म होती है, उसमें दाह और सुई चुभाने की सी मन्द पीड़ा होती है, इसे अंजना कहते हैं। (यह रक्तज विकार है)। ८२।

बहुलवर्त्म के लक्षण

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडकाभिः समन्ततः ।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहुलवर्त्म तत् ।।८३।।

पलकों के भीतरी भाग में उस स्थान की त्वचा के समान वर्णवाली बहुत सी स्थिर पिडकाएँ हों, तो उन्हें बहुलवर्त्म कहते हैं (यह विकार भी त्रिदोषज होता है) । ८३ ।

वर्त्मबंधक के लक्षण

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।
न स संछादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८४ ॥

पलकों के ऊपर शोथ होता है, उसमें थोड़ी पीड़ा और खुजली होती है, वह मनुष्य अच्छी तरह आँखें मूँद नहीं सकता । इसे वर्त्म-बन्धक कहते हैं (यह सन्निपातज साध्य और लेख्य है) । ८४ ।

क्लिष्टवर्त्म के लक्षण

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥८५॥

पलकों के भीतरी भाग कोमल हों, उनमें थोड़ी पीड़ा होती हो, ताम्रवर्ण बने रहते हों, अकस्मात् लाल हो जाते हों, इस विकार को क्लिष्टवर्त्म कहते हैं । इसमें नीचे और ऊपर दोनों पलकों के कोए एक साथ लाल हो जाते हैं । ८५ ।

टिप्पणी—यह व्याधि कफ से दूषित रुधिर से होती है । किसी आचार्य ने 'समम्' का अर्थ 'अनुच्छूनम्' अर्थात् शोथ न होना लिखा है । अतिवेदना होने से क्लिष्टवर्त्म नाम है, यह भी किसी का मत है ।

वर्त्मकर्दम के लक्षण

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।
ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८६ ॥

जिसे क्लिष्टवर्त्म होता है, वह मनुष्य यदि पित्त बढ़ानेवाले पदार्थों का अधिक सेवन करता है तो उसका पित्त और रुधिर विदग्ध हो जाता है और पलकों में क्लेद हो जाता है । इस विकार को वर्त्मकर्दम कहते हैं । ८६ ।

श्याववर्त्म के लक्षण

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ८७ ॥

पलकों का बाहरी और भीतरी भाग काला पड़ गया हो, उसमें शूल और पीड़ा होती हो, उसे श्याववर्त्म कहते हैं । ८७ ।

टिप्पणी—कोई आचार्य इसके साथ 'सवेदनं सकण्डू च ह्यल्पक्लेदि त्रिदोषजम्', इतना और कहते हैं । यह भी युक्त है । कफ से खुजली, पित्त से अल्पक्लेद और वायु से पीड़ा तथा श्याववर्णता होती है । विदेह ने भी इसे त्रिदोषज[1] कहा है ।

प्रक्लिन्नवर्त्म के लक्षण

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥८८॥

पलकों के ऊपर शोथ हो और उसमें थोड़ी पीड़ा हो, उसे प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं । इस विकार में भीतर क्लेद बहुत होता है ।८८।

टिप्पणी—यह कफजन्य होता है । बिना शस्त्र-कर्म के ही अच्छा हो जाता है ।

अक्लिन्नवर्त्म के लक्षण

यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यन्ते पुनः पुनः ।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥८९॥

आँखें न धोने से और धोने पर भी, बार बार पलकें चिपक जाती हों और वर्त्म पके न हों और न पीव निकलता हो, इसे अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं । ८९ ।

टिप्पणी—अक्लिन्नवर्त्म को ही पिल्ल कहते हैं ।

वातहतवर्त्म के लक्षण

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ।

---

१ दुष्टः श्लेष्मा मरुत् पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा । अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः"—इति । अत्र वाताधिकत्वं बोद्धव्यम् ।

एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९० ॥

जिसकी पलकों की सन्धियाँ अलग-अलग हो गई हों, पलकें न मिचती हों। (शिराओं में विश्लेष होने से) निमेष और उन्मेष न होता हो, इसे वातहतवर्त्म कहते हैं। ९०।

टिप्पणी—इसमें वातजन्य होने से पीड़ा होती है। यह असाध्य रोग है (सुश्रुत ने असाध्य प्रकरण में इसका उल्लेख किया है)।

वर्त्मार्बुद के लक्षण

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्।
आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥ ९१ ॥

पलकों के भीतर थोड़ी पीड़ावाली गाँठ के समान शोथ हो जाता है। शोथ विषम होता है अर्थात् गोल नहीं होता। कुछ रक्तवर्ण होता है और शीघ्र बढ़ता है। (पकता नहीं) इसे वर्त्मार्बुद कहते हैं। ९१।

टिप्पणी—यह त्रिदोषज होता है। वात के अनुबन्ध से वेदना, रक्तवर्णता पित्त के अनुबन्ध से और पाक न होना कफ के अनुबन्ध से होता है। यह छेद्यसाध्य है।

निमेष के लक्षण

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो सन्धिसंश्रयाः।
प्रचालयति वर्त्मानि निमेषं नाम तद्विदुः ॥ ९२ ॥

पलकों की सन्धि में रहनेवाली और पलकें खोलने और मूँदने-वाली शिराओं में धातु प्रविष्ट होकर पलकों को चलायमान कर देता है। इस विकार को निमेष कहते हैं। वह मनुष्य जल्दी जल्दी पलकें मीचता है (यह असाध्य वातज रोग है)। ९२।

शोणितार्श के लक्षण

यः स्थितो वर्त्ममध्ये तु लोहितो मृदुरङ्कुरः।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्धते ॥ ९३ ॥

पलकों में मांस के अंकुर कोमल और रक्तवर्ण निकलते हैं, वे

बार-बार काटने पर भी बढ़ते रहते हैं। इसे शोणितार्श कहते हैं। यह रक्तज व्याधि है और असाध्य होता है। ९३।

टिप्पणी—इनमें न स्राव होता है और न पीड़ा होती है। आचार्य विदेह ने इसे वात के कारण उत्पन्न रक्तज व्याधि कहा है। यह असाध्य होती है।

लगण के लक्षण

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिवर्त्मभवोऽरुजः।
लगणो नाम स व्याधिर्लिङ्गतः परिकीर्तितः॥ ९४॥

पलकों के ऊपर न पकनेवाली, कठोर, स्थूल ग्रन्थि निकलती है, उसमें थोड़ी पीड़ा होती है, उसे लगण कहते हैं। ९४।

टिप्पणी—यह व्याधि कफ के विकार से होती है। साध्य एवं भेद्य है। 'सकण्डुः पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः' कहीं कहीं इतना अधिक पाठ है। ग्रन्थि बेर के बराबर, चिकनी तथा उसमें कुछ खुजली होती है।

बिसवर्त्म के लक्षण

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः।
प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत्॥ ९५॥

कुपित हुए तीनों दोष पलकों के ऊपर शोथ और पलकों के भीतर छिद्र उत्पन्न करते हैं। उन छिद्रों से कमलनाल के सदृश जल का स्राव होता है। इसे बिसवर्त्म कहते हैं। ९५।

टिप्पणी—पलकों के भीतरी ओर ही छिद्र और शोथ होता है किन्तु बाहर से भी दिखता है। यह भेद्य रोग है। सात्यिकि ने इसे दुःसाध्य कहा है।

कुञ्चन के लक्षण

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा।
तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः॥ ९६॥

वातादि दोष कुपित होकर जब पलकों में संकोच कर देते हैं, तब पलकें न खुलने से वह मनुष्य देख नहीं सकता। इस विकार को कुंचन कहते हैं। ९६।

टिप्पणी—सुश्रुत में इसका उल्लेख नहीं है। माधव कर ने और किसी ग्रन्थ से इसका संग्रह किया है। सुश्रुत में कहे हुए ७६ नेत्ररोगों के अतिरिक्त यह विकार है।

पक्ष्मकोप के लक्षण

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि ।
घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥६७॥
असिते सितभागे च मूलकोषात् पतन्त्यपि ।
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥६८॥

वायु से चलायमान पलकों के बाल नेत्रों के भीतर चले जाते हैं और नेत्रों में बारबार घिसने से श्वेत अथवा कृष्णभाग में शोथ उत्पन्न कर देते हैं। यह विकार बालों की जड़ में होता है, इसलिए पलकों के बाल गिर जाते हैं। इस परमदारुण व्याधि को पक्ष्मकोप कहते हैं। ६७-६८।

टिप्पणी—वायु प्रकुपित होने पर कफ और पित्त भी कुपित हो जाते हैं। इस प्रकार यह व्याधि त्रिदोषज है। इसको परबाल, पड़बाल या उपरिबाल नाम से भी लोग कहते हैं।

पक्ष्मशात के लक्षण

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥६९॥

इति वर्त्मगताः

पलकों के बालों की जड़ में व्याप्त पित्त बालों को गिरा देता है, खुजली और दाह भी करता है। इसे पक्ष्मशात कहते हैं। ६९।

टिप्पणी—यह कफपित्तज व्याधि है। खुजली कफ से और दाह पित्त से होता है। यह रोग भी सुश्रुतोक्त संख्या के अतिरिक्त है।

(नव सन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥१॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥२॥)

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नेत्ररोगनिदानं समाप्तम् । ५९ ।

(सन्धियों में नव, पलकों में इक्कीस, श्वेतभाग में ग्यारह, कृष्ण भाग में चार, सम्पूर्ण नेत्र में सत्रह, दृष्टि में बारह और बाह्य भाग में दो, परम दारुण रोग होते हैं। १-२।)

टिप्पणी—सुश्रुतोक्त ७६ भेदों का दोषस्थान और स्थानभेद से नाम लिखते हैं। वातिक रोग—१ हताधिमन्थ २ निमिष ३ दृष्टिगम्भीरिका ४ वातहतवर्त्म ५ वातिककाच ६ अन्यतोवात ७ शुष्काक्षिपाक ८ वाताधिमंथ ९ वाताभिष्यन्द १० वातविपर्यय।

पैत्तिक रोग—१ ह्रस्वजाड्य २ पैत्तिक (जल) स्राव, ३ परिम्लायि काच ४ नीलिका काच ५ पित्ताभिष्यन्द ६ पित्ताभिमन्थ ७ अम्लाध्युषित ८ शुक्तिका ९ पित्तविदग्धदृष्टि १० धूमदर्शी।

श्लैष्मिक रोग—१ श्लैष्मिक स्राव २ श्लैष्मिक काच ३ श्लैष्मिक अभिष्यन्द ४ श्लैष्मिक अधिमन्थ ५ बलासग्रन्थि ६ श्लैष्मिक विदग्धदृष्टि ७ पोथकी ८ लवण ९ क्रिमिग्रन्थि १० परिक्लिन्न वर्त्म ११ शुक्लार्म १२ पिष्टक १३ श्लेष्मोपनाह।

रक्तज रोग—१ रक्तजस्राव २ अजकाजात ३ शोणितार्श ४ सव्रण शुक्ल ५ रक्तजकाच ६ रक्ताधिमन्थ ७ क्लिष्टवर्त्म ८ शिराहर्ष ९ शिरोत्पात १० शिराजाल ११ अंजननामिका १२ अर्जुन १३ पर्वणी १४ अव्रण शुक्ल १५ शोणितार्म।

सन्निपातज—१ पूयस्राव २ नकुलान्ध्य ३ अक्षिपाकात्यय ४ अलजी ५ सन्निपातज काच ६ पक्ष्मकोप ७ वर्त्मावबन्ध ८ शिराजपिडका ९ प्रस्तार्यर्म १० अधिमांसमर्म ११ स्नाय्वर्म १२ उत्सङ्गिनी १३ पूयालस १४ अर्बुद १५ श्याववर्त्म १६ कर्दमवर्त्म १७ अर्शोवर्त्म १८ शुष्कार्श १९ वर्त्मशर्करा २० सशोफपाक २१ अशोफपाक २२ बहुलवर्त्म २३ अक्लिन्न वर्त्म २४ कुम्भीका २५ बिसवर्त्म।

बाह्यज—१ सनिमित्तज २ अनिमित्तज ये रोग साध्य, याप्य असाध्य तीन प्रकार के होते हैं।

असाध्य—(वातिकों में से) १ हताधिमन्थ २ निमिष ३ दृष्टिगम्भीरिका ४ वातहतवर्त्म (पैत्तिकों में से) ५ ह्रस्वजाड्य ६ पैत्तिकजलस्राव (श्लैष्मिकों में से) ७ कफजस्राव (रक्तजों में से) ८ रक्तजस्राव ९ अजकाजात १० शोणितार्श ११ सव्रणशुक्र (सन्निपातजों में से) १२ पूयास्राव १३ नकुलान्ध्य १४ अक्षिपाकात्यय १५ अलजी १६ दोनों बाह्यज।

याप्य—१ पक्ष्मकोप २ वातिक काच ३ पैत्तिक काच ४ श्लैष्मिक काच ५ रक्तज काच ६ सन्निपातज काच ७ परिम्लायि काच शेष ५२ रोग साध्य हैं।

शिरोरोगनिदान

शिरोरोग के भेद

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रिमिभिस्तथा ॥
सूर्यावर्तानन्तवातार्धावभेदकशङ्खकैः ॥ १ ॥

शिरोरोग ग्यारह प्रकार के होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, क्रिमिज तथा सूर्यावर्त, अनन्तवात, अर्धावभेदक, शंखक । (सब प्रकार के शिरोरोग त्रिदोषज होते हैं । वातादिभेद उत्कर्ष के लिए कहे हैं) । १ ।

वातज शिरोरोग के लक्षण

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च
भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र
शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ २ ॥

शिर में अकारण तीव्र पीड़ा होती हो, रात्रि में पीड़ा अधिक बढ़ती हो, शिर बाँधने से और पसीना आने से शांति मिलती हो, उस पीड़ा को वातज समझना चाहिए । २ ।

पित्तज शिरोरोग के लक्षण

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव
भवेच्छिरो धूप्यति चाक्षिनासम् ।
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च
शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ३ ॥

जिसका शिर अंगारों से आच्छादित के समान उष्ण हो, नाक और आँखों से धुआँ-सा निकलता हो, शीतल पदार्थों के सेवन से और रात्रि में पीड़ा कम हो जाती हो, उसे पित्तज समझना चाहिए । ३ ।

कफज शिरोरोग के लक्षण

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं
गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च ।
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य
शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

जिसका सिर कफ से लिपा हुआ, भारी, बंधा-सा और शीतल होहै, नेत्रों के गोलक सूज गये हों उस पीड़ा को कफ के प्रकोप से समझना चाहिए । इस पीड़ा में स्वेद आदि से शान्ति मिलती है । ४ ।

सन्निपातज शिरोरोग के लक्षण

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते
सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।

त्रिदोषज शिरोरोग में तीनों दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं ।

टिप्पणी—चरकसंहिता में त्रिदोषज शिरोरोग में वायु से शूल, भ्रम, कम्प; पित्त से दाह, मद, तृष्णा ; कफ से भारीपन और तन्द्रा होती है ।

रक्तज शिरोरोग के लक्षण

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः
स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ५ ॥

रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरोरोग के समान लक्षण होते और शिर का स्पर्श नहीं सहा जाता । ५ ।

क्षयज शिरोरोग के लक्षण

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां
शिरोगतानामिह संक्षयेण ।
क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः
कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यै-
रसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ६ ॥

शिरोगत रुधिर, वसा, कफ और वायु के क्षीण होने से क्षयज शिरोरोग होता है, यह कष्टसाध्य है। अत्यन्त पीड़ा होती है। संस्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिरमोक्षण से पीड़ा बढ़ती है। ६।

टिप्पणी—क्योंकि संस्वेदन और धूम्रपान से कफ और वसा का क्षय होता है और रुधिरमोक्षण से रुधिर का क्षय होता है, इसलिए इन क्रियाओं से पीड़ा बढ़ती है। विदेह ने क्षयज शिरोरोग में होनेवाले उपद्रव इस प्रकार कहे हैं—"अर्थात् क्षयजशिरोरोग में देह घूमती है, शिर में सुई चुभाने की सी पीड़ा और शून्यता होती है, आँखों की पुतली घूमती हैं, मूर्च्छा आती और देह में पीड़ा होती है।

क्रिमिज शिरोरोग के लक्षण

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं
संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः।
घ्राणाच्च गच्छेत् सलिलं सपूयं
शिरोऽभितापः क्रिमिभिः स घोरः ॥ ७ ॥

जिसके सिर में सुई चुभाने की सी अत्यन्त पीड़ा हो, कीड़ों के काटने से सिर बार-बार फड़क उठता हो, नाक से पीव सहित पानी गिरता हो, (कभी-कभी कीड़े भी गिरते हों, क्योंकि चरक ने कहा है:—क्रिमीणां दर्शनेन च) उसे क्रिमिज शिरोरोग समझना चाहिए। ७।

सूर्यावर्त के लक्षण

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्द-
मक्षिभ्रुवं रुक् समुपैति गाढा।
विवर्धते चांशुमता सहैव
सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं
सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

सूर्योदय के समय से आँखों के ऊपर भौंहों में थोड़ी-थोड़ी पीड़ा आरम्भ होकर सूर्य की किरणों के साथ बढ़ती जाय अर्थात् जैसे-

जैसे दिन चढ़े वैसे वैसे ही क्रमशः पीड़ा भी बढ़ता जाय और सन्ध्या को पीड़ा शान्त हो जाय। यह त्रिदोषज विकार कष्टसाध्य होता है। इसे सूर्यावर्त कहते हैं। ८।

टिप्पणी—आचार्य दृढ़बल ने इसका कारण बतलाया है सूर्य की गरमी से मस्तिष्क का मस्तुलुङ्ग पिघलने लगता है, इससे पीड़ा बढ़ती है और सूर्यास्त होते ही शान्त हो जाता है। दूसरा इसका विपर्यय चातुर्थिक विपर्यय ज्वर के समान भी होता है जो शीत से बढ़ता है और उष्णता से शान्त होता है। किसी-किसी आचार्य ने इसे वातपित्तज माना है।

अनन्तवात के लक्षण

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां
संपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम्।
कुर्वन्ति योऽक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे
स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ९ ॥
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं
हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति
दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥१०॥

तीनों दोष कुपित होकर गले के पश्चात् भाग में और मन्य नाड़ी में तीव्र पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं। भौंहों में और कनपटी में भी पीड़ा होती है। गंडपार्श्व में कम्प होता है, हनुग्रह (एक प्रकार की वातव्याधि) और नेत्र के रोग हो जाते हैं। इसे अनन्तवात कहते हैं। यह शिरोविकार तीनों दोषों से होता है। ९-१०।

टिप्पणी—सुश्रुत ने अनन्तवात का समावेश अन्यतोवात में ही कर लिया है, किन्तु माधवाचार्य ने कफ आदि अधिक लक्षण देखकर इसे अन्यतोवात से पृथक् माना है।

अर्धावभेदक के लक्षण

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः।

वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ ११ ॥
केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसो बली ।
मन्याभ्रशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥ १२ ॥
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं वाऽथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥१३॥

रूखा अन्नखाने से, एक बार का भोजन पचे बिना फिर भोजन करने से, पूर्व की वायु से, तुषार से, अत्यन्त मैथुन करने से, मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से, बहुत परिश्रम और व्यायाम करने से वायु कुपित हो जाता है। केवल बलवान् वायु अथवा कफ सहित वायु सिर के आधे भाग को ग्रहण करके उस भाग में मन्या (ग्रीवाशिराद्वयम्) भौंह, कनपटी, कान, आँख और आधे मस्तक में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करता है। शस्त्र से काटने के समान अथवा मथने के समान तीव्र पीड़ा होती है। इसे अर्धावभेदक (आधा-सीसी) कहते हैं। रोग अत्यन्त बढ़ने पर नेत्रों अथवा कानों की शक्ति नष्ट कर देता है। सुश्रुत ने इसे त्रिदोषज कहा है।। ११-१३।

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने इसके विषय में कहा है कि कुपित वायु सिर के किसी एक तरफ श्लेष्मा द्वारा रुक जाता है तो तोद, स्फुरन, दालन, शूल और अवदारण, चुभना, फोड़ना, चीरना, फाड़ना जैसी पीड़ा सिर में होती है। आँख भी झरती है। इसका वेग ३।५।१५।।३० दिन बाद होता है।

शंखक के लक्षण

रक्तपित्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः ।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१४॥
स शिरो विषवद्वेगी निरुन्ध्याशु गलं तथा ।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नामतः परम् ।
त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥१५॥

इति श्रीमाधवकरविरचि माधवनिदाने शिरोरोगनिदानं
समाप्तम् । ६० ।

बढ़े हुए और कुपित पित्त, वायु और रुधिर कनपटी में प्राप्त होकर तीव्र पीड़ा, दाह और लाल रंग का दारुण शोथ उत्पन्न कर देते हैं। वह शोथ विष के समान वेगवान् होता है। शीघ्र ही सिर और गले को अवरुद्ध करके यह शंखक तीन ही दिन में रोगी का प्राणान्त कर देता है। यदि कुशल वैद्य सोचविचारकर चिकित्सा करे तो रोगी तीन दिन के बाद भी जीवित रह सकता है। अर्थात् तीन दिन तक रोग साध्य और उसके बाद असाध्य होजाता है।१४-१५।

टिप्पणी—आचार्य विदेह ने इसमें तृष्णा, मूर्च्छा और ज्वर के उपद्रव भी कहे हैं। कुशल चिकित्सक द्वारा शुरू में ही (३ दिन से पहले) उपचार होने पर बच जाता है।

असृग्दरनिदान

प्रदर के निदान और भेद

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णा-
द्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च
भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ।
तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातै-
श्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ १ ॥

संयोगविरुद्ध पदार्थों के सेवन से, बहुत मद्य पीने से अथवा दूषित मद्य पीने से, भोजन के ऊपर भोजन करने से, अजीर्ण से, गर्भपात से, अत्यन्त मैथुन से, बहुत मार्ग चलने से, अत्यन्त शोक और लंघन करने से, भारी बोझ ढोने से, दिन में सोने से, वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज, चार प्रकार के प्रदर रोग स्त्रियों के होते हैं।१।

टिप्पणी—योनिद्वारा स्राव जो मासिक के बिना होता है, सामान्यतया यह दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें आर्तव न आकर सफेद मटियाला सा स्राव आता है, इसको श्वेत प्रदर कहते हैं। दूसरे रक्तप्रदर में

आर्तव आता है, जो विकृत होकर मासिक समय के विना लाली लिये हुए अनेक रंग का आता है, उसे रक्तप्रदर कहते हैं।

प्रदर के सामान्य लक्षण

असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम्।

सब प्रकार के प्रदर रोगों में अंगों में पीड़ा होती है और वेदना के साथ आर्तव आता है (ऋतु के विना भी आर्तव की प्रवृत्ति होती है जैसा कि सुश्रुत ने लिखा है)।

प्रदर के उपद्रव

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥२॥

आर्तव की अति प्रवृत्ति होने पर दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पाण्डुवर्णता, तन्द्रा और वातजरोग (आक्षेपक और कम्प आदि) होते हैं। २।

श्लैष्मिक आदि भेद से विशेष लक्षण

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु
पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु।
सपीतनीलासितरक्तमुष्णं
पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ३ ॥
रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं
वातार्ति वातात् पिशितोदकाभम्।
सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं
मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषात् ॥ ४ ॥

असाध्य के लक्षण

तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा
न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम्।

शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् ।
क्षीणरक्तां दुर्बलां च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥५॥

कफज प्रदर में आर्तव आमरससंयुक्त, सेमर आदि के गोंद के समान कुछ चिकना, पाण्डुवर्ण अथवा मांस के धोवन के सदृश आता है। पित्तज प्रदर में पीला, नीला, काला अथवा लाल, उष्ण, पित्तार्ति (दाह आदि) युक्त और अत्यन्त वेग से आर्तव आता है। वातज प्रदर में रूखा, लाल, फेना सहित, थोड़ा-थोड़ा, वातज पीड़ा के साथ, मांस के धोवन के समान आर्तव निकलता है। त्रिदोषज प्रदर में घी, शहद अथवा हरिताल के रंग का, मज्जा के समान आर्तव निकलता है। उसमें मुर्दे की सी दुर्गन्ध होती है। त्रिदोषज प्रदर असाध्य होता है; वैद्य को उसकी चिकित्सा न करनी चाहिए। निरन्तर आर्तव का स्राव होता हो, तृष्णा, दाह, ज्वर, रुधिर की क्षीणता और दुर्बलता, ये उपद्रव हों, उसे भी असाध्य समझना चाहिए। ३-५।

विशुद्ध आर्तव के लक्षण

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥
शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु[1] न विरज्यते ॥ ७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽसृग्दरनिदानं समाप्तम् ॥ ६१ ॥

विशुद्ध आर्तव महीने-महीने आता है और (अधिक-से-अधिक) पाँच रात्रि तक रहता है। चिकना नहीं होता। दाह और पीड़ा नहीं होती। आर्तव बहुत अधिक अथवा बहुत कम नहीं होता। खरगोश के रुधिर के समान अथवा लाक्षारस के समान होता है। आर्तव यदि कपड़े में लगे तो धोने से लाल नहीं हो जाता। ये विशुद्ध आर्तव के लक्षण हैं। ६-७।

---

१ 'यद्वासो' इति पाठान्तरम्।

योनिव्यापन्निदान

विंशतिर्व्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ॥ १ ॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ।

बीस प्रकार के योनिव्यापत्तिरोग रोगसंग्रह में कहे गये हैं। अहित आहार-विहार करने से, आर्तव के दूषित होने से, माता-पिता के बीजदोष से अथवा दुर्भाग्य से ये रोग होते हैं। उनके लक्षण अलग-अलग कहते हैं, सुनो। १।

टिप्पणी—यहाँ योनि से गर्भाशय योनिमार्ग भग अर्थात् समस्त स्त्री-इन्द्रिय समझना चाहिए।

वातजा के लक्षण

सा फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥ २ ॥
वन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ३ ॥
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

वायु के विकार से पाँच प्रकार के योनिरोग होते हैं:—उदावर्ता, वन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता, वातला। १ उदावर्ता योनि से रज कष्ट के साथ फेन सहित निकलता है। २ वन्ध्या में आर्तव नष्ट हो जाता है। ३ विप्लुता में नित्य पीड़ा होती है। ४ परिप्लुता योनि में मैथुन के समय अत्यन्त पीड़ा होती है। ५ वातला योनि कर्कश और स्तब्ध होती है, शूल और चुभाने की सी पीड़ा होती है। वातला योनि में उपर्युक्त चारों की अपेक्षा वातज वेदना अधिक होती है। २-४।

टिप्पणी—उदावर्ता को सुश्रुत ने इसी नाम से, चरक ने उदावर्तिनी, वाग्भट्ट ने उदावृत्ता और शार्ङ्गधर ने उपप्लुता नाम से कहा है।

सुश्रुत ने इसे वातज, चरक ने उदावर्तिनी माना तो वातज और यदि उपप्लुता माना तो (क्योंकि उपप्लुता के ही लक्षण ठीक मिलते हैं) वात-कफज और वाग्भट ने वातज ही माना है। वन्ध्या को चरक ने शुष्क (वातिक), सुश्रुत ने वन्ध्या (वातिक), वाग्भट ने लोहितक्षया (वातपैत्तिक), शार्ङ्गधर ने लोहितक्षया (वातिक) माना है। विप्लुता को सुश्रुत, वाग्भट और शार्ङ्गधर ने इसी नाम से और चरक ने उपप्लुता में ही लिया है। सुश्रुत ने वातिक और वाग्भट ने वात-श्लेष्मज माना है। परिप्लुता के लक्षण चरक ने अधिक लिखे हैं। यथा—शोथ, छूने में कष्ट, कष्टसहित नीला-पीला स्राव होना, मूत्राशय, कुक्षि में भारीपन, श्रोणि और वंक्षण में चुभाने की सी पीड़ा, अतिसार, अरुचि और ज्वर। वातला को सभी ने इसी नाम से माना है।

पित्तजा के लक्षण

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया।
सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम्॥ ५॥
प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात्॥ ६॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्॥ ७॥

पित्त के प्रकोप से भी पाँच प्रकार के योनिरोग होते हैं—लोहितक्षया, वामिनी, प्रस्रंसिनी, पुत्रघ्नी और पित्तला। लोहितक्षया योनि में दाह के साथ बहुत रुधिर निकलता है। इससे रुधिरक्षय होता है। वामिनी योनि रज और वात के साथ वीर्य को गिरा देती है। प्रस्रंसिनी योनि क्षोभित होकर स्थान से हट जाती है और संतान कष्ट से उत्पन्न करती है। पुत्रघ्नी योनि रुधिर का क्षय होने से बार-बार गर्भ धारण करती है और गर्भपात हो जाता है। पित्तला योनि में दाह, पाक और ज्वर अत्यन्त होता है। यद्यपि उपर्युक्त चारों प्रकार की योनि में दाह-पाक आदि पित्त के उपद्रव होते हैं, किन्तु इसमें औरों की अपेक्षा अधिक होने से इसका नाम पित्तला है। ५-७।

टिप्पणी—लोहितक्षया को वाग्भट, शाङ्गधर और चरक ने अरजस्का, तथा सुश्रुत ने लोहित और रुधिरक्षय नाम से माना है। वामिनी को सुश्रुत ने पित्तजा, चरक ने वात-पित्तजा और वाग्भट ने वातजा माना है। प्रस्रंसिनी को वाग्भट, चरक ने अन्तर्मुखी (रक्तयोनि) माना है। पुत्रघ्नी को चरक, सुश्रुत ने इसी नाम से तथा सुश्रुत और शाङ्गधर ने जातघ्नी माना है। पित्तला को सबने इसी नाम से स्वीकार किया है।

कफजा के लक्षण

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ८ ॥
मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विन्दति ॥ ९ ॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रया भवेत् ॥ १० ॥

कफ से भी पाँच प्रकार के योनि रोग होते हैं—अत्यानन्दा, कर्णिका, अचरणा, अतिचरणा और श्लेष्मा। अत्यानन्दा योनि मैथुन से कभी संतुष्ट नहीं होती। कर्णिका योनि में कफ और रुधिर के विकार से कन्द के समान मांस की ग्रन्थि होती है। अचरणा योनि पुरुष से पहले ही स्खलित हो जाती है। अतिचरणा योनि बहुत बार मैथुन करने से ऐसी हो जाती है कि बीज को धारण नहीं कर सकती है. योग्य होती है। अतएव अचरणा और अतिचरणा योनि वीर्य धारण नहीं कर सकती। श्लेष्मा योनि अतिशीतल और पिच्छिल होती है। इसमें खुजली बहुत होती है और कफ के लक्षण भी अधिक होते हैं। ८-१०।

टिप्पणी—सुश्रुत ने अत्यानन्दा (श्लैष्मिकी), चरक ने अचरणा (वातिकी), वाग्भट ने कण्डुरा (वातश्लेष्मिकी) और शाङ्गधर ने नन्दा माना है। कर्णिका को सुश्रुत चरक ने वातश्लेष्मजा, तथा वाग्भट ने वातश्लेष्मरक्तजा माना है। अचरणा को सुश्रुत ने श्लेष्मजा, तथा चरक और वाग्भट ने वातजा माना है। अतिचरणा को चरक और वाग्भट ने

वातजा तथा सुश्रुत ने श्लेष्मजा माना है। श्लेष्मजा के सम्बन्ध में सभी आचार्य सहमत हैं।

सन्निपातजा के लक्षण

अनार्तवाऽस्तनी षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने।
अतिकायगृहीतायास्तरुण्यास्त्वण्डली भवेत्॥११॥
विवृता च महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता।
सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा॥ १२ ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्।
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः॥१३॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने योनिव्यापन्निदानं समाप्तम्॥ ६२ ॥

तीनों दोषों के प्रकोप से पाँच प्रकार के योनिरोग होते हैं—षंडी, अंडली, विवृता, सूचीवक्त्रा और सर्वदोषजा। षंडी योनि आर्त्तवरहित और खरस्पर्शा होती है। उस स्त्री के स्तन बहुत छोटे होते हैं। अंडली योनि का मुख संकुचित होता है और स्थूल लिंग-वाले पुरुष के साथ भोग करने से योनि अंड के समान निकल आती है। विवृता योनि का मुख फैला हुआ होता है। सूचीवक्त्रा का मुख बहुत संकुचित होता है। सर्वदोषजा योनि में तीनों दोषों के लक्षण उपर्युक्त चारों की अपेक्षा बहुत बढ़े हुए होते हैं। ये पाँच प्रकार की त्रिदोषजा योनियाँ असाध्य होती हैं। ११-१३।

टिप्पणी—षंडी को चरक, वाग्भट वातज और सुश्रुत त्रिदोषज मानते हैं। अंडली को चरक और वाग्भट ने अन्तर्मुखी और सुश्रुत ने फलिनी माना है। अन्तर्मुखी तथा विवृता को सभी आचार्यों ने महायोनि कहा है। चरक तथा वाग्भट ने वातजा, सुश्रुत ने सन्निपातजा माना है। सूचीवक्त्रा को सूचीमुखी भी कहा है, इसे चरक और वाग्भट ने वातजा माना है।

योनिकन्दनिदान

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् ।
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यदा ॥१॥
पूयशोणितसंकाशं लिकुचाकृतिसंनिभम् ।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः ॥२॥

दिन में सोने से, अत्यन्त क्रोध करने से, अधिक परिश्रम और अधिक मैथुन करने से, नख अथवा दन्त आदि द्वारा क्षत होने से वातादि दोष जब योनि में कुपित हो जाते हैं तो योनि में पीब और रुधिर के समान बड़हल की गाँठ की आकृति के गुल्म निकलते हैं। इनको योनिकन्द कहते हैं। १-२।

टिप्पणी—यह प्रायः अतिमैथुन से या वृद्धावस्था में शिथिलता आने से हो जाता है।

वातजादि भेद से लक्षण

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् ।
दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकं तु तम् ॥३॥
नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् ।
सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं विदुः ॥४॥

इति माधवकरविरचिते माधवनिदाने योनिकन्द-
निदानं समाप्तम् ॥ ६३ ॥

योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण और फटा हुआ हो तो वातज समझे। यदि दाह हो, लाल रंग का हो, स्त्री के ज्वर भी आवे तो पित्तज समझे। नील अलसीपुष्प के समान हो और खुजली होती हो तो कफज तथा तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों तो त्रिदोषज समझना चाहिए। ३-४।

मूढगर्भनिदान

गर्भपात के निदान

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात् ।
गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥१॥

भय से, चोट लगने से, तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थों के खाने-पीने से, पीड़ा के साथ पहिले रुधिर दिखाई देता है, फिर गर्भपात हो जाता है।१।

कालभेद से गर्भस्राव और गर्भपात

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ।
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥२॥

चौथे महीने तक गर्भस्राव होता है। क्योंकि उस समय तक गर्भ द्रव रहता है। उसके बाद पाँचवें छठे महीने में गर्भ के अवयव कुछ पुष्ट हो जाते हैं। उस समय गर्भ गिरने को गर्भपात कहते हैं। २।

गर्भपात का निदानपूर्वक दृष्टान्त

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः
पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ।

चोट लगने से, विषम भोजन से और पीडन आदि से, अकाल में गर्भपात उसी प्रकार हो जाता है जैसे पका हुआ फल अभिघात से अकाल में गिर पड़ता है।

उचित प्रसवकाल में कैसे मूढगर्भ होता है—

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् ॥३॥

अपने कारणों से गर्भाशय में कुपित हुआ वायु जब अवरुद्ध हो जाता है तो गर्भ को मूढ़ (रुद्ध गति) कर देता है। तब योनि और पेट आदि में शूल तथा मूत्र का अवरोध हो जाता है। ३।

मूढगर्भ आठ प्रकार से योनिद्वार में अटक जाता है—

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः
संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ।

द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित्
कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥४॥
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन
तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ।
पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चि-
दित्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा ॥५॥

मूढगर्भ वायु के प्रकोप से योनि के द्वार में अनेक प्रकार से रुक जाता है। कोई तो सिर से योनि के मार्ग को रोक देता है, कोई पेट से, कोई शरीर के उलट जाने से, कोई कुब्ज देह से, कोई एक हाथ से, कोई दोनों हाथों से, कोई तिरछा होकर, कोई गर्दन को झुकाकर, कोई पार्श्व के झुक जाने से योनि के द्वार पर रुक जाता है। इस प्रकार किसी वैद्य ने आठ प्रकार से मूढगर्भ का अवरोध कहा है और कुछ आचार्यों ने चार प्रकार से बताया है। चार प्रकार के अवरोध आगे कहते हैं। ४-५।

टिप्पणी—आधुनिक विद्वानों के सभी भेद इन ही आठ प्रकारों में आ जाते हैं।

मूढगर्भ अटकने की ४ विशेष गति

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीज-
स्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत् स कीलो
दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरं स हि कायसङ्गी ॥
गच्छेद्भुजद्वयशिरा स च बीजकाख्यो
योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥६॥

कीलक, प्रतिखुर, परिघ और बीज, ये चार अवरुद्ध मूढगर्भ के नाम हैं। संकीलक उसे कहते हैं जो ऊर्ध्वबाहु, चरण और सिर से कील के समान योनि में रुक जावे। प्रतिखुर उसे कहते

हैं जो सिर और हाथ-पैर खूर के समान बाहर निकल आवें और शरीर योनिद्वार में रुक जाय; परिघ उसे कहते हैं जो परिघ के समान योनिद्वार में रुक जाय। बीज उसे कहते हैं, जिसका सिर और दोनों हाथ बाहर निकल आवें। ६।

मूढगर्भ और गर्भिणी के असाध्य लक्षण

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा ।
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥७॥

मूढगर्भ के कारण जिस स्त्री का सिर अवनत हो गया हो अर्थात् सिर धारण करने की शक्ति जिसमें न रह गई हो, जिसके अंग शीतल हो गये हों, जिसकी लज्जा जाती रही हो, कोख में नीलवर्ण सिराएँ दिखाई देती हों, वह गर्भवती गर्भ को और गर्भ गर्भवती को मार डालता है। ७।

मृतगर्भ के लक्षण

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनताऽन्तर्मृते शिशौ ॥८॥

गर्भ निश्चल (गर्भाशयस्थ बालक का हृत्स्पन्दन बन्द हो गया हो) हो गया हो, प्रसव वेदना न होती हो अथवा प्रसव के लक्षण न हों, देहवर्ण नीला या पीला हो गया हो। श्वास से दुर्गन्ध आती हो और पेट फूल गया हो तो समझना चाहिए कि गर्भ में बालक मर गया है। ८।

गर्भस्थ बालक मरने के दो हेतु

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च निपीडितः ॥९॥

मानस दुःख और आगन्तुज व्याधि, गर्भ में बालक मरने के दो कारण होते हैं। इष्टजनों की मृत्यु अथवा वियोग से मानस दुःख होता है, उस अवस्था में गर्भ में बालक मर जाने का भय रहता है। चोट लगने से अथवा किसी रोग के कारण भी गर्भ-स्थित बालक की मृत्यु हो जाती है।

असाध्य गर्भिणी के लक्षण

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल एव च ।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भां यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥१०॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूढगर्भनिदानं समाप्तम् ॥ ६४ ॥

योनिसंवरण (रोगविशेष) अथवा वायु के प्रकोप से कोख में गर्भ के रुक जाने से, मक्कल नामक शूल से तथा उक्त उपद्रवों (आक्षेपक, काश, श्वास आदि) से मूढगर्भा स्त्री को मृत्यु हो जाती है ।

टिप्पणी—योनिसंवरण के लक्षण—वातल अन्न-पान, मैथुन और रात्रि-जागरण से गर्भिणी के योनिमार्ग में वात कुपित होकर योनिद्वार (गर्भाशयद्वार) को रोक देता है इससे गर्भस्थ बालक मुख और श्वास के रुक जाने से शीघ्र ही मर जाता है और बाद में सम्बन्धित होने के कारण गर्भिणी को मार देता है, यह असाध्य है । मक्कलशूल के लक्षण—कुपित वायु बहते हुए रक्त को रोककर प्रसूत स्त्री के हृदय, बस्ति और सिर में शूल उत्पन्न करती है । यह बच्चा होने से पहिले भी हो जाता है ।

सूतिकारोगनिदान

सूतिकारोग के सामान्य लक्षण

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ।
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥१॥

अंगों में पीड़ा, ज्वर, कम्प, प्यास, देह में भारीपन, शोथ, शूल, अतिसार, ये रोग सूतिका स्त्री को विशेषकर होते हैं । १ ।

सूतिकारोग के निदान

मिथ्योपचारात् संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते॥२॥
ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ।
तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥३॥

कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६५ ॥

अहित आहार-विहार करने से, दोषजनक अन्न खाने से, विषम भोजन करने से, अजीर्ण में भोजन करने से, सूतिका स्त्री को दारुणरोग हो जाते हैं। ज्वर, अतिसार, शोथ, शूल, आनाह (पेट फूलना), बल की क्षीणता, तन्द्रा (तन्द्रा के लक्षण पहले कह चुके हैं), अरुचि, कफस्राव इत्यादि कफ-वातजन्य कष्टसाध्य रोग होते हैं। मांस, बल और जठराग्नि की क्षीणता के कारण इनमें से यदि कोई भी रोग होता है तो अन्य ये सब विकार उसके उपद्रवरूप होते हैं। २-४।

टिप्पणी—पाश्चात्य चिकित्सकों ने प्रसूता के होनेवाले ये विकार माने हैं—१ प्रसवोत्तर वेदना, २ मूत्रावरोध, ३ शरीरसन्ताप, ४ श्वेतपाद, ५ फुफ्फुस की शिराओं में रक्तार्बुद रुकना, ६ सूतिकोन्माद, ७ सूतिकाभ्रम, ८ प्रसूतिका ज्वर। इन सबका समावेश इन्हीं लक्षणों में हो जाता है।

स्तनरोगनिदान

स्तनरोग की संप्राप्ति

सक्षीरौ वाऽप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः ।
प्रदूष्य मांसरुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥१॥

स्त्रियों के दूधवाले अथवा बिना दूधवाले स्तनों में, अपने कारणों से कुपित वातादि दोष प्राप्त होकर रुधिर और मांस को दूषित करके स्तनरोग उत्पन्न करते हैं। यह रोग स्तनकोप नाम से प्रसिद्ध है। १।

पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ।
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥२॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्तनरोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६६ ॥

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुज नाम से पाँच भेद हैं। इनके लक्षण बाह्य विद्रधि के समान होते हैं। व्याधि-स्वभाव से यह रोग रक्तज नहीं होता। अभिघात से अथवा क्षत से आगन्तुज स्तनरोग होता है। २।

टिप्पणी—पाश्चात्य चिकित्सकों ने स्त्रियों के स्तनों में ये विकार माने हैं—१ अतिदुग्धस्राव, २ अल्पक्षीरता, ३ चुचुकों का चपटा होना, ४ स्तनाग्रों पर बिवाई फटना, ५ स्तनदाह, ६ स्तनों में पीब पड़ना, ७ दुग्धार्बुद। इन सबका समावेश भी लक्षणों के रूप में स्तन रोगों में हो जाता है।

स्तन्यदुष्टिनिदान

विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते।
सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥१॥
तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि।
शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्च प्रवर्तते ॥२॥
सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते।
आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥३॥
तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्तते ॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥४॥

स्त्रियों के सम्पूर्ण शरीर में दूध उसी प्रकार रहता है जैसे पुरुषों के शरीर में वीर्य। और जैसे संपूर्ण शरीर में रहनेवाला वीर्य पुरुष का शरीर काटने से दिखाई नहीं देता, वैसे ही स्त्रियों का शरीर काटने से दूध भी नहीं दिखाई देता। जैसे पुरुष का वीर्य अभीष्ट स्त्री को देखने, स्मरण करने, शब्द सुनने और स्पर्श करने से निकलता है, वैसे ही स्त्रियों का दूध भी बालक को देखने, स्मरण करने, शब्द सुनने और स्पर्श करने से हर्षित होने पर निकलता है। हर्ष का कारण मन की

प्रसन्नता है। ईर्ष्या आदि से रहित होकर जब मन प्रसन्न होता है, तब स्त्री के दर्शन आदि से पुरुष का वीर्य और बालक के दर्शन आदि से स्त्री का दूध प्रकट होता है। अतएव दूध के प्रकट होने का कारण सन्तान का स्नेह है। १-४।

स्तन्यदुष्टि के निदान

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्।
क्षीरं मातुः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥५॥

अनेक प्रकार के भारी अन्न खाने से वातादि दोष कुपित होते हैं और दोषों के प्रकोप से माता का दूध दूषित हो जाता है। दूषित दूध पीने से बालकों के अनेक रोग होते हैं। ५।

स्तन्यदुष्टि के लक्षण

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्।
कट्वम्ललवणं पीतराजीमत् पित्तसंज्ञितम् ॥६॥
कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सपिच्छलम्।
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात् सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ॥७॥

वातदोष से दूषित दूध पानी में छोड़ने से ऊपर तैरता रहता है और कसैला होता है। पित्तदोष से दूषित दूध यदि पानी में छोड़ा जाय तो पानी के ऊपर पीली रेखाएँ दिखाई देती है, और दूध में कटु, अम्ल अथवा लवण रस होता है। कफ से दूषित दूध पानी में छोड़ने से डूब जाता है। चिकना और गाढ़ा होता है। दो दोषों से दूषित दूध में दो दोषों के लक्षण और तीनों दोषों से दूषित दूध में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। ६-७

शुद्ध स्तन्य के लक्षण

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति सर्वशः।
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तत् प्रशस्यते ॥८॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्तन्यदुष्टिनिदानं समाप्तम् ॥६७॥

शुद्ध दूध श्वेत वर्ण होता है। पानी में छोड़ने से पूर्ण रूप से मिल जाता है। मीठा होता है और विवर्ण नहीं होता। शुद्ध दूध के ये लक्षण हैं। ८।

बालरोगनिदान

वातादिदूषित स्तन्यपानजन्य रोगों के लक्षण

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः।
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः॥ १॥
स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान्।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्॥२॥
कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्।
निद्रान्वितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छर्दनः शिशुः॥३॥
द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम्।

वात से दूषित दूध पीने से बालक को वायु के रोग होते हैं। स्वर क्षीण और शरीर कृश हो जाता है। मल-मूत्र और अधोवायु का अवरोध होता है। पित्त से दूषित दूध पीने से बालक को पसीना अधिक आता है, पतले दस्त होते हैं और कामला अथवा पित्त के अन्य रोग हो जाते हैं। प्यास अधिक लगती है। सब अंग गर्म रहते हैं। कफ से दूषित दूध पीने से कफ के रोग होते हैं। लार बहुत बहती है, निद्रा अधिक आती है, शरीर स्थूल होता है, मुँह और आँखों के गोलक सूज जाते हैं, वमन होता है। दो दोषों से दूषित दूध पीने से दो दोषों के लक्षण और तीनों दोषों से दूषित दूध पीने से तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। १-३।

बालकों की वेदना जानने के उपाय

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्॥४॥
स यं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः।

तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥५॥
कोष्ठे विबन्धवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनैः ।
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ॥ ६ ॥
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगत्रासदिगीक्षणैः ।
स्रोतांस्यङ्गानि सन्धींश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

बालक के रोने से उसकी पीड़ा जानी जाती है। बालक बहुत रोता हो तो समझना चाहिए कि पीड़ा अधिक है और कम रोता हो तो थोड़ी पीड़ा समझे। बालक अपने जिस अंग को बार-बार छूता हो अथवा जिस अंग का स्पर्श न सह सकता हो उस अंग में पीड़ा समझना चाहिए। आँखें मूँदे रहता हो तो सिर में पीड़ा समझना चाहिए। (जीभ और होठ काटता हो तो छाती में पीड़ा समझना चाहिए) मलबद्धता हो, वमन होता हो, स्तन काटता हो, आँतों में शब्द होता हो, पेट फूला हो, पीठ बार-बार उठाता और झुकाता हो तो कोष्ठ में पीड़ा समझना चाहिए। मल-मूत्र के अवरोध से और डरे हुए के समान तथा इधर-उधर देखने से मूत्राशय और गुदा में पीड़ा समझना चाहिए। वैद्य बड़ी सावधानी से इन बातों को देखे। बालक के नाक, मुँह आदि स्रोत तथा सब अंग और सन्धियाँ बार-बार बड़े यत्न से देखकर रोग का निश्चय करना चाहिए ४-७।

दूषित स्तन्यपान से वर्त्मरोग

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ।
जायते तेन तन्नेत्रं कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥ ८ ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् ।
शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥९॥

दूध के दोष से बालकों की पलकों में कुकूणक (कोथ) रोग हो जाता है। इससे आँखों में खुजली और स्राव होता है। बालक ललाट, नेत्रों के गोलक और नाक घिसा करता है। सूर्य का प्रकाश नहीं देख सकता और आँखें नहीं खोलता। ८-९।

टिप्पणी—कुकूणक को आचार्य सुश्रुत ने स्तन्यप्रकोपजन्य मानकर भी वात, पित्त, कफ और रक्तभेद से चार प्रकार का लिखा है ।

पारिगर्भिक के लक्षण

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १० ॥
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् ।
रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥११॥

जो बालक गर्भवती माता का दूध पीता है उसे खाँसी, अग्निमान्द्य, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम और और कोष्ठवृद्धि होती है। इस रोग को पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं । इस रोग में अग्निदीपन चिकित्सा करनी चाहिए । १०-११ ।

तालुकंटक के लक्षण

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ।
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥१२॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात् पानं शकृद्द्रवम् ।
तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥१३॥

तालु के मांस में कुपित हुआ कफ तालुकंटक नाम का रोग उत्पन्न करता है । इस रोग में तालुप्रदेश नीचे लटक आता है । तालु लटकने के कारण बालक दूध नहीं पीता अथवा बड़े कष्ट से थोड़ा-थोड़ा पीता है, मुख में पीड़ा होती है, गर्दन झुकाये रहता है, जो दूध पीता है, उसे वमन कर देता है । १२-१३ ।

टिप्पणी—वाचस्पति मिश्र आदि कई आचार्य इसमें दो रोग तालुकंटक और तालुपात मानते हैं ।

महापद्म विसर्प के लक्षण

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ।

पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः ॥ १४ ॥
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ।

बालकों के मूत्राशय में (वस्तिज) और सिर में (शीर्षज) प्राणघातक विसर्प रोग होते हैं। ये विसर्प तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं और लाल कमल के समान होते हैं। शीर्षज कनपटी में उत्पन्न होकर हृदय में और हृदय से गुदा में जाता है तथा वस्तिज गुदा में उत्पन्न होकर हृदय में और हृदय से सिर में जाता है। इस रोग का नाम महापद्म है। १४।

अजगल्लिका और अहिपूतना

क्षुद्ररोगे च कथिते त्वजगल्ल्यहिपूतने ॥ १५ ॥

अजगल्लिका और अहिपूतना ये दो रोग भी बालकों के होते हैं। इनके लक्षण क्षुद्ररोगनिदान में कह चुके हैं। १५।

ज्वरादि अन्य सब रोग भी बालकों को होते हैं—

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ।
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥१६॥

ज्वर आदि जितनी व्याधियाँ पहले कह चुके हैं, वे सब बालकों के शरीर में भी होती हैं। कुशल वैद्य को उनके लक्षण देखकर समझना चाहिए। १६।

स्कन्द आदि ग्रहाविष्ट के सामान्य लक्षण

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ।
नखदन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव वा ॥१७॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत् कूजति जृम्भते ।
भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥१८॥
क्षामोऽतिनिशि जागर्ति शूनाक्षो भिन्नविट्स्वरः ।
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥१९॥
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ।

(अशौच आदि कारणों से बालकों के शरीर में स्कंद आदि ग्रह प्रवेश करते हैं । उनके परिज्ञान के लिए सामान्य लक्षण कहते हैं) बालक कभी चौंक उठता है, कभी डरता है, कभी रोता है, नखों और दाँतों से माता को अथवा अपनी देह को काटता है, ऊपर को देखता है, दाँत कटकटाता है, चिल्लाता है, जम्हाई लेता है, भौंहें चढ़ी हुई मालूम होती हैं, दाँतों से होठ काटता है, मुँह से बार-बार फेना निकलता है, बहुत दुर्बल हो जाता है, रात में नींद नहीं आती, आँखों के गोलक सूज जाते हैं, पतले दस्त होते हैं, स्वरभंग हो जाता है। देह में मांस और रुधिर की गन्ध आती है। पहले की तरह खाता नहीं। ग्रहजुष्ट बालक के ये सामान्य लक्षण हैं। १७-१९।

स्कन्द ग्रह के लक्षण

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्पन्दनकम्पनम् ॥२०॥
ऊर्ध्वं दृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः।
दन्तान् खादतिवित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ॥२१॥
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च।

एक नेत्र से स्राव होता हो, देह से पसीना आता हो, देह में एक ओर स्पंदन और कंप हो, ऊपर को देखता हो, मुख टेढ़ा हो गया हो, देह में रुधिर की गन्ध आती हो, दाँत कटकटाता हो, डरा-सा रहता हो, दूध न पीता हो और रोता कम हो तो स्कंद ग्रह का आवेश समझना चाहिए। २०-२१।

स्कन्दापस्मार के लक्षण

नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञावानतिरोदिति।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥२२॥

बालक बेहोश रहता है, मुँह से फेना निकलता है, होश आने पर बहुत रोता है, शरीर से पीब और रुधिर की गन्ध आती है, ये सब स्कंदापस्मार के लक्षण हैं। २२।

शकुनी के लक्षण

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥२३॥

बालक के अंग शिथिल हो गये हों, भय-चकित रहता हो, शरीर में जलचर पक्षी के समान गंध हो, देह भर में नये-नये फोड़े निकलें, उनके व्रण से पीड़ित रहता हो, व्रणों में दाह, पाक और स्राव हो—ये शकुनी के लक्षण हैं । २३ ।

रेवती के लक्षण

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् ।
भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २४ ॥

देह भर में फोड़े और घाव हों, सड़े कीचड़ की सी गन्ध हो, रुधिर का स्राव होता हो, पतले दस्त, ज्वर और दाह हो, ये रेवती ग्रह के लक्षण हैं । २४ ।

पूतना के लक्षण

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २५ ॥

अतीसार, ज्वर, प्यास, तिर्यक् प्रेक्षण (तिरछा देखना), रोदन, निद्रा का नाश और घबराहट हो तो बालक को पूतनाग्रह से पीड़ित समझना चाहिए । २५ ।

अन्धपूतना के लक्षण

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत् ॥ २६ ॥

वमन, खाँसी, ज्वर, प्यास, देह में चरबी की गन्ध, अति-

रोदन स्तन्यद्वेष (दूध न पीना) और पतले दस्त, ये लक्षण अन्धपूतनाग्रह से पीड़ित बालक में होते हैं। २६।

शीतपूतना के लक्षण

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २७ ॥

बालक काँपता हो, खाँसी आती हो, दुर्बल हो गाय हो, नेत्ररोग, देह में दुर्गन्ध, छर्दि और अतिसार हो, ये शीतपूतना से पीड़ित बालक के लक्षण हैं। २७।

मुखमंडिका के लक्षण

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभिसंवृतः।
मूत्रगन्धी च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ २८ ॥

बालक का मुख प्रसन्न हो, शरीर विवर्ण न हुआ हो, देह में नसें दिखाई दें और बकरे के मूत्र की सी गन्ध हो, बालक खाता अधिक हो, तो मुखमंडिका (स्त्रीग्रह) से पीड़ित समझना चाहिए। २८।

नैगमेय के लक्षण

छर्दिस्प (स्य) न्दकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिता।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान् नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ २९ ॥

वमन, कम्प अथवा मुख से लार बहना, कंठ और मुख सूखना, मूर्छा, देह में दुर्गन्ध, ऊपर को देखना और दाँतों से काटना, ये नैगमेयग्रह से पीड़ित के लक्षण हैं। २९।

ग्रहाविष्ट बालक के असाध्य लक्षण

प्रस्तब्धाक्षः स्तनद्वेषी मुह्यते चानिशं मुहुः।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥ ३० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने बालरोगनिदानं समाप्तम् ॥६८॥

जिस ग्रहाविष्ट बालक के नेत्र स्थिर हों, दूध न पीता हो, बार-बार मूर्छा आती हो, उस बालक को सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त वह ग्रह शीघ्र मार डालता है। ३०।

टिप्पणी—बालग्रहों के अतिरिक्त अन्य रोग भी आचार्य शार्ङ्गधर ने माने हैं। वे कभी लक्षण रूप और कभी स्वतन्त्ररूप में देखे जाते हैं। यहाँ उनके नाम लिखते हैं। वातज, पित्तज, कफज, क्षीरालस ये तीन माधवाचार्य ने दुष्टस्तन्यज रोग माने हैं। ४ दंतोद्भेद (दाँत निकलने के समय का विकार) जिसमें ज्वर, अतिसार, वमन, खाँसी, शिरःशूल आदि होते हैं, ५ दन्तघात (भंजनक), ६ दन्तशब्द (दाँत किटकिटाना), ७ अकालदन्त (गर्भ में ही दाँत निकलना या बाद में समय से पहले दूसरे समय के बाद निकलना), ८ अहिपूतना, ९ मुखपाक, १० मुखस्राव, ११ गुदपाक, १२ उपशीर्षक (यह महापद्म है), १३ पार्श्वारुणा (महापद्म में ही आ जाता है), १४ तालुकंटक, १५ विच्छिन्न (तालुपात), १६ पारिगर्भिक, १७ दौर्बल्य, १८ गात्रशोष, १९ शय्यामूत्र, २० कुकूणक, २१ रोदन, २२ अजगल्ली।

विषरोगनिदान

विष के दो भेद

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते।
मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात् परं सर्पादिसंभवम्॥ १॥

स्थावर और जंगम भेद से विष दो प्रकार के होते हैं—मूलाद्यात्मक विष स्थावर, और सर्पादि जीवों के विष जंगम कहलाते हैं। सुश्रुत के कल्प-स्थान में विषों का विस्तार के साथ वर्णन है। १।

जंगम विष के सामान्य लक्षण

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहमपाकं लोमहर्षणम्।
शोथं चैवातिसारं च जङ्गमं कुरुते विषम्॥ २॥

जंगम विष से निद्रा, तन्द्रा, शरीर में ग्लानि, दाह, अपाक, रोमांच, शोथ और अतिसार, ये उपद्रव होते हैं। २।

स्थावरविष के सामान्य लक्षण

स्थावरं च ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम्।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम्॥ ३॥

स्थावर विष मनुष्य के शरीर में ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलग्रह, फेन, छर्दि, अरुचि, श्वास और मूर्छा उत्पन्न करता है। ३।

विषदेनेवाले के लक्षण

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ।
जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ४ ॥
न ददात्युत्तरं पृष्ठो विवक्षुर्मोहमेति च ।
अपार्थं बहु संकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ५ ॥
हसत्यकस्मात् स्फोटयत्यंगुलीर्विलिखेन्महीम् ।
वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ६ ॥
विवर्णवक्त्रो ध्यामश्च नखैः किंचिच्छिनत्त्यपि ।
आलभेतासनं दीनः करेण च शिरोरुहान् ॥ ७ ॥
वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ।

मनुष्य की चेष्टा देखकर बुद्धिमान् वैद्य को विष देनेवाले की पहचान करनी चाहिए। वाणी से, चेष्टा से और मुख-विकृति से तथा आगे कहे हुए इन लक्षणों से निश्चय करना चाहिए। जो मनुष्य पूछने पर उत्तर न दे और यदि बोलने की इच्छा करे तो मोहित हो जाय, अनर्थक बात कहे, कोई बात स्पष्ट न कहे, मूढ़ के समान हो जाय, अकस्मात् बिना कारण हँसे, अँगुलियाँ चटकावे, नखों से या तिनके से पृथ्वी खोदे, काँपे, डरा हुआ इधर-उधर देखे, उसका मुख विवर्ण हो गया हो, जले के समान वर्ण हो गया हो, नखों से तृण आदि खोंटे, दीनभाव से बैठा रहे, सिर के बाल खुजलावे और बारबार इस स्थान से उस स्थान पर बैठे। ४-७।

स्थावर विष से होनेवाले उपद्रव

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ ८ ॥
जृम्भणं वपनं श्वासो मोहः पत्रविषेण तु ।
मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥ ९ ॥
भवेत् पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ।

त्वक्सारनिर्यासविषरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥ १० ॥
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ।
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुगात्रता ॥ ११ ॥
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ।
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥१२॥

मूलविष खाने से देह में डंडों से पीटने के समान व्यथा होती है। प्रलाप और मोह होता है। पत्रविष खानेवाले को जँभाई, कम्प, श्वास और मोह होता है। फलविष खानेवाले का अण्डकोष सूज जाता है, दाह और अन्नद्वेष होता है। पुष्पविष से वमन, आध्मान (पेट फूलना), श्वास होता है। त्वचा, सार और निर्यास (गोंद) विष से मुख से दुर्गन्ध, मुख के ऊपर खुर्दरापन, सिर में पीड़ा और कफ का स्राव होता है। क्षीरविष खाने से मुँह से फेन निकलता है, मलभेद और देह में भारीपन होता है। धातुविष से हृदय में पीड़ा, मूर्छा और तालु में दाह होता है। इनमें से कुछ विष कालान्तर में प्राणघातक होते हैं। ८-१२।

विषलिप्त शस्त्रहत के लक्षण

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः
स्रवद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति
क्षतान्मांसं शीर्यते चापि यस्य ॥ १३ ॥
तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य
दिग्धाहतं तं पुरुषं व्यवस्येत् ।
लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रै-
र्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥ १४ ॥

विषलिप्त शस्त्र के प्रहार से जो घाव होता है वह शीघ्र ही पक

जाता है, रुधिर का स्राव होता है, घाव बार-बार पकता है, घाव से बार-बार काला, आर्द्र, दुर्गन्धित और सड़ा हुआ मांस निकलता है। प्यास, मूर्छा, ज्वर और दाह होता है। ये लक्षण देखकर समझना चाहिए कि विषलिप्त शस्त्र के प्रहार से यह घाव हुआ है। १३-१४।

विषपान किये हुए के लक्षण

सपीतं गृहधूमाभं पुरीषं योऽतिसार्यते ।
फेनमुद्वमते चापि विषपीतं तमादिशेत् ॥ १५ ॥

जिसे पीलापनयुक्त गृहधूम के समान दस्त होते हों तथा मुँह से फेन निकलता हो तो समझना चाहिए कि इसने विष पी लिया है। १५।

सर्पों की जातियाँ

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ।
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥१६॥

भोगी, मंडली और राजिल सर्पों की मुख्य तीन जातियाँ हैं। इन्हीं तीन जातियों से अनेक जातियाँ होती हैं। भोगी (फणवाला) सर्प वातप्रकृति, मंडली सर्प पित्तप्रकृति और राजिल सर्प कफप्रकृति होता है। जो सर्प दो जातियों से उत्पन्न होता है, वह दोनों दोषों की प्रकृतिवाला होता है। जो भोगी जाति के सर्प और मण्डली जाति की सर्पिणी से उत्पन्न होता है वह वात-पित्तप्रकृतिवाला होता है। इसी तरह और भी जातिसंकर समझ लेना चाहिए। १६।

टिप्पणी—सर्प की बहुत जातियाँ होती हैं, किन्तु सभी इन तीन के अंतर्गत आ जाते हैं।

सर्पदंश के वातादिभेद से लक्षण

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् ।
पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुःपित्तविकारवान् ॥१७॥
राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ।
पाण्डुस्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारकृत् १८

भोगी सर्प जिस स्थान पर काटता है वह स्थान काला हो जाता है और वायु के सब विकार होते हैं। मंडली सर्प का काटा हुआ स्थान पीला होता है, कोमल शोथ होता है और पित्तसम्बन्धी सब विकार होते हैं। राजिल सर्प का काटा हुआ स्थान चिकना, कुछ पीला और स्थिर शोथवाला होता है। उस स्थान का रुधिर अत्यन्त गाढ़ा हो जाता है और कफ के सब विकार होते हैं। १७-१८।

स्थानविशेष में सर्प काटने से असाध्य होता है

अश्वत्थदेवायतनश्मशान-
वल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु।
याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया
ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः॥१९॥

पीपल-वृक्ष के नीचे, देवस्थान में, श्मशान भूमि में, बाँबी में, सन्ध्या के समय, चौराहे पर, भरणी नक्षत्र में यदि सर्प काटता है तो असाध्य होता है। मर्मस्थान और शिराओं में भी साँप के काटने से असाध्य होता है। 'याम्ये च' इस चकार के प्रयोग से आर्द्रा, अश्लेषा, मघा, मूल और कृत्तिका में भी साँप के काटने से रोगी को असाध्य समझना चाहिए। १९।

आशु प्राणघातक विष

दर्वीकराणां विषमाशुघाति
सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति।
अजीर्णपित्तातपपीडितेषु
बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु॥२०॥
क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठयुक्ते
रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि।

दर्वीकर सर्पों का विष शीघ्र ही प्राणघातक होता है। उष्ण संयोग से सब प्रकार के विष द्विगुण हो जाते हैं। अजीर्ण के रोगी

को, पित्त की वृद्धिवाले को, धूप से तपे हुए मनुष्य को, बालक, वृद्ध और भूखे मनुष्य को, क्षत के कारण रुधिर निकल जाने से क्षीण मनुष्य को, प्रमेह और कुष्ठ रोगवाले को, रूक्षशरीर और निर्बल मनुष्य को तथा गर्भवती स्त्री को सर्पविष आशु प्राणघातक होता है। २०।

असाध्य सर्पविष

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति
राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ॥ २१ ॥
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो
विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ।
जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो
नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः ॥ २२ ॥
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे
हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः ।
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्
रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥ २३ ॥
दंष्ट्रानिपाताश्चतुरश्च यस्य
तं चापि वैद्यः परिवर्जयेच्च ।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा
हीनस्वरं वाऽप्यथवा विवर्णम् ॥ २४ ॥
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च
ज्ञात्वा नरं कर्म न तत्र कुर्यात् ।

साँप के काटे हुए मनुष्य को यदि शस्त्र द्वारा काटने पर रुधिर न निकले, चाबुक लगाने से (बंधन बाँधने पर) देह पर रेखाएँ न पड़ें, शीतल जल देह पर छोड़ने से रोमांच न हो तो उसकी

चिकित्सा न करनी चाहिए, असाध्य हो जाता है। जिसका मुँह टेढ़ा हो गया हो, बाल खींचने से उखड़ आते हों, नासिका झुक गई हो, गर्दन सीधी रखने की शक्ति न हो, काटने के स्थान पर काला और लाल शोथ हो, ठोढ़ी जकड़ गई हो, उसकी भी चिकित्सा न करनी चाहिए। जिसके मुख में गाढ़े कफ की बत्ती-सी निकले, अथवा मुख और गुदा से रुधिर का स्राव हो, और जिसे साँप के चार दाँत लगे हों, उसकी भी चिकित्सा न करनी चाहिए। उन्माद, ज्वर और अतिसार आदि उपद्रव हों, बोलने की शक्ति न हो, देह काली पड़ गई हो, नासाभङ्ग आदि उपर्युक्त लक्षण हों, विष का वेग न आता हो (लहर न आती हो) उसकी भी चिकित्सा न करनी चाहिए। २१-२४।

दूषीविष के लक्षण

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा
दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ २५ ॥
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं
विषं हि दूषीविषतामुपैति ।

जो विष पुराना हो गया हो, विषनाशक ओषधियों द्वारा मूर्छित किया गया हो, दावाग्नि, वायु अथवा धूप से सूख गया हो, विष में जो दस गुण होते हैं उनमें से कुछ गुण नष्ट हो गये हों, उस विष को दूषी कहते हैं। (विष ही दूषीविष के रूप में बदल जाते हैं)। २५।

दूषीविष के कार्य

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्
कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि ॥ २६ ॥
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो
वैगन्ध्यवैरस्ययुतः पिपासी ।
मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिं च
विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ २७ ॥

दूषीविष अल्पवीर्य होने से प्राणघातक नहीं होता। उष्णता आदि गुणों के क्षीण होने से कफान्वित हो जाता है और शीघ्र न पचने के कारण शरीर में बहुत दिनों तक रहता है। दूषीविष खानेवाले मनुष्य का शरीर विवर्ण हो जाता है, पतले दस्त होते हैं, उसे गन्ध का ठीक ज्ञान नहीं होता, मुख में विरसता रहती है, प्यास, मूर्छा और भ्रम होता है, स्वर गद्गद हो जाता है, वमन होता है, वह विरुद्ध चेष्टाएँ करता है और उसे किसी अवस्था में भी चैन नहीं मिलता। २६-२७।

विशेष लक्षण

आमाशयस्थे कफवातरोगी,
पक्काशयस्थेऽनिलपित्तरोगी।
भवेत् समुद्ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो
विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ २८ ॥

आमाशय में दूषीविष प्राप्त होता है तो कफज और वातज रोग होते हैं। पक्वाशय में प्राप्त होने से वातज और पित्तज रोग होते हैं तथा सिर के बाल और देह के रोएँ गिर जाते हैं। वह मनुष्य पंख कटे हुए पक्षी के समान हो जाता है। २८।

रसादि धातुगत दूषीविष के लक्षण

स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान्
करोति धातुप्रभवान् विकारान्।
कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु
यात्याशु, पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥२९॥

रस आदि धातुओं में जब दूषीविष प्राप्त होता है तो उन धातुओं के विकार से उत्पन्न होनेवाले लक्षण होते हैं। दूषीविष शीत ऋतु में, अत्यन्त वायु चलने के समय और बादल घिरे रहने के समय शीघ्र ही प्रकोप करता है। उसके पूर्वरूप कहते हैं सुनो। २९।

दूषीविष के पूर्वरूप

निद्रागुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवाऽङ्गमर्दम्।

निद्रा, देह में भारीपन, जम्हाई, शरीर में शिथिलता, रोमांच और अंगों में टूटने की सी पीड़ा ये दूषीविष के पूर्वरूप हैं।

दूषीविष के लक्षण

ततः करोत्यन्नमदाविपाका-
वरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ ३० ॥
मांसक्षयं पादकरप्रशोथं
मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम्।
दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च
कुर्यात् प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ३१ ॥

भोजन करने पर अन्न का मद होना, भोजन का परिपाक ठीक नहीं होना, भोजन में अरुचि, देह में मंडल और कोठ, मांस की क्षीणता, हाथ-पैर में शोथ, मूर्छा, वमन, अतिसार, श्वास, प्यास, ज्वर और पेट की वृद्धि (दूष्योदर), ये लक्षण दूषीविष के हैं। ३०-३१।

दूषीविष से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्य-
दानाहमन्यद्दूषयेच्च शुक्रम्।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं
तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥३२॥

कोई दूषीविष उन्माद उत्पन्न करता है, कोई दूषीविष आनाह उत्पन्न करता है, कोई दूषीविष वीर्य को नष्ट करता है, कोई दूषीविष स्वर को गद्गद कर देता है और कोई दूषीविष कुष्ठ रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अन्यान्य दूषीविष विसर्प और विस्फोटक आदि रोग उत्पन्न करते हैं। ३२।

दूषीविष की निरुक्ति

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः।

यस्मात् संदूषयेद्धातून् तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥३३॥

वातल, शीतल, अनूप और अधिक वृष्टिवाले देशों में रहने से; शीत ऋतु में, अधिक वायु चलने के समय और बादल घिरे रहने के समय; तिल और कुलथी आदि के सेवन से तथा दिन में सोने से विष बार-बार कुपित होकर धातुओं को दूषित कर देता है, इसलिए इसका नाम दूषीविष है। ३३।

टिप्पणी—दूषीविष दो प्रकार के होते हैं—गर और कृत्रिम। निर्विष द्रव्यकृत गरसंज्ञक और सविष-अविष पदार्थों का संयोग कृत्रिम संज्ञक है।

साध्यासाध्य दूषीविष

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
दूषीविषमसाध्यं स्यात् क्षीणस्याहितसेविनः ॥३४॥

धैर्यवान् मनुष्य को दूषीविष शीघ्र साध्य होता है। एक वर्ष का पुराना होने से दूषीविष कष्टसाध्य हो जाता है। अपथ्य करनेवाले और क्षीण मनुष्य को दूषीविष असाध्य होता है। ३४।

कृत्रिम और गरविष के लक्षण

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान् मलान्।
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥३५॥
तैःस्यात् पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते।
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ ३६ ॥
जठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मा गुल्मः क्षयो ज्वरः।
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि दर्शयेत् ॥३७॥

स्त्रियाँ पति को वश में करने के लिए पसीना, रज और अंगों के मैल तथा शत्रु भी इसी प्रकार के पदार्थ अन्न में मिलाकर खिला देते हैं। वे विषरूप हो जाते हैं। उनके प्रयोग से शरीर पीला और दुर्बल हो जाता है। मंदाग्नि हो जाती है। मर्म स्थानों में पीड़ा होती है, पेट फूलता है। हाथों में शोथ होता है। उदररोग, ग्रहणी,

विकार, यक्ष्मा, गुल्म, क्षय, ज्वर तथा विस्फोटक आदि अन्य भी अनेक व्याधियों के लक्षण प्रकट होते हैं। ३५-३७।

लूता की उत्पत्ति और निरुक्ति

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः।
तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते संख्यया ताश्च षोडश ॥३८॥

मुनि के प्रस्वेद[1] कटे हुए तृण के ऊपर गिरने से इनकी उत्पत्ति हुई, इसलिए इनको लूता (मकड़ी) कहते हैं। इनकी सोलह जातियाँ हैं। उनमें आठ कष्टसाध्य और आठ असाध्य होती हैं। ३८।

लूतादंश के सामान्य लक्षण

ताभिदष्टे दंशशोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च।
ज्वरोदाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्चत्रिदोषजाः ॥३९॥
पिडका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च।
शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥४०॥
सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम्।

मकड़ियों के काटने के स्थान पर शोथ होता है, उस स्थान से पीब और रुधिर बहता है। ज्वर, दाह और अतिसार होता है। अनेक आकार की पिडकाएँ निकलती हैं। बड़े-बड़े चकत्ते पड़ते हैं, भारी शोथ होता है। शोथ कोमल, लाल, काला और फैलनेवाला होता है। सब प्रकार की मकड़ियों के काटने के ये सामान्य लक्षण हैं। ३९-४०।

त्रिमंडला आदि आठ दूषीविष लूतादंश के लक्षण

दंशमध्ये तु यत् कृष्णं श्यावं वा जालकान्वितम् ॥४१॥
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदशोथज्वरान्वितम्।

---

१ राजा विश्वामित्र ने बलपूर्वक कामधेनु छीनकर जब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को कुपित किया तो क्रोध के मारे उनके ललाट से पसीने की बूँदें निकलीं और गौ के जो कटे हुए तृण वहाँ पड़े थे उन पर गिरीं, उन्हीं से मकड़ियों की उत्पत्ति हुई।

दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत ॥ ४२ ॥

काटने के स्थान पर काला, नीला, ऊँचा शोथ हो, वह अत्यन्त पके, उसमें से क्लेद निकले, रोगी को ज्वर आवे तो दूषीविष मकड़ियों का काटा हुआ समझना चाहिए। (दूषीविष इस स्थान पर कालान्तर में कुपित होनेवाले विष को कहा है। सुश्रुत के मत से त्रिमंडला आदि आठ कष्टसाध्य लूताओं के काटने पर ये लक्षण होते हैं।) ४१-४२।

सौवर्णिका आदि आठ असाध्य लूतादंश के लक्षण

शोथाः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिडका ज्वरः ।
प्राणान्तिकाश्च जायन्ते श्वासहिक्काशिरोग्रहः ॥४३॥

शोथ सफेद, लाल, पीला या काला हो, पिडकाएं निकलें, ज्वर आवे, श्वास, हिचकी और सिर में पीड़ा हो, ये लक्षण मकड़ियों के काटने पर हों तो प्राणघातक होते हैं। (सौवर्णिका आदि मकड़ियों की आठ जातियाँ प्राणघातक होती हैं। उनके काटने में ये सामान्य लक्षण होते हैं, यह सुश्रुत का मत है)। ४३।

आखुदूषीविष के लक्षण

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्तिते ॥ ४४ ॥

दूषीविष चूहे के काटने से उस स्थान का रुधिर सड़ जाता है, दाह होता है, पीले चकत्ते पड़ जाते हैं तथा ज्वर, अरुचि और रोमांच होता है। ४४।

असाध्य मूषकविष के लक्षण

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ ४५ ॥

असाध्य विषवाले चूहों के काटने से मूर्च्छा आती है, (मूषिकाकार) शोथ होता है, क्लेद होता है, शरीर विवर्ण हो जाता है, बहिरापन, ज्वर, सिर में भारीपन और वमन होता है तथा लार बहती है। ४५।

कृकलासदंश के लक्षण

काष्र्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव वा ।
मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टे स्यात् कृकलासकैः ॥४६॥

गिरगिट के काटने से वह स्थान काला, नीला अथवा लाल पीला अनेक वर्णों का हो जाता है, मूर्छा आती है और पतले दस्त होते हैं ४६

वृश्चिकविष के लक्षण

दहत्यग्निरिवादौ च भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च ।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥४७॥
दष्टोऽसाध्यश्च हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥४८॥

बिच्छू के डंक मारने से उस स्थान पर पहले ऐसा जान पड़ता है मानों अग्नि से जला दिया गया, भेदने की सी पीड़ा होती है, विष शीघ्र ही ऊपर चढ़ जाता है और फिर उसी स्थान पर आकर ठहर जाता है। असाध्य विषवाले बिच्छू के डंक मारने से हृदय, नासिका और जिह्वा जड़ हो जाती है। ऐसी पीड़ा होती है मानों उस स्थान का मांस गिरा पड़ता है। वेदना से पीड़ित होकर वह मनुष्य प्राण त्याग देता है। ४७–४८।

कणभदष्ट के लक्षण

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि च ।
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवावसीदति ॥ ४९ ॥

कणभ नाम कीड़े के काटने से विसर्प, शोथ, शूल, ज्वर और वमन होता है। अत्यन्त पीड़ा होती है। ४९।

उच्चिटिंगदष्ट के लक्षण

हृष्टलोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥५०॥

उच्चिटिङ्ग नामक विषजन्तु के काटने से शरीर रोमाचयुक्त हो जाता है, अत्यन्त पीड़ा होती है, शिश्नेन्द्रिय स्तब्ध हो जाती है और शीतल जल छिड़के हुए के समान अंग शीतल हो जाते हैं। ५०।

सविषमंडूकदष्ट के लक्षण

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषमण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ५१ ॥

विषैले मेढक के काटने से यदि एक दाँत लगा हो तो पीला शोथ, पीड़ा, प्यास, वमन और निद्रा ये लक्षण होते हैं। ५१।

मत्स्य और जलौकादष्ट के लक्षण

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ।
कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥५२॥

गृहगोधिकादष्ट के लक्षण

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ।

शतपदीदंश के लक्षण

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदी विषम् ॥ ५३ ॥

विषैली मछली के काटने से दाह, शोथ, वेदना होती है। विषैली जोंक के काटने से खुजली, शोथ, ज्वर और मूर्छा होती है। गृहगोधिका (छिपकली) के काटने से दाह, शोथ, चुभाने की सी पीड़ा होती है और पसीना आता है। खनखजूरे के काटने से पसीना आता है, दाह और पीड़ा होती है। ५२-५३।

मशकदष्ट के लक्षण

कण्डूमान् मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।
असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ५४ ॥

मच्छरों के काटने से खुजली, अल्प शोथ और मन्दवेदना होती है। जिन मच्छरों का विष असाध्य होता है, उनके काटने से असाध्य मकड़ी आदि के काटने के समान लक्षण होते हैं। सुश्रुत ने पार्वतीय मच्छरों को असाध्य विषवाले बताया है। ५४।

मक्षिकादष्ट के लक्षण

सद्यः प्रस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।
पिडका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥५५॥

मक्खी के काटने से काली पिडका होती है, उस से शीघ्र ही स्राव होने लगता है, दाह, मूर्छा और ज्वर होता है। (सुश्रुत ने मक्खियों की छः जातियाँ बताई हैं। उनमें) स्थगिका मक्खो का विष प्राणघातक होता है। ५५।

नख और दंतविष के लक्षण

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिश्च नखदन्तविषं च यत्।
शूयते पच्यते वापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ५६ ॥

चतुष्पद (बाघ आदि) और द्विपद (वनमानुस और बानर आदि) के दाँतों और नखों में जो विष होता है, उससे शोथ हो जाता है, पकता है, स्राव होना और ज्वर भी आता है। ५६।

पागल पशुओं के विष के लक्षण

श्वशृगालतरक्ष्वृक्षव्याघ्रादीनां यदाऽनिलः।
श्लेष्मप्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञां संज्ञावहाश्रितः ॥५७॥
तदा प्रस्रस्तलांगूलहनुस्कन्धोऽतिलालवान्।
अव्यक्तबधिरान्धश्च सोऽन्योन्यमभिधावति ॥
प्रमूढोऽन्यतमस्त्वेषां खादन्विपरिधावति ॥५८॥
तेनोन्मत्तेन दष्टस्य दंष्ट्रिणा सविषेण तु ॥५९॥
सुप्तता जायते दंशे कृष्णं चातिस्रवत्यसृक्।
दिग्धविद्धस्य लिङ्गेन प्रायशश्चोपलक्षितः ॥६०॥
येन चापि भवेद्दष्टस्तस्य चेष्टां रुतं नरः।
बहुशः प्रतिकुर्वाणः क्रियाहीनो हि पश्यति ॥६१॥
दंष्ट्रिणा येन दष्टश्च तद्रूपं यस्तु पश्यति।
अप्सु चादर्शबिम्बे वा तस्य तद्रिष्टमादिशेत् ॥६२॥

कुत्ता, सियार, तेंदुआ, बाघ चीता और भेड़िया आदि हिंसक पशुओं के संज्ञावह स्रोतों में श्लेष्मदूषित वायु प्राप्त होकर उनका ज्ञान

नष्ट कर देता है तो उनकी पूँछ, हनु और कन्धे नीचे को झुक जाते हैं। लार बहुत गिरती है। वे अन्धे और बहरे हो जाते हैं, पर देखने में बहरे-अन्धे नहीं जान पड़ते। परस्पर काटने दौड़ते हैं। उनमें कोई-कोई पागल होकर मनुष्यों को काटने दौड़ता है। उस पागल और विषैले पशु के काटने से मनुष्य बहरा हो जाता है, काटने के स्थान से काला रुधिर बहुत निकलता है और भी विषैले पशु के काटने के लक्षण प्रकट होते हैं। जो पशु काटता है, उसी के समान वह मनुष्य बोलता है, बार-बार उसी के समान चेष्टा करता है, अपने व्यापार सब भूल जाता है। पागल पशु के काटने पर जो मनुष्य जल में और दर्पण में उसी पशु का रूप देखता हो तो मृत्यु का लक्षण समझना चाहिए। ५७-६२।

जलत्रास के लक्षण

त्रस्यत्यकस्माद्योऽभीक्ष्णं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाऽपि वा जलम्।
जलत्रासं तु तं विद्यादरिष्टं तदपि कीर्तितम् ॥६३॥
अदष्टो वा जलत्रासी न कथंचन सिद्ध्यति ॥
प्रसुप्तो वोत्थितो वाऽपि स्वस्थस्त्रस्तो न सिद्ध्यति॥६४॥

जल देखकर अथवा जल का स्पर्श करके जो अकस्मात् डर जाता हो उसे जलत्रास कहते हैं। जलत्रास भी अरिष्ट लक्षण है। पागल पशु के न काटने पर भी, केवल कफ के संचय से जल देखे बिना ही जलत्रास होता है वह भी असाध्य होता है। (बिना काटे जल देखकर जो डरता है, वह साध्य होता है।) जिस मनुष्य को सोते-जागते स्वस्थ अवस्था में जल का भय हुआ करता है वह भी असाध्य है। ६३-६४।

निर्विष होने के लक्षण

प्रशान्तदोषं प्रकृतिस्थधातु-
मन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम्।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं
वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विषनिदानं समाप्तम् ॥ ६९ ॥

विषातुर मनुष्य का विष शान्त होने पर वातादि दोष शान्त हो जाते हैं, धातुएँ स्वस्थ हो जाती हैं, खाने की इच्छा होती है, मल-मूत्र ठीक होता है। वर्ण, इन्द्रियाँ, चित्त और चेष्टा सब प्रसन्न हो जाते हैं। वैद्य को ये लक्षण देखकर विष शान्त हुआ समझना चाहिए। ६४।

अथ विषयानुक्रमणिका

ज्वरोऽतिमारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विसूचिका।
अलसश्च विलम्बी च क्रिमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥१॥
हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्।
कासो हिक्का सह श्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥२॥
छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छाद्या रोगाः पानात्ययादयः।
दाहोन्मादावपस्मारः कथितोऽथानिलामयः ॥३॥
वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्।
पक्तिजं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥४॥
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाऽश्मरी।
प्रमेहो मधुमेहश्च पिडकाश्च प्रमेहजाः ॥५॥
मेदस्तथोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः।
गण्डमालाऽपची ग्रन्थिरर्बुदः श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥
विद्रधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिके।
भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥ ७ ॥
शीतपित्तमुदर्दश्च कोठश्चैवाम्लपित्तकम्।
विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्यो मसूरिकाः ॥ ८ ॥
क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरःस्त्रीबालकामयाः।
विषं चेत्ययमुद्दिष्टो रुग्विनिश्चयसंग्रहः ॥ ९ ॥

सुभाषितं यत्र यदस्ति किंचि-
त्तत्सर्वमेकीकृतमत्र यत्नात् ।
विनिश्चये सर्वरुजां नराणां
श्रीमाधवेनेन्दुकरात्मजेन ॥ १० ॥
यत्कृतं सुकृतं किंचित्कृत्वैवं रुग्विनिश्चयम् ।
मुञ्चन्तु जन्तवस्तेन नित्यमातङ्कसन्ततिम् ॥ ११ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचितं माधवनिदानं समाप्तम् ।

(ग्रन्थसमाप्त होने पर विषयसूची दी गई है)

ज्वर, अतिसार, ग्रहणी अर्श, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक, विलम्बिका, क्रिमिरोग, पाण्डु, कामला, हलीमक, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, कास, हिक्का, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि, तृष्णा, मूर्छादि रोग, पानात्यय आदि रोग, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि, वातरक्त, उरुस्तम्भ, आमवात, शूलरोग, पक्तिशूल, आनाह, उदावर्त, गुल्मरोग, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिडिका, मेदोरोग, उदररोग, शोथरोग, वृद्धिरोग, गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रणशोथ, भगव्रण, नाड़ीव्रण, भगन्दर, उपदंश, शूकदोष, कुष्ठ, शीतपित्त, उदर्द, कोष्ठ, अम्लपित्त, विसर्प, विस्फोट, मसूरिका, रोमान्तिका, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग और विषप्रकरण, यह रोग विनिश्चय ग्रन्थ में आये हुए रोगों का संग्रह है।

जहाँ जो कुछ सुभाषित है (था), उस सम्पूर्ण सुभाषित को श्रीइन्दुकर के पुत्र श्रीमाधवकर ने इस मनुष्यों के सर्वरोगविनिश्चय (ग्रन्थ) में यत्नपूर्वक एकत्र किया है। इस प्रकार के रोगविनिश्चय ग्रन्थ को बनाकर मैंने जो कुछ अच्छापन किया है, उसके प्रभाव से मनुष्य होनेवाले रोगों के आतंक से छुटकारा पा जायँ । १-११ ।

परिशिष्ट

दोष-धातु-मल-वृद्धि-क्षय-निदान

वृद्धि के लक्षण

वायुवृद्धि

वाते वृद्धे भवेत्कार्श्यं पारुष्यं चोष्णकामिता ।
गाढं मलं बलं चाल्पं गात्रस्फूर्तिर्विनिद्रता ॥ १ ॥

वायु की वृद्धि होने पर—शरीर की कृशता, कठोरता, गर्मी की इच्छा, मल का गाढ़ा होना, बल की कमी, अङ्गों का फड़कना और नींद न आना, ये लक्षण होते हैं । १ ।

पित्तवृद्धि

विण्मूत्रे नेत्रगात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम् ।
शीतेच्छातापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पमूत्रता ॥ २ ॥

पित्त की वृद्धि होने पर—मल, मूत्र, नेत्र तथा शरीर का पीला होना, इन्द्रियों की क्षीणता, शीत की इच्छा, ताप, मूर्च्छा तथा मूत्र की मात्रा में कमी, ये सब लक्षण होते हैं । २ ।

श्लेष्मवृद्धि

विडादिशौक्ल्यं शीतत्वं गौरवञ्चातिनिद्रिता ।
सन्धिशैथिल्यमुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके ॥ ३ ॥

कफ की वृद्धि होने पर —मल-मूत्र, नेत्र तथा शरीर का रंग सफेद होना, शरीर में शीतलता तथा भारीपन मालूम देना, नींद की अधिकता, सन्धियों में ढीलापन, उबकाई और मुँह से पानी गिरना, ये सब लक्षण होते हैं । ३ ।

रसवृद्धि

रसे वृद्धेऽन्नविद्वेषो जायते गात्रगौरवम् ।
लालाप्रसेकश्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः ॥ ४ ॥

रस की वृद्धि होने पर—अन्न से द्वेष, शरीर में भारीपन, लार गिरना, वमन, मूर्छा, शरीर में ग्लानि, भ्रम तथा कफ निकलना, ये सब लक्षण होते हैं । ४ ।

रक्तवृद्धि

प्रवृद्धं रुधिरं कुर्याद् गात्रमारक्तवर्णकम् ।
लचनं च तथा रक्तं शिराः पूरयतेऽपि च ॥ ५ ॥
रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्पं प्लीहविद्रधीन् ।
कुष्ठं वातास्रकं गुल्मं शिरापूर्णत्वकामले ॥ ६ ॥
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ।
व्यङ्गाग्निसादसंमोहरक्तत्वङ्नेत्रमूत्रताः ॥ ७ ॥
गुदमेढ्रास्यपाकार्शःपिडिकामशकास्तथा ।
इन्द्रलुप्ताङ्गमर्दासृग्दरांस्तापं करांघ्रिषु ॥ ८ ॥

रक्त की वृद्धि होने पर—शरीर तथा नेत्र का लाल रंग होना, शिराओं का रक्त से पूर्ण होना, ये लक्षण होते हैं । और भी विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, शिराओं का रक्त से पूर्ण होना, कामला, शरीर का भारीपन; निद्रा, मद, दाह, व्यंग (झाईं), मन्दाग्नि, संमोह (मूर्च्छा), त्वचा, नेत्र, तथा मूत्र का रक्तवर्ण होना, गुदा, लिंग या योनि तथा मुख का पकना, अर्श (खूनी बवासीर); फुंसी, मस्सा, इन्द्रलुप्त रोग, अंगों का टूटना, रक्तप्रदर, हाथ-पैरों में ताप होना, ये सब लक्षण होते हैं । ५–८ ।

मांसवृद्धि

मांसवृद्धिस्तु गण्डौष्ठस्फिगुपस्थोरुबाहुषु ।
जङ्घयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम् ॥ ९ ॥

मांसवृद्धि होने पर—गण्डस्थल, ओष्ठ, कूल्हा, लिंग, जंघा, बाहु और पिंडली, इन सब अंगों में मांस की वृद्धि तथा शरीर में गुरुता, ये सब लक्षण होते हैं। ९।

मेदवृद्धि

उदरे पार्श्वयोर्वृद्धिः कासश्वासादयस्तथा।
दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति १०॥
प्रवृद्धं कुरुते मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते।
तृट्स्वेदगलगण्डौष्ठरोगमेहादिजन्म च॥ ११॥
श्वासं स्फिग्जठरग्रीवास्तनानां लम्बनं तथा।

मेदा की वृद्धि होने पर—उदर तथा पसवाड़ों की वृद्धि, कास, श्वास, शरीर में दुर्गन्ध तथा चिकनापन, ये लक्षण होते हैं। थोड़ा सा परिश्रम करने पर अधिक थकावट मालूम होना, प्यास, पसीने की अधिकता, गल, गण्डस्थल, ओष्ठ-सम्बन्धी रोग, प्रमेह आदि रोग, श्वास, कूल्हा, उदर, गर्दन तथा स्तनों का लटक पड़ना, ये सब लक्षण भी होते हैं। १०-११।

अस्थिवृद्धि

वृद्धान्यस्थीनि कुर्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु १२
आचरन्ति तथा दन्तान्विकटान्महतस्तथा।

अस्थिवृद्धि होने पर—अस्थियों के ऊपर दूसरी अस्थि का होना, दाँतों का विकट (कुरूप) और बड़ा हो जाना, ये सब लक्षण होते हैं। १२।

मज्जावृद्धि

मज्जावृद्धिः समस्ताङ्गनेत्रगौरवमाचरेत्॥ १३॥

मज्जावृद्धि होने पर—सम्पूर्ण अंगों और नेत्रों में भारीपन होता है। १३।

शुक्रवृद्धि

शुक्राश्मरी शुक्रवृद्धौ शुक्रस्यातिप्रवर्त्तनम्।

वीर्यवृद्धि होने पर—शुक्राश्मरी नामक पथरी और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति (स्राव) होती है।

मलवृद्धि

मलप्रवृद्धावाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥ १४ ॥

मल की वृद्धि होने पर—आटोप, पेट में गुड़गुड़ाहट और शूल होते हैं। १४।

मूत्रवृद्धि

मूत्रवृद्धे मुहुर्मूत्रमाध्मानं बास्तिवेदना।

मूत्र की वृद्धि होने पर—बार-बार मूत्र आना, अफरा, बस्तिस्थान में पीड़ा, ये लक्षण होते हैं।

स्वेदवृद्धि

स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जायते ॥१५॥

स्वेद की वृद्धि होने पर—शरीर में दुर्गन्ध तथा त्वचा में खुजली ये सब ल ण होते हैं। १५।

आर्तववृद्धि

आर्तवातिप्रवृत्तिः स्याद्दौर्गन्ध्यं चार्तवे भवेत्।
अङ्गमर्दश्च जायेत लिङ्गं स्यादार्त्तवेऽधिके ॥१६॥

आर्त्तव की वृद्धि होने पर—आर्त्तव का अत्यन्त स्राव, आर्त्तव में दुर्गन्ध तथा अंगों का टूटना, ये लक्षण होते हैं। १६।

स्तन्यवृद्धि

स्तनयोरतिपीनत्वं क्षीरस्रावो मुहुर्मुहुः।
तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥१७॥

स्तनों में दूध की वृद्धि होने पर—स्तनों का अत्यन्त मोटा हो जाना, दूध का बार-बार स्राव होना, स्तनों में सुई चुभाने की सी पीड़ा, ये लक्षण होते हैं। १४।

गर्भवृद्धि

उदरादिप्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ।
स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥१८॥

गर्भिणी स्त्रियों में गर्भ की वृद्धि होने पर—उदर आदि अंगों का अत्यन्त बढ़ जाना, स्वेद अधिक निकलना तथा प्रसव के समय अत्यन्त पीड़ा, ये सब लक्षण होते हैं। १८।

दोष-धातु-मलक्षय के लक्षण

वातक्षय

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मंदवाक्यं विसंज्ञता ।
कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ॥ १ ॥
यवमुद्गप्रियंगूंश्च वातक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ।

वातक्षय होने पर—शरीर में अल्पचेष्टा, वाणी की मन्दता तथा संज्ञाहीन होना, ये लक्षण होते हैं। क्षीण मनुष्य कसैले, चरपरे, कड़वे, रसयुक्त, रूखे, शीतल, हल्के पदार्थ जौ, मूँग एवम् काकुन आदि खाने की इच्छा करता है। १।

पित्तक्षय

पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाक्षयः ॥२॥
तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिस्तथा ।
मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि काञ्जिकञ्च तथा दधि ॥३॥
कट्वम्ललवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ।
समयं देशमुष्णं च पित्तक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥४॥

पित्तक्षय होने पर—अधिक कफ निकलना, मंदाग्नि, शरीर की कान्ति का क्षय, ये लक्षण होते हैं। क्षीण मनुष्य तिल, उड़द, कुलथी आदि की पिट्ठी के बने पदार्थ, दही की मलाई, शुक्ति

(कांजीविशेष), खट्टी छाछ, कांजी, दही एवम् चरपरे, खट्टे, नमकीन, रसयुक्त पदार्थ, गर्म, तीक्ष्ण, विदाही पदार्थ, क्रोध करना गर्म स्थान तथा गर्म ऋतु की इच्छा करता है। २-४।

श्लेष्मक्षय

सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षयः।
मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ॥ ५ ॥
दधि क्षीरं दिवास्वप्नं कफक्षीणोऽभिकाङ्क्षति।

कफक्षय होने पर—सन्धियों की शिथिलता, रूखापन, मूर्छा तथा चिकने, शीतल, भारी पदार्थ, दूध, दही और दिन में सोने की इच्छा करता है। ५।

रसक्षय

हृत्पीडा कण्ठशोषौ त्वक्शून्या तृट् च रसक्षये ॥६॥
रसक्षीणो नरः काङ्क्षत्यम्भोऽतिशिशिरं मुहुः।
रात्रिनिद्रां हिमं चन्द्रं भोक्तुं च मधुरं रसम् ॥७॥
इक्षुमांसरसं मन्थं मधुसर्पिर्गुडोदकम्।

रसक्षय होने पर—हृदय में पीड़ा, कफ, कण्ठ सूखना, त्वचा का शून्य होना तथा प्यास की अधिकता, ये लक्षण होते हैं। क्षीण व्यक्ति बार-बार शीतल जल (पानी), रात्रि में सोना, बर्फ आदि शीतल पदार्थ, चन्द्रमा, खाने के लिए मधुर पदार्थ, ईख, मांस, रस, मंथ, शहद, घी और गुड़ मिले जल की इच्छा करता है। ६-७।

रक्तक्षय

शिराः श्लथा हिमाऽम्लेच्छा त्वक्पारुष्ये क्षयेऽसृजः ॥
द्राक्षादाडिमशुक्तानि सस्नेहलवणानि च।
रक्तसिद्धानि मांसानि रक्तक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥६॥

रक्तक्षय होने पर—शिराओं का शिथिल तथा शीतल होना,

अम्ल पदार्थ खाने की इच्छा होना, त्वचा का कठोर होना, ये सब लक्षण होते हैं। क्षीण व्यक्ति द्राक्षा, अनार, शुक्त (सिरका), स्नेहयुक्त, नमकीन पदार्थ और रक्त के साथ पकाये हुए मांस की इच्छा करता है। ८-९।

मांसक्षय

गण्डौष्ठकन्धरास्कन्धवक्षोजठरसन्धिषु ।
उपस्थशोथपिण्डीषु शुष्कता गात्ररूक्षता ॥१०॥
तोदो धमन्यः शिथिला भवेयुर्मांससंक्षये ।
अन्नानि दधिसिद्धानि षाडवांश्च बहूनपि ॥११॥
स्थूलक्रव्यादिमांसानि मांसक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ।

मांसक्षय होने पर—गण्डस्थल, ओष्ट, गर्दन, कन्धे, छाती, पेट, सन्धियाँ, शिश्नेन्द्रिय मोटी होती और पिंडली सूख जाती है। शरीर में रूक्षता, सुई चुभाने की सी पीड़ा, धमनियों का शिथिल होना, ये लक्षण होते हैं। मांसक्षीण व्यक्ति दही के साथ पकाये हुए अन्न तथा बहुत से पाडव (मीठे खट्टे रसों से पकाये हुए गुड़ आदि) एवम् मोटे मांसभक्षी जीवों का मांस खाने की इच्छा करता है। १०-११।

मेदक्षय

प्लीहाभिवृद्धिः सन्धीनां शून्यता तनुरूक्षता ॥१२॥
प्रार्थना स्निग्धमांसस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षये ।
मेदःसिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च ॥१३॥
सक्षाराणि विशेषेण मेदःक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ।

मेदा का क्षय होने पर—प्लीहावृद्धि, सन्धियों का शून्य होना, शरीर में रूक्षता और स्निग्ध मांस खाने की इच्छा होती है। क्षीण व्यक्ति मेदा के साथ पकाये हुए मांस, ग्राम और अनूप देशों के जीवों और जलचर जीवों का मांस, विशेषतः क्षारयुक्त मांस खाने की इच्छा करता है। १२-१३।

अस्थिक्षय

अस्थिशूलं तनौ रूक्षं नखदन्तत्रुटिस्तथा ॥१४॥
अस्थिक्षये लिङ्गमेतद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम् ।
अस्थिक्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेहसंयुतम् ॥१५॥

अस्थिक्षय होने पर—अस्थिशूल, रूक्षता, नख तथा दाँतों का टूटना, ये लक्षण होते हैं। अस्थिक्षीण व्यक्ति मज्जा, घी-तेल तथा अस्थियुक्त मांस खाने की इच्छा करता है। १४-१५।

मज्जाक्षय

शुक्राऽल्पत्वं पर्वभेदस्तोदः शून्यत्वमस्थिनि ।
लिङ्गान्येतानि जायन्ते नराणां मज्जसंक्षये ॥१६॥
स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जाक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ।

मज्जाक्षय होने पर—वीर्य की कमी, पोरुओं का टूटना, चुभने की सी पीड़ा, अस्थियों में शून्यता, ये सब लक्षण होते हैं। मज्जाक्षीण व्यक्ति मधुर तथा अम्लरसयुक्त पदार्थों के खाने की इच्छा करता है। १६।

शुक्रक्षय

शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्व्यथा शेफसि मुष्कयोः ॥१७॥
चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्पशुक्रता ।
शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंससारसयोस्तथा ॥१८॥
ग्राम्यानूपौदकानाञ्च शुक्रक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ।

शुक्रक्षय होने पर—मैथुनशक्ति का नाश, लिंग तथा अण्डकोषों में पीड़ा, देर में वीर्यपात तथा थोड़ा और रक्तयुक्त वीर्यपात, ये सब लक्षण होते हैं। वीर्यक्षीण व्यक्ति मोर, मुर्गा, हंस, सारस एवं ग्राम, अनूप देश तथा जल में रहनेवाले जीवों के अण्डे खाने की इच्छा करता है। १७-१८।

ओजक्षय

विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः ।
अभ्युत्थायोन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसःक्षये १९

ओजक्षय होने पर—मनुष्य सदैव भयभीत रहता है, दुर्बल हो जाता है। चिन्ता करने से इन्द्रियाँ व्याकुल रहती हैं। मनुष्य उत्साह करके फिर हतोत्साह हो जाता है, रूक्ष तथा क्षीण शरीरवाला हो जाता है। १९।

मलक्षय

पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत् ।
स शब्दस्यानिलस्योर्ध्वगमनं कुक्षिसंवृतिः ॥२०॥
यवान्नं यवकान्नञ्च शाकानि विविधानि च ।
मसूरमाषयूषञ्च मलक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥२१॥

मल का क्षय होने पर—पसली तथा हृदय में पीड़ा होती है, पेट में शब्द करता हुआ वायु ऊपर को चढ़ता है तथा पेट सिकुड़ जाता है। क्षीण व्यक्ति जौ, जई, अनेक प्रकार के शाक, मसूर तथा उरद का जूस खाने की इच्छा करता है। २०-२१।

मूत्रक्षय

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वं बस्तौ तोदश्च जायते ।
पेयमिक्षुरसं क्षीरं सगुडं बदरोदकम् ॥ २२ ॥
मूत्रक्षीणोऽभिलषति त्रपुसर्वारुकाणि च ।

मूत्रक्षय होने पर—मूत्र की कमी और मूत्राशय में सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, एवम् मूत्रक्षीण व्यक्ति शर्बत, पीने योग्य पदार्थ, ईख का रस, दूध, गुड़ सहित बेर का जल, खीरा और ककड़ी खाने की इच्छा करता है। २२।

स्वेदक्षय

स्तब्धाश्च रोमकूपाः स्युर्लिङ्गस्वेदक्षये भवेत् ॥२३॥

अभ्यङ्गोद्वर्त्तने मद्यं निवातशयनासने ।
गुरुप्रावरणं चैव स्वेदक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥२४॥

स्वेदक्षय होने पर—पसीना न निकलना, त्वचा और नेत्रों में रूखापन, रोमकूपों का जकड़ जाना, ये लक्षण होते हैं। क्षीण व्यक्ति मालिश, उबटन करना, मद्य, वायुरहित स्थान में सोना, बैठना, मोटे, और भारी वस्त्रों को ओढ़ना, इन सबकी इच्छा करता है। २३-२४।

आर्तवक्षय

आर्त्तवस्य स्वकाले चाभावस्तस्याल्पताऽथवा ।
जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्त्तवक्षये ॥२५॥
कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ।
फलशाकानि पानानि स्त्रीकाङ्क्षत्यार्त्तवक्षये ॥२६॥

आर्त्तव क्षय होने पर—ऋतुकाल में आर्त्तव स्राव न होना, या थोड़ी मात्रा में होना एवम् योनि में पीड़ा होना, ये सब लक्षण होते हैं। आर्त्तव-क्षीण स्त्री चरपरे, खट्टे, नमकीन, गरम, विदाही, भारी, लौकी, काशीफल आदि फल, साग खाने तथा शर्बत आदि पीने की इच्छा करती है। २५-२६।

स्तन्यक्षय

अभावः स्वल्पता वा स्यात्स्तन्यस्य भवतस्तथा ।
म्लानौ पयोधरावेतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये ॥२७॥
सुराशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा ।
आसवं दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणाभिवाञ्छति ।२८।

स्तनों में दूध का क्षय होने पर—स्तनों से दूध का बिलकुल ही न निकलना या कम मात्रा में निकलना, स्तनों का मलिन, क्षीण हो जाना, ये लक्षण होते हैं। क्षीण स्त्री मदिरा, शाली चावल, मांस गौदूध, शक्कर, आसव, दही तथा हृदय को हितकारी पदार्थों की इच्छा करती है। २७-२८।

गर्भक्षय

अनुन्नतो भवेत्कुक्षिर्गर्भस्यास्पन्दनं तथा ।
इति गर्भक्षयं प्राहुर्लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २९ ॥
मृगाजाविवराहाणां गर्भान् वाञ्छति संस्कृतान् ।
वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुं गर्भपरिक्षये ॥ ३० ॥

गर्भक्षय होने पर—कोख का पिचक जाना तथा गर्भ का न फड़कना होता है। गर्भिणी हरिणी, बकरी, भेड़ तथा शूकरों के गर्भस्थित बच्चों को सविधि पकाकर खाने की इच्छा करती है एवम् वसा तथा मांस के बने हुए कबाब आदि पदार्थों को खाना चाहती है। २९-३०।

मन्थरज्वर (मोतीझरा) निदान

मन्थरज्वर के लक्षण

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतिसारो वमिस्तृषा ।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति ॥३१॥
सप्ताहाद् द्वादशाहाद्वा स्फोटाश्च सर्षपोपमाः ।
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते एकविंशेऽह्नि शाम्यति ॥३२॥
एभिस्तु लक्षणैर्विद्यान्मन्थराख्यं ज्वरं नृणाम् ।

ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमन, तृष्णा, निद्रानाश, मुख का रक्तवर्ण होना, तालु और जिह्वा का सूख जाना, सात या दस दिन में सरसों के समान गले में पिडिकाएँ हो जाना एवम् इक्कीसवें दिन शान्त हो जाना, इन लक्षणों से युक्त ज्वर को मन्थरज्वर कहते हैं। ३१-३२।

कृष्णमधुरज्वर (काले मोतीझरा) के लक्षण

ज्वरस्तन्द्रा च स्युर्यस्य दन्तौष्ठेषु च श्यामता ॥३३॥
घ्राणजिह्वास्यकंठेषु रक्तता चाक्षिकर्बुरम् ।

मुक्ताहारो गले यस्य सप्ताहाद्धार्यते न चेत् ॥३४॥
तत्त्रिसप्तदिनादर्वाक् स्फोटाः स्युः सर्षपोपमाः ।
एतच्चिह्नं भवेद्यस्य स मधूरक उच्यते ॥ ३५ ॥

ज्वर, तन्द्रा, दन्त और ओष्ठों में श्यामता; नासिका, जिह्वा, मुख एवं कण्ठ का रंग लाल हो जाना, नेत्र फटे से हो जाना, इन लक्षणों से युक्त रोगी को यदि सात दिन में गले में मोती की माला न पहनाई जाय तो इक्कीसवें दिन के भीतर ही सरसों के समान पिंडिकाएं निकल आती हैं । इसे कृष्णामधुरज्वर कहते हैं । ३३-३५ ।

सन्निपातज्वरनिदान

सन्निपातज्वर के त्रयोदश भेद

एकोल्बणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्बणाश्च तथेति षट् ।
त्र्युल्बणश्च भवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥ १ ॥
प्रवृद्धमध्यहीनस्तु वातपित्तकफैश्च षट् ।
सन्निपातज्वरस्यैवं स्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥ २ ॥

१ तत्र प्रवृद्धवातः मध्यपित्तो हीनकफः, २ मध्यवातः प्रवृद्धपित्तो हीनकफः, ३ हीनवातः प्रवृद्धपित्तो मध्यकफः, ४ प्रवृद्धवाता हीनपित्तो मध्यकफः, ५ मध्यवातो हीनपित्तः प्रवृद्धकफः, ६ हीनवातो मध्यपित्तः प्रवृद्धकफः इति षट् ।

बढ़े हुए एक दोषवाले तीन, बढ़े हुए दो दोषवाले तीन, इस प्रकार छः हुए । बढ़े हुए तीनों दोषवाला एक, और वात-पित्त तथा कफ की अधिकता, मध्यता और हीनता से छः, इस प्रकार तेरह सन्निपातज्वर होते हैं । वातादि की अधिकता, मध्यता तथा

हीनता के कारण आगे लिखे हुए ये छः प्रकार होते हैं—१ अधिक वात, मध्यपित्त, हीनकफ । २ मध्यवात, अधिकपित्त, हीनकफ । ३ हीनवात, अधिकपित्त, मध्यकफ । ४ अधिकवात, हीनपित्त, मध्यकफ । ५ मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ । ६ हीनवात, मध्यपित्त, अधिककफ । १-२ ।

त्रयोदश नाम

विस्फारकश्चाशुकारी कम्पनो बभ्रुसंज्ञकः ।
शीघ्रकारी यथा भल्लुः ससः कूटपालकः ॥ ३ ॥
संमोहकः पाकलश्च याम्यः क्रकच इत्यपि ।
ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः ॥ ४ ॥
तन्त्रान्तरे विस्फारक इत्यत्र विस्फोरक इति पाठः ।
बभ्रुस्थाने बभ्रइति पाठः, कुत्रापि वद्ध इति पाठः ।
भल्लुरित्यत्र फल्गुरिति पाठः, याम्य इत्यत्र संग्राम इति पाठः । कर्कटक इत्यत्र कर्कोटक इति पाठः ।

विस्फारक, आशुकारी, कंपन, बभ्रु, शीघ्रकारी, भल्लु, कूटपालक, सम्मोहक, पाकल, याम्य, क्रकच, कर्कटक और वैदारिक, ये १३ सन्निपात के नाम हैं । किसी-किसी ग्रंथ में विस्फारक के स्थान में विस्फोरक, बभ्रु के स्थान में बभ्र अथवा कहीं कहीं वद्ध, भल्लु के स्थान में फल्गु, याम्य के स्थान में संग्राम और कर्कटक के स्थान में कर्कोटक पाठ है । ३-४ ।

वातोल्बण (विस्फारक) के लक्षण

श्वासः कासो भ्रमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथू ।
पार्श्वस्य वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्य च ॥ ५ ॥
वातोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
एष विस्फारको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ६ ॥

श्वास, खाँसी, भ्रम, मूर्च्छा, प्रलाप, मोह, कंप, पसली की पीड़ा, जंभाई और मुख में कसैलापन, ये अधिक वातवाले सन्निपात के लक्षण हैं। इसका नाम विस्फारक है। यह अत्यन्त भयानक होता है। ५-६।

पित्तौल्बण (आशुकारी) के लक्षण

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च ।
गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥७॥
पित्तोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥८॥

अतीसार, भ्रम, मूर्च्छा, मुख का पकना, शरीर में लाल बिन्दु और अत्यन्त दाह, ये आशुकारी नामक अधिक पित्तवाले सन्निपात के लक्षण हैं। ७-८।

कफोल्बण (कंपन के लक्षण)

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि ।
प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च ॥ ९ ॥
कफोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
मुनिभिः सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥१०॥

जड़ता, गद्गद वचन, रात्रि में निद्रा का भी होना, पथरीली आँखें होना और मुख में मिठास, ये अधिक कफवाले सन्निपात के लक्षण हैं। मुनियों ने इस सन्निपात का नाम कंपन कहा है। ९-१०।

वातपित्तोल्बण (बभ्रु) के लक्षण

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
तस्य ज्वरो मदस्तृष्णा मुखशोषः प्रमीलकः ॥११॥
आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमश्रमाः ।
मुनिभिर्बभ्रुनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥ १२ ॥

मद, तृषा, मुख का सूखना, नेत्रों को बन्द किये रहना, अफरा, अरुचि, तंद्रा, खाँसी, श्वास, भ्रम और श्रम, ये अधिक वातपित्त-वाले सन्निपात के लक्षण हैं। इसका नाम बभ्रु है। ११-१२।

वातश्लेष्मोल्बण (शीघ्रकारी) के लक्षण

वातश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णापार्श्वनिग्रहः ॥१३॥
शूलमस्विद्यमानस्य तंद्राश्वासश्च जायते ।
असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥
नहि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥१४॥

शीतज्वर, मूर्च्छा, छींकें, तृषा, पसलियों में ऐंठन, पसीना न निकलने पर अधिक पीड़ा, तन्द्रा और श्वास, ये अधिक वात-कफवाले सन्निपात के लक्षण हैं। इस असाध्य सन्निपात को शीघ्र-कारी कहते हैं । इस सन्निपात से जो ग्रस्त होता है, वह एक रात्रि-दिन से अधिक नहीं जीता । १३-१४ ।

पित्तश्लेष्मोल्बण (भल्लु) के लक्षण

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
अन्तर्दाहो बहिःशीतं तस्य तृष्णा प्रवर्धते ॥१५॥
तुद्यते दक्षिणे पार्श्वे उरःशीर्षगलग्रहः ।
ष्ठीवति श्लेष्मपित्तञ्च कृच्छ्रात्कोठश्च जायते ॥१६॥
विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्धन्ते सप्रमीलकाः ।
ऋषिभिर्भल्लुनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥१७॥

भीतर दाह, बाहर शीत, अत्यन्त तृषा, दाहनी पसली, छाती, मस्तक तथा गले में पीड़ा, कष्ट से पित्त तथ कफ का थूकना, बर्र के काटने के से चकत्ते, मल पतला हो जाना, श्वास, हिचकी और

नेत्रों का मुंदना, ये अधिक पित्तकफवाले सन्निपात के लक्षण हैं। मुनि लोग इस सन्निपात को भल्लु कहते हैं। १५-१७।

वातपित्तश्लेष्मोल्बण (कूटपालक के लक्षण)

सर्वदोषोल्बणो यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
त्रयाणामपि दोषाणां तस्य रूपाणि लक्षयेत् ॥१८॥
व्याधिभ्यो दारुणश्चैव वज्रशस्त्राग्निसन्निभः ।
केवलोच्छ्वासपरमःस्तब्धांगः स्तब्धलोचनः ॥१९॥
त्रिरात्रात्परमेतस्य जंतोर्हरति जीवितम् ।
तदवस्थं तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते जनः ॥२०॥
धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरंति ये ।
अम्बया ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ॥२१॥
पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्मस्तके हतम् ।
कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदैवतैः ॥२२॥
नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे ।
सन्निपातमिमं प्राहुर्भिषजाः कूटपालकम् ॥२३॥

त्रिदोषोल्बण सन्निपात में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। यह संपूर्ण रोगों में प्रधान, भयकारी, वज्र, शस्त्र तथा अग्नि के समान होता है। बहुत श्वास लेना, शरीर का जकड़ना और नेत्रों का न बन्द होना, ये लक्षण होते हैं। यह सन्निपात तीन ही रात्रि में मनुष्य के प्राण हर लेता है। इस सन्निपात से युक्त रोगी को देखकर मूर्ख लोग कहते हैं कि इसको कुसमय में घूमनेवाले राक्षसों ने घेरा है, कोई कहते हैं कि अम्बा देवी, ब्रह्मराक्षस, यक्षिणी, पिशाच, गुह्यक अथवा अन्य भूतादिक लगे हैं, कोई कहते हैं कि कुलदेव का पूजन न करने से कुलदेवों ने आ दबाया है, कोई नक्षत्र-पीड़ा कहते हैं और कोई विष का दोष कहते हैं। इस सन्निपात को वैद्यों ने कूटपालक कहा है। १८-२३।

प्रवृद्धमध्यहीनवातादिजनितसन्निपात ज्वरों के लक्षण

प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ २४ ॥
प्रलापायाससम्मोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ।
एकपक्षाभिघातश्च तत्राध्येते विशेषतः ॥ २५ ॥
एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ।

रोगास्त एवोक्ता उक्ता एव ते रोगा व्यथावेपथु-निद्रानाशविष्टम्भादयो वातजाः, दाहतृष्णोष्णतास्वेदादयः पित्तजाः, गौरवाग्निमान्द्योत्काशनासिकामुखप्रसेकादयः कफजाः, तत्रापि प्रलापादयः पक्षाघातानां विशेषाद्भवन्ति ।

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ के कारण जो सन्निपात उत्पन्न होता है, उसमें पहले कहे हुए वातादि दोषों के रोग दोषों के बल के अनुसार होते हैं, अर्थात् वेदना, कम्प, निद्रा का नाश तथा विष्टम्भादिक वातजनित; दाह, तृषा, उष्णता तथा स्वेद आदिक पित्तजनित और भारीपन, मंदाग्नि, वमन तथा मुख-नासिका आदि का बहना कफजनित रोग है। इस सन्निपात में प्रलाप, श्रम, मोह, कम्प, मूर्छा, ग्लानि, भ्रान्ति और पक्षाघात, ये लक्षण विशेष करके होते हैं। इस भयानक सन्निपात को सम्मोहक कहते हैं। २४-२५।

मध्यवात अधिक पित्त हीनकफ (पाकल) सन्निपात के लक्षण

मध्यप्रवृद्धहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ २६ ॥
मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युर्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः ।
कासः श्वासो भ्रमस्तन्द्रासंज्ञानाशोहृदि व्यथा ॥२७॥
खेभ्यो रक्तं विसृजति संरक्तस्तब्धनेत्रता ।

तत्राप्येते विशेषाः स्युर्मृत्युरर्वाक्त्रिवासरात् ।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः ॥२८॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफजनित सन्निपात में पूर्वोक्त वातादिजनित रोग दोषों के बल के अनुसार होते हैं और मोह प्रलाप, मूर्च्छा, गले के पीछे की नस का जकड़ना, शिर में पीड़ा खाँसी, श्वास, भ्रम, तंद्रा, संज्ञा का न होना, हृदय में पीड़ा, शरीर के सम्पूर्ण छिद्रों से रुधिर का बहना, नेत्रों का रक्तवर्ण होना तथा बन्द न होना, ये सब लक्षण विशेष करके होते हैं। इस पाकल नाम सन्निपात में तीन दिन के भीतर मृत्यु होती है। २६--२८।

हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ (याम्य) सन्निपात के लक्षण

हीनप्रवृद्धमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥२९॥
हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुप्फुसाः ।
पच्यतेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणितनिर्गमः ॥ ३० ॥
शीर्णदन्तश्च मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषतः ।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं याम्यो नाम्ना प्रकीर्त्तितः ॥

हीनवात, अधिकपित्त और मध्यकफ से जो सन्निपात उत्पन्न होता है उसमें पहले कहे हुए वात, पित्त और कफ के रोग दोषों के बल के अनुसार होते हैं और हृदय में दाह, यकृत्, प्लीहा, आँतों तथा फुप्फुस का पकना, ऊपर तथा नीचे से पीब तथा रुधिर का निकलना और दाँतों में शिथिलता होना, ये लक्षण विशेष रूप से होते हैं। यह याम्य नाम सन्निपात है। इसमें मृत्यु हो जाती है। २९-३१।

अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ (क्रकच) सन्निपात के लक्षण

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३२ ॥

प्रलापायामसम्मोहः कम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ।
मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यात्तत्राप्येतद्विशेषतः ॥३३॥
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचः सम्प्रकीर्तितः ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफ के कारण जो सन्निपात उत्पन्न होता है, उसमें पहले कहे हुए वातादिदोषजनित रोग दोषों के बल के अनुसार होते हैं और प्रलाप, भ्रम, मोह, कंप, मूर्च्छा, ग्लानि, भ्रम और गले के पीछे की नस का जकड़ना, इन विशेष लक्षणों समेत मृत्यु होती है। इस सन्निपात को क्रकच कहते हैं। ३२-३३।

मध्यवात हीनपित्त अधिककफ (कर्कटक) सन्निपात के लक्षण

मध्यहीनप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयः ॥३४॥
अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र न च वक्तुं स शक्यते ।
रक्तमालक्तकेनैव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥३५॥
पित्तेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते ।
इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥३६॥
प्रमोलकः श्वासहिक्का वर्धते तु दिने दिने ।
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥३७॥
विसर्गं नाभिजानाति कूजेच्चापि कपोतवत् ।
अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रौष्ठतालुकः ॥३८॥
तन्द्रानिद्रातियोगार्तो हतवाङ्निहतद्युतिः ।
न रतिं लभते नित्यं विपरीतानि चेष्टति ॥३९॥
आयस्यते च बहुशो रक्तं ष्ठीवति चाल्पशः ।
एष कर्कटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥४०॥

मध्यवात, हीनपित्त और अधिककफ के कारण जो सन्निपात

होता है, उसमें वातपित्तजनित दोषों के बल के अनुसार होते हैं। विशेषकर अन्तर्दाह ऐसा होता है जो कहा नहीं जा सकता। मुख महावर से रँगा-सा हो जाता है, पित्त से खींचा हुआ कफ हृदय के बाहर नहीं निकलता, पसलियों में बाण लगने के समान और हृदय में खोदने के समान पीड़ा होती है, नेत्र बन्द रहते हैं, श्वास तथा हिचकी दिनोदिन बढ़ती है, जिह्वा जले हुए के समान कठोर होती है, गले में काँटे हो जाते हैं। मल-मूत्र का निकलना मालूम नहीं होता, कबूतर के समान शब्द हो जाता है। मुख, ओष्ठ तथा तालु अत्यन्त कफ से पूर्ण तथा सूख जाते हैं, तंद्रा तथा निद्रा अधिक होती है, बोलने की शक्ति तथा कान्ति का नाश होता है, किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता, विरुद्ध वस्तुओं की इच्छा होती है, श्रम बहुत होता है, और थोड़े से रुधिर का वमन होता है। इस भयंकर सन्निपात को कर्कटक कहते हैं। ३४-४०।

हीनवात मध्यपित्त अधिककफ (वैदारिक) सन्निपात के लक्षण

हीनमध्यप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥४१॥
अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजाभ्रमः।
भृशं क्लमः शिरोबस्तिमन्याहृदयवाग्रजः ॥४२॥
प्रमीलकः श्वासकासहिक्का जाड्यं विसंज्ञता।
प्रथमोत्पन्नमेनन्तु साधयंति कदाचन ॥४३॥
एतस्मिन् संनिवृत्ते तु कर्णमूले सुदारुणा।
पिडका जायते जन्तोर्यथाकृच्छ्रेण जीवति ॥४४॥
स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः।
त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥४५॥

हीनवात, मध्यपित्त और अधिककफ के कारण जो सन्निपात होता है, उसमें पहले कहे हुए वातादिजनित रोग दोषों के बल के अनुसार होते हैं। हड्डी तथा कटि में पीड़ा, अन्तर्दाह, पीड़ा, भ्रम,

अत्यन्त ग्लानि; मस्तक, मूत्राशय, गले के पीछे की नस, हृदय तथा वाणी में रोग; नेत्रों का बंद होना, श्वास, खाँसी, हिचकी, जड़ता और संज्ञा का न होना, ये लक्षण विशेष कर होते हैं। यह रोग उत्पन्न होने पर पहले चिकित्सा करने से कदाचित् साध्य होता है। इसके किसी प्रकार निवृत्त होने पर कानों के मूल में भयंकर पिडका उत्पन्न होती है, उसमें मनुष्य बहुत कष्ट से बचता है। इस सन्निपात को वदारिक कहते हैं। इस सन्निपात में तीन रात्रि के उपरान्त औषध करना व्यर्थ है। ४१-४५।

तन्त्रान्तरोक्त वातोल्वण आदि अन्य सन्निपातज्वर और उनके लक्षण

शीतांगस्त्रिमलोद्भवज्वरगणे तन्द्री प्रलापी ततो
रक्तष्ठीवयिता च तत्र गणितः सम्भुग्ननेत्रस्तथा।
साभिन्यासकजिह्वकश्चकथितःप्राक्सन्धिगोथान्तको
रुग्दाहः सहचित्तविभ्रम इह द्वौ कर्णकण्ठग्रहौ॥१॥

तन्द्री तन्द्रिकः, प्रलापी प्रलापकः, रक्तष्ठीवयिता रक्तष्ठीवी, संभुग्ननेत्रः भुग्ननेत्रः। अभिन्यासकः अभिन्यासः, कर्णकण्ठग्रहौ कर्णग्रहः कर्णिकः, कण्ठग्रहः कण्ठकुब्जकः।

शीतांग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, अभिन्यास, जिह्वक, संधिग, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, कर्णिक और कंठकुब्जक, ये तेरह सन्निपातज्वर होते हैं। १।

शीतांग के लक्षण

हिमशिशिरशरीरः सन्निपातज्वरीयः
श्वसनकसनहिक्कामोहकम्पप्रलापैः।
क्लमबहुकफवातादाहवम्यङ्गपीडा-
स्वरविकृतिभिरार्त्तःशीतगात्रः स उक्तः॥२॥

जिस सन्निपातवाले का शरीर पाले के समान शीतल हो, श्वास, खाँसी, हिचकी. मोह, कंप, प्रलाप, ग्लानि, बहुत कफ, वात, दाह, छर्दि, शरीर में पीड़ा और स्वरभंग उत्पन्न हो, उसे शीतांग सन्निपात कहते हैं। २।

तन्द्रिक के लक्षण

तन्द्रातीव ततस्तृषातिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक्
सन्तप्तातितनुर्गलेश्वयथुना सार्धं च कण्डूकफः।
सुश्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्मान्द्यं च दाहस्तथा
यत्रस्यात्सहि तन्द्रिको निगदितो दोषत्रयोत्थोज्वरः ३

जिस सन्निपात ज्वर में अधिक तन्द्रा, अधिक तृषा, अतीसार, अधिक श्वास, खाँसी, पीड़ा, शरीर में अत्यन्त ताप, गले में शोथ. खुजली और कफ, जिह्वा में अत्यन्त श्यामता, ग्लानि, बधिरता और दाह होता है उसको तन्द्रिक कहते हैं। ३।

प्रलापक के लक्षण

यत्र ज्वरे निखिलदोषनितान्तरोष-
जाते प्रलापबहुलः सहसोत्थिताश्च।
कम्पव्यथापतनदाहविसंज्ञताः स्यु-
र्नाम्ना प्रलापक इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥४॥

जिस सन्निपात में सम्पूर्ण दोष अत्यन्त कुपित हों, सहसा बहुत प्रलाप उत्पन्न हो, कंप, पीड़ा, पतन, शरीर में दाह तथा वेहोशी हो, उसको प्रलापक कहते हैं। ४।

रक्तष्ठीवी के लक्षण

निष्ठीवी रुधिरस्य रक्तसदृशं कृष्णं तनौ मण्डलं
लौहित्यं नयने तृषारुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः।
आध्मानं च विसंज्ञता च पतनं हिक्काङ्गपीडाभृशं
रक्तष्ठीविनि सन्निपातजनिते लिंगज्वरे जायते॥५॥

रुधिर का वमन, शरीर में रुधिर के समान तथा काले रंग के चकत्ते, नेत्रों में ललाई, तृषा, अरुचि, छर्दि, श्वास, अतीसार, भ्रम, अफरा, बेहोशी, गिरना, हिचकी और शरीर में अत्यन्त पीड़ा, ये रक्तष्ठीवी सन्निपात के लक्षण हैं। ५।

भुग्ननेत्र के लक्षण

भृशं नयनवक्रताश्वसनकासतन्द्राभृशं
प्रलापमदवेपथुश्रवणहानिमोहास्तथा ॥
पुरोनिखिलदोषजे भवति यत्र लिंगं ज्वरे
पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥६॥

जिस सन्निपात में नेत्रों का बहुत टेढ़ापन, श्वास, खाँसी, तन्द्रा, भ्रम, प्रलाप, मद, कंप, बधिरता और मोह, ये लक्षण होते हैं उसको प्राचीन वैद्यों ने भुग्ननेत्र नामक सन्निपात कहा है। ६।

अभिन्यास के लक्षण

दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेऽपि यत्र ज्वरे
मोहोऽतीव विचेष्टता विकलता श्वासो भृशं मूकता।
दाहश्चिक्कणमाननं च दहनो मन्दो बलस्य क्षयः
सोऽभिन्यास इति प्रकीर्त्तित इह प्राज्ञैर्भिषग्भिःपुरा ॥

जिस सन्निपात में सम्पूर्ण दोष बहुत बलवान् हों, अत्यन्त मोह, चेष्टा का विकृत होना, विकलता, अत्यन्त श्वास, मूकता, दाह, मुख में चिकनापन, मंदाग्नि और बल का नाश हो, उसको अभिन्यास कहते हैं। ७।

जिह्वक के लक्षण

त्रिदोषजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं
वृता कठिनकण्टकैस्तदनु निर्भरं मूकता।
श्रुतिक्षतिबलक्षतिश्वसनकाससन्तप्तयः
पुरातनभिषग्वरास्तमिह जिह्वकं चक्षते ॥८॥

जिस सन्निपात में जिह्वा बहुत कठिन काँटों से आच्छादित हो, अत्यन्त मूकता हो, बधिरता तथा बलक्षय हो और श्वास, खाँसी तथा संताप हो, उस त्रिदोष से उत्पन्न ज्वर को वृद्ध वैद्य जिह्वक कहते हैं । ८ ।

सन्धिग के लक्षण

व्यथातिशयिता भवेच्छ्वयथुसंयुता सन्धिषु
प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरुक् ।
समस्तमिति कीर्त्तितं भवति लक्ष्म यत्र ज्वरे
त्रिदोषजनिते बुधैः स हि निगद्यते सन्धिगः ९

अत्यन्त व्यथा, संधियों में सूजन, मुख में बहुत कफ, निद्रा का नाश और खाँसी, ये सब लक्षण जिस सन्निपात ज्वर में होते हैं, उसको संधिग कहते हैं । ९ ।

यस्मिन् लक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषैरुदीते ज्वरे-
ऽजस्रं मूर्द्धविधूननं सकसनं सर्वांगपीडाधिका ।
हिक्काश्वाससदाहमोहसहिता देहेऽतिसंतप्तता
वैकल्यं च वृथा वचांसि मुनिभिःसंकीर्त्तितःसोऽन्तकः ।

जिस सन्निपात में निरन्तर शिर काँपना, खाँसी, सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त पीड़ा, हिचकी, श्वास, दाह, मोह, शरीर में अत्यन्त ताप, व्याकुलता और अनर्थक वचन, ये लक्षण होते हैं, उसको अन्तक कहते हैं । १० ।

रुग्दाह के लक्षण

दाहोऽधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा
श्वासप्रलापविरुचिभ्रममोहपीडाः ।
मन्याहनुव्यथनकण्ठरुजः श्रमश्च
रुग्दाहसंज्ञ उदितस्त्रिभवोज्वरोऽयम् ॥११॥

जिस सन्निपात में अत्यन्त दाह, तीव्र तृषा, श्वास, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मोह तथा पीड़ा हो, गले के पीछे की नस, जबड़े तथा कण्ठ में व्यथा और श्रम हो, उसको रुग्दाह कहते हैं । ११ ।

चित्तभ्रम के लक्षण

गायति नृत्यति हसति प्रलपति विकृतं निरीक्षते मुह्येत् । दाहव्यथाभयार्त्तो नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥१२॥

जिस सन्निपात में रोगी गावे, नाचे, हँसे, प्रलाप करे, टेढ़े नेत्रों से देखे, मोह को प्राप्त हो और दाह, पीड़ा तथा भय से व्याकुल हो, उसको चितभ्रम कहते हैं । १२ ।

कर्णिक के लक्षण

दोषत्रयेण जनिता किल कर्णमूले
तीव्रज्वरो भवति तु श्वयथुर्व्यथा च ।
कण्ठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः
प्रस्वेदमोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ॥१३॥

जिस सन्निपात में कर्ण के मूल में अत्यन्त सूजन, पीड़ा, कंठरोध, बधिरता, श्वास, प्रलाप, स्वेद, मोह तथा दाह हो, उसको कर्णिक कहते हैं । १३ ।

कंठकुब्ज के लक्षण

कण्ठःशूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोऽरुचिर्दाहो देहरुजा तृषापि च हनुस्तम्भः शिरोर्त्तिस्तथा ।
मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिङ्गं त्रिदोषज्वरे यत्र स्यात्स हि कण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः

जिस सन्निपात में कंठ के भीतर सैकड़ों काँटे-से मालूम पड़ें और अत्यन्त श्वास, प्रलाप, अरुचि, दाह, शरीर में पीड़ा, तृषा, जबड़े का जकड़ना, शिर में पीड़ा, मोह तथा कम्प हो, उसको कंठ-कुब्ज कहते हैं । १४ ।

सन्धिगस्तेषु साध्यः स्यात्तन्द्रिकश्चित्तविभ्रमः ।
कर्णिको जिह्वकः कण्ठकुब्जः पञ्चापि कष्टकाः ॥१५॥
रुग्दाहस्त्वतिकष्टेन संसाध्यस्तेषु भाषितः ।
रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्रः शीतगात्रः प्रलापकः ॥
अभिन्यासोऽन्तकश्चैते षडसाध्याः प्रकीर्त्तिताः॥१६॥

ऊपर कहे हुए सन्निपातों में से सन्धिग साध्य है । तन्द्रिक, चित्त-विभ्रम, कर्णिक, जिह्वक तथा कंठकुब्ज, ये पाँच कष्टसाध्य हैं । रुग्दाह अत्यन्त कष्टसाध्य है । रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, शीतगात्र, प्रला-पक, अभिन्यास तथा अन्तक, ये छः असाध्य कहे हैं । १५-१६ ।

तन्त्रान्तरोक्त वातोलवणादि सन्निपात ज्वर के लक्षण

कुम्भीपाकः प्रोर्णुनावः प्रलापी
ह्यन्तर्दाहो दंडपातोऽन्तकश्च ।
एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो
भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ १ ॥
अजघोषभूतहासौ यंत्रापीडश्च सन्यासः ।
संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥२॥

कुम्भीपाक, प्रोर्णुनाव, प्रलापी, अन्तर्दाह, दंडपात, अन्तक, एणीदाह, हारिद्रक, अजघोष, भूतहास, यन्त्रापीड, सन्यास और संशोषी, ये तेरह सन्निपात ज्वर के भेद हैं । १-२ ।

कुम्भीपाक के लक्षण

घोणाविवराद्बहुशोणासितलोहितं गाढम् ।
विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ३

जिस सन्निपात में नासिका से लाल, काला तथा गाढ़ा वहुत रुधिर गिरे और रोगी शिर को इधर-उधर चलावे, उसको कुम्भीपाक कहते हैं । ३ ।

प्रोर्णुनाव के लक्षण

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितांतमुच्छ्वसिति ।
तं प्रोर्णुनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥४॥

जिस सन्निपात में रोगी अपने अंगों को ऊपर उठा-उठाकर नीचे डाले और बहुत श्वास ले, उस सन्निपात को प्रोर्णुनाव कहते हैं। यह विचित्र कष्टदायक होता है। ४।

प्रलापी के लक्षण

स्वेदभ्रमांगभेदाः कम्पोदवथुर्वमिर्व्यथा कण्ठे ।
गात्रं च गुर्वतीव प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगम् ॥५॥

जिस सन्निपात में स्वेद, भ्रम, शरीर में पीड़ा, कम्प, सन्ताप, छर्दि, कंठ में पीड़ा और शरीर में बहुत भारीपन हो, उसको प्रलापी कहते हैं। ५।

अन्तर्दाह के लक्षण

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिःश्वयथुररतिरपि तथा श्वासः ।
अङ्गमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहाह्वितः कथितः ॥६॥

जिस सन्निपात में भीतर दाह, बाहर शीत, सूजन, ग्लानि तथा श्वास और शरीर जला हुआ सा मालूम पड़े, उसको अन्तर्दाह कहते हैं। ६।

दंडपात के लक्षण

नक्तंदिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ।
उत्थाय दण्डपाती भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥७॥

नभसो गृह्णाति आकाशात्किञ्चिद्गृहीतुं करौ प्रसारयतीत्यर्थः ।

जिस सन्निपात में रात्रिदिन निद्रा न आवे, रोगी आकाश से कुछ लेने के लिए हाथ फैलावे और भ्रमातुर होकर उठकर इधर-उधर चले उसको दंडपात कहते हैं। ७।

अन्तक के लक्षण

सम्पूर्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ।
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यान्तकार्त्तस्य ॥८॥

जिस सन्निपात में सम्पूर्ण शरीर पर गाँठें सी पड़ जायँ, पेट में वात भर जाय, श्वास हो और निरंतर बेहोशी बनी रहे, उसको अन्तक कहते हैं । ८ ।

एणीदाह के लक्षण

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजंगपतंगहरिणगणः ।
वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्त्तस्य ॥ ९ ॥
रुक्पात्रे पीडाभाजने गात्रस्य विशेषणमेतत् ।

जिस सन्निपात में पीड़ायुक्त शरीर पर सर्प, पतंग तथा हिरन से दौड़ते मालूम पड़ें और कंप तथा दाह उत्पन्न हो, उसको एणीदाह कहते हैं । ९ ।

हारिद्रक के लक्षण

यस्याऽतिपीतमंगं नयने सुतरां मलस्ततोऽप्यधिकम् ।
दाहोऽतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥१०॥

जिस सन्निपात में शरीर तथा नेत्र पीले हों और मल उनसे भी अधिक पीला हो, भीतर दाह और बाहर शीतलता हो, उसको हारिद्रक कहते हैं । १० ।

अजघोष के लक्षण

छगलकसमानगन्धः स्कन्धरुजावान्निरुद्धगलरन्ध्रः ।
अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥११॥

जिस सन्निपात में बकरे के समान दुर्गन्ध आवे, कन्धों में पीड़ा हो, कंठ रुक जाय और नेत्र ताम्रवर्ण हो, उसको अजघोष कहते हैं । ११ ।

भूतहास के लक्षण

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान्यदिन्द्रियग्रामैः।
हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥१२॥

जिस सन्निपात में रोगी अपनी इन्द्रियों से शब्दादिक विषयों को न ग्रहण कर सके, हंसे और कठोर प्रलाप करे, उसको भूतहास कहते हैं। १२।

यन्त्रापीड के लक्षण

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीड्यते गात्रम्।
रक्तं पीतं च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः ॥१३॥

जिस सन्निपात में ज्वर के वेग से शरीर यन्त्र के द्वारा दबाया-सा जाय और रक्त तथा पीतवर्ण वमन करे, उसको यन्त्रापीड कहते हैं। १३।

संन्यास के लक्षण

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति। संन्याससन्निपाते प्रलपत्युग्राक्षिमण्डलो भवति ॥ १४ ॥

जिस सन्निपात में अतीसार, छर्दि, गले में अव्यक्त शब्द, अंगों का इधर-उधर पटकना, प्रलाप और नेत्रों में उग्रता हो, उसको संन्यास कहते हैं। १४।

संशोषी के लक्षण

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलो मलोत्सर्गात्।
संशोषिणि सितपिडकामण्डलयुक्तो ज्वरे नरो भवति॥

जिस सन्निपात में मल का त्याग करने से शरीर तथा नेत्र अत्यन्त काले हो जायं और श्वेतवर्ण मंडलयुक्त पिडका और मंडल उत्पन्न हों उसको संशोषी (काला बुखार) कहते हैं। १५।

नारायण एव भिषक् भेषजमेतेषु जाह्नवीनीरम् ।
नैरुज्यहेतुरेको नित्यं मृत्युञ्जयो ध्येयः ॥१६॥

इन सन्निपातों में नारायण ही वैद्य और गंगाजी का जल औषध है। आरोग्य के लिए निरन्तर श्रीमृत्युञ्जय का ध्यान करना चाहिए। १६।

स्नायुरोगनिदान

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ।
भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्ममांसं विशोष्य च ॥१॥
कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं तत्पिण्डैस्तक्रसक्तुजैः ।
शनैः शनैः क्षताद् याति छेदात्तत् कोपमावहेत् ॥२॥
तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात् पुनः स्थानान्तरे भवेत् ।
सस्नायुरिति विख्यातः क्रियोक्तात्र विसर्पवत् ॥३॥
बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जङ्घयोरपि ।
सङ्कोचं खञ्जताञ्चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥४॥

शाखाओं में कुपित दोष विसर्प के तुल्य शोथ उत्पन्न करके घाव को उत्पन्न करता है और उस घाव के मांस को सुखाकर, ऊष्मा सहित दोष, सूत्र के समान कर देता है। वह मट्ठे तथा सत्तू की पिंडी बाँधने से धीरे-धीरे घाव से बाहर निकलता है, टूटने से बड़ा दुःखदायी होता है, डोरे के गिर पड़ने पर शोथ शान्त हो जाता है और फिर दूसरी जगह निकलता है। इसे स्नायुरोग (नहरु) कहते हैं। इसमें विसर्प की सी चिकित्सा करनी चाहिए। जो असावधानता से भुजा अथवा जंघाओं में हुआ सूत्र टूट जाता है तो हाथ सिकुड़ जाते हैं और पैर खंज (लूले) हो जाते हैं। १-४।

सोमरोगनिदान

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोकाच्चापि श्रमादपि ।
अतीसारकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ १ ॥
आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।
तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्तिहि ।२।

बहुत मैथुन, शोक, श्रम, अतीसार के योग और गरदोष स्त्रियों के सम्पूर्ण शरीर में स्थित जल क्षुभित होकर बहता हुआ मूत्रमार्ग से निकलता है। १-२।

सोमरोग के लक्षण

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः ।
स्रवन्ति चातिमात्रन्ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥३॥
वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् ।
शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥४॥
मूर्च्छाजृम्भाप्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥५॥
सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ।
ततः सोमक्षयात् स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥६॥

सोमरोग में स्वच्छ निर्मल, शीतल, गन्ध और पीड़ारहित तथा श्वेतवर्ण जल बहता है और वह स्त्री दुर्बल होकर जल के वेग को रोक नहीं सकती, कहीं सुख नहीं पाती, उसका शिर शिथिल हो जाता है, मुख तथा तालु सूखता है। मूर्च्छा, जँभाई, प्रलाप तथा त्वचा में अत्यन्त रूक्षता होती है। उसे भक्ष्य, भोज्य और पेय आदि किसी से भी तृप्ति नहीं होती। शरीर को धारण करनेवाली सोमनाम धातुओं के क्षय से इस रोग को सोम कहते हैं। ३-६।

फिरंगरोगनिदान

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ।
तस्मात् फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥१॥
गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम् ।
फिरंगिनोऽङ्गसंसर्गात् फिरंगिण्या प्रसंगतः ॥२॥
व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ।
भवेत्तल्लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः ॥३॥
फिरंगिण्या प्रसंगत इति विशेषार्थम् ।

फिरंग देश में यह रोग विशेषता से होता है, इस लिए वैद्यों ने इसे फिरंग रोग कहा है। फिरंग रोगवाले के संसर्ग से और फिरंगिनी स्त्री के साथ प्रसंग करने से यह फिरंग नाम गंधरोग पैदा होता है। यह आगन्तुज रोग है। इसमें पीछे से दोष मिलते हैं। दोषों के अनुसार इसके लक्षण जानना चाहिए। १-३।

फिरंग रोग के लक्षण

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्याभ्यन्तरतस्तथा ।
बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥४॥
तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् ।
स्फुटितो व्रणवद्वैद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥५॥
सन्धिष्वाभ्यन्तरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ।
शोथं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥६॥

फिरंग रोग तीन प्रकार का होता है—बाह्य, आभ्यन्तर और बहिरंतर्भव। इनके लक्षण कहते हैं। इनमें बाह्य फिरंग विस्फोटक के समान थोड़ी पीड़ावाला, फटा हुआ और व्रणयुक्त होता है। यह सुखसाध्य है। आभ्यन्तर फिरंग संधियों में होता है और आमवात

के समान पीड़ा तथा शोथ से युक्त होता है । यह कष्टसाध्य होता है । ४-६ ।

फिरंग रोग के उपद्रव

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्दता ।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥७॥

कृशता, बल का नाश, नाक का बैठना, मंदाग्नि, हड्डियों का सूखना, हड्डियों का टेढ़ा होना, ये फिरंग के उपद्रव हैं । ७ ।

साध्यासाध्य विचार

बहिर्भवो भवेत् साध्यो नवीनो निरुपद्रवः ।
आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥८॥
बहिरन्तर्भवो जीर्णे क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ।
व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा ॥९॥

नवीन तथा उपद्रवरहित बाह्य फिरंग साध्य है । आभ्यन्तर फिरंग कष्टसाध्य है । जीर्ण अवस्था में, क्षीण मनुष्यों का, उपद्रवों से युक्त और बाहर-भीतर व्याप्त बहिरंतर्भव फिरंग असाध्य है । ८-९ ।

शीतलानिदान

देव्या शीतलयाऽऽक्रान्तामसूर्यःशीतलाबहिः ।
ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥
ताश्च सप्तविधःख्यातास्तासांभेदान्प्रचक्ष्महे ।
ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥
सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहत्पूर्णतां व्रजेत् ।
ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम् ॥ ३ ॥

वातश्लेष्मसमुद्भूता कोद्रवा कोद्रवाकृतिः ।
तां कश्चित्प्राह पक्वेति सा तु पाकं न गच्छति ॥४॥
जलशूकवदङ्गानि सा विध्यति विशेषतः ।
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधम् ॥५॥
ऊष्मणा तूष्मजा रूपा मकराङ्कः स्पर्शजप्रिया ।
नाम्ना पाणिसहाख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम्॥६॥
चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी ।
नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यङ्गमत्र विवर्जयेत् ॥ ७ ॥
किञ्चिदूष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः ।
एषा भवति बालानां सुखं शुष्यति च स्वयम् ॥८॥
कोष्ठवज्जायते षष्ठी लोहितोन्नतमण्डला ।
ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ९ ॥
स्फोटानां मेलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते ।
एकस्फोटे च कृष्णा च बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥१०॥

शीतला देवी से आक्रान्त होने पर देह में फुंसियाँ निकलती हैं। उनको शीतला कहते हैं। निकलने के पहले बड़े वेग से ज्वर आता है। शीतला सात प्रकार की होती हैं, उनके भेद कहते हैं। पहले ज्वर आकर बड़ी-बड़ी फुंसियाँ निकलती हैं, उनको बृहती बड़ी शीतला कहते हैं। वे सात दिन में निकलती हैं। सात दिन में भरती हैं और तीसरे सप्ताह में सूखकर स्वयं गिर जाती हैं। दूसरी शीतला वातकफजन्य होती हैं। वे कोदों के आकार की होती हैं, कोई कहते हैं कि वे पकती हैं, पर वे पकती नहीं। जलशूकवत् (जलशूक के लक्षण पहले कह चुके हैं) सब अंग हो जाते हैं, छेदने की सी विशेष पीड़ा होती है, सात अथवा दस दिन के पश्चात् चिकित्सा के बिना ही शान्त हो जाती हैं। इन्हें कोद्रवा कहते हैं।

तीसरी शीतला ऊष्मा से उत्पन्न अँधोरी के समान होती हैं। इनमें खुजली होती है, स्पर्श अच्छा मालूम होता है। इसको पाखिसहा कहते हैं। सात दिन के पश्चात् स्वयं सूख जाता है। चौथी शीतला सरसों के आकार की होती हैं। पीली सरसों के समान वर्ण होता है। इनको सर्षपिका कहते हैं। इनके निकलने पर अभ्यङ्ग वर्जित है। पाँचवीं शीतला किंचित् ऊष्मा के कारण राई के समान निकलती हैं। ये बालकों को होती हैं और सुखपूर्वक स्वयं सूख जाती हैं। इन्हें राजिका कहते हैं। छठी शीतला कोठ के समान लाल ऊँचे और विस्तीर्ण मण्डल के समान होती हैं। इन्हें मण्डला कहते हैं। पहले ज्वर आता है, पीड़ा होती है, और तीन दिन ज्वर रहता है। सातवीं शीतला में फोड़े बहुत और बड़े-बड़े होते हैं। बड़े होकर एक में मिल जाते हैं। फोड़े काले पड़ जाते हैं। इनको चर्मजा कहते हैं। ९-१०।

अशीतिवातरोगनामानि

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः।
आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः ॥१॥
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलं कटिग्रहः।
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथाऽर्दितम् ॥२॥
पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पङ्गुता।
कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता ॥३॥
पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चापबाहुकः।
अपतानो व्रणायामो वातकण्टोऽपतन्त्रकः ॥४॥
अङ्गभेदोऽङ्गशोषश्च मिन्मिनत्वं च कल्लता।
प्रत्यष्ठीला ष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता ॥५॥

अङ्गपीडाऽङ्गशूलं च संकोचस्तम्भरूक्षता ।
अङ्गभङ्गोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता ॥६॥
मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारोऽन्त्रकूजनम् ।
वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा ॥७॥
कम्पः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ।
निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः ॥८॥
अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः ।
अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता ॥९॥
कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ।
रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कण्डू रसाज्ञता ॥१०॥
शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गन्धाज्ञत्वं दृशः क्षयः ।

चत्वारिंशत्पित्तरोगनामानि

अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥११॥
धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः ।
कान्तिहानिः कण्ठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥१२॥
तिक्तास्यताऽम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्गपाकता ।
क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतगात्रता ॥१३॥
रक्तस्रावोऽङ्गदरणं लोहगन्धास्यता तथा ।
दौर्गन्ध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता ॥१४॥
पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता ।
शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥१५॥

कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्यता ।
उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ॥१६॥
तमसो दर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ।
निःसारत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥१७॥

विंशतिश्लेष्मरोगनामानि

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तन्द्राऽतिनिद्रता ।
गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ॥१७॥
श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता ।
श्वेताङ्गवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता ॥१६॥
मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता ।
आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥२०॥
अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ।

अण्डाधारगद

अण्डाधारगद का निदान

रमणातिशयाच्छैत्यादभिघाताद्विषादपि ।
अण्डाधारगदः कृच्छ्रो जायते चाहिताशनात् ॥१॥

अत्यन्त मैथुन करने से, शीत से, चोट लगने से, विष से और अपथ्य सेवन से कष्टदायक अण्डाधारगद नामक रोग हो जाता है। १।

अण्डाधारगद का लक्षण

उदरोरुव्यथा कृच्छ्रा मूत्रस्याल्पत्वरक्तते ।
ज्वरारोचकहृल्लासा अरतिर्बलसंक्षयः ॥ २ ॥

धमनी वेगिनी क्षुद्रा जिह्वा रक्तोज्ज्वला तथा ।
अण्डाधारगदस्यैताः प्रोक्ता आकृतयो बुधैः ॥३॥

उदर और उरुओं में दर्द, मूत्र का कम मात्रा में और कष्ट-सहित रुधिर मिला हुआ आना, ज्वर, अरुचि, उबकाई, बेचैनी कमजोरी, नाड़ी की गति कभी तीव्र कभी धीमी, जीभ का रंग उज्ज्वल और लाल होना, ये लक्षण अण्डाधारगद के बुद्धिमान् वैद्यों ने वर्णन किये हैं । २-३ ।

अन्त्रवृद्धि

विविधैः कर्मभिः क्रूरैरन्त्रस्यावयवो वृतिम् ।
भित्त्वौदरीं निःसरति सान्त्रवृद्धिर्निगद्यते ॥४॥

जोर से उछलना, कूदना और दौड़ना आदि विविध क्रूर (साहसी) कर्मों से उदरवृत्ति (उदरस्थित छिद्र) का भेदन करके आँतें निकल आती हैं, इसी को अन्त्रवृद्धि कहते हैं । ४ ।

रुद्धान्त्रगद

तोदः पुरीषसंरोध आध्मानाक्षेपकौ तथा ।
नाभावकर्षणं चातिसमला च बलक्षयः ॥ ५ ॥
हिक्कोदरे व्यथा घोरा वह्निनाशोऽरतिस्तथा ।
चिह्नानीमानि जायन्ते गदे रुद्धान्त्रसंज्ञके ॥ ६ ॥

रुद्धान्त्र नामक रोग में उदर में सूचीवेध के समान पीड़ा, अत्यन्त मलावरोध (दस्त बिलकुल न होना), अफरा, पेट की पेशियों का आक्षेप, नाभि-प्रदेश में खिंचाव, मलयुक्त वमन (वमन में मल की दुर्गन्ध आना), बलक्षय, हिचकी, पेट में अत्यन्त पीड़ा, भूख न लगना, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं । ५-६ ।

अंशुघात

अंशुघात का निदान

चण्डांशोरंशुना शीर्षिण तप्ते चण्डेन जायते ।
अंशुघाताभिधो व्याधिः प्राणिनां प्राणपीडनः ॥ १ ॥

सूर्य की तेज किरणों से मस्तक गरम हो जाता है, जिससे प्राणों को पीड़ा पहुँचानेवाला अंशुघातनामक रोग मनुष्यों के उत्पन्न होता है । १ ।

अंशुघात के लक्षण

तृष्णातिघोरा त्वग्रूक्षा भ्रमो नेत्रस्य रक्तता ।
मूत्रवेगश्च मूर्च्छा च हृल्लासो विषमाधरा ॥ २ ॥
श्वासकृच्छ्रं स्पर्शहानिराक्षेपश्चात्र सम्भवेत् ।
प्रायः कारावरुद्धानां भटानां जायते च सः ॥ ३ ॥

अत्यन्त तीव्र प्यास, त्वचा में खुश्की, भ्रम, आँखों में लाली, मूत्र का वेग (मूत्राशय भरा हुआ-सा मालूम देता है, किन्तु मूत्र आता नहीं), मूर्च्छा, उबकाई, नाड़ी की गति विषम होना, श्वास लेने में कष्ट, स्पर्श का अनुभव न होना, आक्षेप (झटके) आना, ये अंशुघात के लक्षण हैं । प्रायः क़ैदी वीरों को यह रोग होता हैं । २-३ ।

अंशुघात के अरिष्ट चिह्न

नीलिमा हस्तपादस्य धमन्याः क्षणलुप्तता ।
विक्षेपणं च गात्राणां मरणायांशुघातिनः ॥ ४ ॥

जिस अंशुघातपीड़ित रोगी के हाथ पैर नीले हो जाते हैं, नाड़ी क्षण में लुप्त और क्षण में फिर प्रकट हो जाती है, रोगी शरीर के अवयवों (हाथ, पैर, शिर आदि) को इधर-उधर फेंकता है, वह नहीं बचता । ४ ।

अचलवातनिदान

अचलवात रोग का स्वरूप

यथैव संस्थया जन्तुर्मोहमाप्नोति चेततः ।
परतोऽपि तथा तिष्ठेत् सापि चेतक्लेशकृद्भृशम् ॥ १॥
स गदोऽचलवाताख्योऽचलसंस्थानमेव च ।
तादवस्थ्यगदश्चापि तथैवापरिवर्त्तकः ॥ २ ॥
वातागतेः समस्थानात् पूर्वभावस्थितेस्तथा ।
तथैवापरिवृत्तेश्च मतं नामचतुष्टयम् ॥ ३ ॥

जिस अवयव को वायु स्थिर हो जाय वह अंग मूढ़ (चेतनता-रहित) सा हो जाता है। जब तक वायु वहाँ ठहरता है, रोगी अत्यन्त कष्ट पाता है। शरीर के अवयवों को अचल करने वाला यह अचलवात रोग है। वायु के समस्थान पर आने से शरीर का वह अचल अवयव फिर पूर्व स्थिति (स्वस्थ अवस्था) में आ जाता है। इसके अचलवात, अचलसंस्थान, अवस्थ्यगद और अपरिवर्तक, ये चार नाम हैं। १-३।

अचलवात का कारण

चिन्तनात् क्षीणधातुत्वाद्भयात् सत्त्वस्य संक्षयात् ।
बीजदोषवशाच्चैव जायतेऽपरिवर्त्तकः ॥ ४ ॥

चिन्ता करने से, धातु क्षीण होने से, ओज के क्षीण होने से तथा वीर्यदोष से अचलवात रोग उत्पन्न होता है। ४।

अचलवात के लक्षण

स्पर्शहानिरचेष्टत्वं पेशीनां दृढता तथा ।
मूर्च्छनं च विनाक्षेपं चिह्नान्यपरिवर्त्तके ॥ ५ ॥
असामान्यं गदस्यास्य लिङ्गं प्राक्संस्थया स्थितिः ।

पूर्वरूपं विना व्याधिः सहसैव प्रकाशते ।
ग्रीवादाढर्यं शिरःपीडा कदाचिच्चलचित्तता ॥७॥
पूर्वरूपत्वेन प्रकाशते इति शेषः ।

अचलवात की पहली स्थिति में, शरीर में स्पर्श का अनुभव न होना, क्रियानाश, मांसपेशियों की कठोरता, बिना आक्षेप के मूर्च्छा होना आदि असाधारण लक्षण होते हैं। कभी श्वास संख्या बढ़ जाना, नाड़ी की क्षुद्रता आदि लक्षण भी होते हैं। कभी-कभी पूर्वरूप में गर्दन की कठोरता, सिर में पीड़ा और चित्त की चंचलता आदि लक्षण होते हैं। कभी बिना पूर्वरूप के अकस्मात् ही अचल वातव्याधि प्रकट हो जाता है। ७।

अपमृत्यु

श्वासरोधो मतो हेतुर्मरणे मज्जनादिना ।
अन्तःश्वासे समानीते प्राणाः प्राणिति यत्नतः ॥८॥
उष्णः कायोऽस्ति वै यावदङ्गानि शिथिलानि च ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या प्रायो दण्डान्ततो मृतिः॥९॥

डूबने आदि (गला घोटने, फाँसी लगाने) से श्वास रुक जाना मृत्यु का कारण है; अतः प्राणों की रक्षा करने के लिए यत्नपूर्वक श्वास को फिर वापस लाना चाहिए। जबतक शरीर गरम और अङ्ग शिथिल रहें (कड़े न पड़ें), तब तक चिकित्सा करनी चाहिए। प्रायः एक घड़ी (दण्ड=६० पल) बाद रोगी मर जाता है। ८-९।

आगन्तुज पक्षाघात

आगंतुज पक्षाघात के भेद

पक्षाघातो द्विधा ज्ञेयो दोषागन्तुजभेदतः ।
दोषजः कथितः पूर्वमधुनाऽऽगन्तुजं शृणु ॥ १ ॥

आगन्तुजोऽपि द्विविधः पक्षाघातः प्रकीर्त्यते ।
आद्यः पारदसम्भूतो द्वितीयो नागजः स्मृतः ॥२॥

पक्षाघात दो प्रकार होता है—१ दोषज २ आगन्तुज। दोषज तो पहले कहा जा चुका है, अब आगन्तुज कहते हैं। आगन्तुज भी दो प्रकार का होता है —१ पारदजन्य, २ नागज (सीसकजन्य) ।१-२।

पारदजन्य पक्षाघात का निदान

रससंस्पर्शसातत्यात् तद्धूमस्य च सेवनात् ।
पक्षाघातो भवेद् यस्तु स ज्ञेयः पारदोद्भवः ॥३॥

पारद के स्पर्श से या उसके धुएँ के सेवन से एक अंग बेकार हो जाय तो उसे पारदजन्य पक्षाघात कहते हैं । ३ ।

पारदजन्य पक्षाघात के लक्षण

आदौ बाह्वोः बलध्वंसस्ततः कम्पः प्रजायते ।
वेपते सक्थिनी चापि कायः सर्वस्ततः परम् ॥४॥
गदी चलति नृत्यन्वै दृढं द्रव्यं न धारयेत् ।
स्पष्टं प्रभाषितुं चापि चर्वितुं च न च क्षमः ॥५॥
ततस्तस्यापि निद्रा च प्रलापो बलसंक्षयः ।
हृल्लासो वह्निनाशश्च दन्तध्वंसः क्वचित्स्रुतिः ॥६॥
शान्तिर्भवति कम्पस्य विधृतेऽङ्गे रसामये ।

पारदजन्य पक्षाघात में आरम्भ में बाहु का बल नष्ट होकर कम्प शुरू होता है। टाँगें काँपने लगती हैं। बाद में सर्वाङ्ग भी काँपने लगता है। रोगी नाचता हुआ-सा चलता है, किसी वस्तु को मजबूती से पकड़ नहीं सकता। न तो स्पष्ट बोल ही सकता है, और न स्पष्ट चल ही सकता है। नींद अधिक आती है। प्रलाप (अंटसंट बकना) करता है, बलहीन हो जाता है। उबकाइयाँ, अग्निनाश, दाँत गिरना, किसी-किसी के लार गिरना ये लक्षण होते हैं। किसी-किसी के अङ्ग का कम्प शान्त भी हो जाता है। ४-६ ।

नागज पक्षाघात का निदान

चित्रकृत्प्रमुखा ये हि नागैः कर्म प्रकुर्वते ।
ये वा व्यवहरन्त्यस्य पात्रं तेषां ततो गदः ॥ ७ ॥

जो व्यक्ति चित्रकारी प्रेस-कार्य (छपाई) या अन्य सीसा के सम्पर्क में आनेवाला काम करता है उनको नागजन्य पक्षाघात हो जाता है । ७ ।

नागजन्य पक्षाघात के लक्षण

अंगुलीस्तु समारभ्य मणिबन्धं ततोऽखिलम् ।
व्याधिर्व्याप्नोति दौर्बल्यं तत्रैकं लक्षणं महत् ॥८॥
अंसे प्रकोष्ठे तोदश्च बाह्वोश्च परिशीर्णता ।
नीलिमा दन्तवेष्टे च शूलं चिह्नानि चास्य वै ॥९॥

नागजन्य पक्षाघात में कम्प, अंगुलियों से प्रारम्भ होकर कलाई तक या अधिक भी हाथ में फैलता है । दुर्बलता इसमें विशेष रूप से होती है । कंधे और प्रकोष्ठ (कंधे से कोहनी तक का भाग) में सुई चुभने के समान पीड़ा, हाथ में शिथलता, मसूढ़ों के रंग का नीला हो जाना और उनमें पीड़ा होना, ये लक्षण होते हैं । ८-९ ।

क्लैब्यनिदान

क्लैब्य के लक्षण, संख्या और कारण

क्लीबः स्यात् सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते ।
तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ १ ॥

क्लीब (नपुंसक), सम्भोग करने में अशक्त होता है । इस भाव को क्लैब्य (नपुंसकता) कहते हैं । यह नपुंसकता सात प्रकार की होती है । इसका निदान कहते हैं । १ ।

तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ।
ध्वजः पतत्यधो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ २ ॥

द्वेष्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ।

१—कामेच्छु व्यक्ति की शिश्नेन्द्रिय हृदय के विपरीत भाव से मन में आघात पहुँचाकर शिथिल हो जाती है। स्त्री के द्वारा द्वेष करने पर ही यह नपुंसकता होती है। इसे मानस क्लैब्य कहते हैं। २।

कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ।
पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात् प्रजायते ॥३॥

२—दूसरा पैत्तिक क्लैब्य—चरपरे, खट्टे, गरम, नमकीन रसों का अधिक सेवन करने से पित्त कुपित होकर शुक्र-क्षय करता है, इसे पैत्तिक क्लैब्य कहते हैं। ३।

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ।
ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ४ ॥

३—अत्यन्त मैथुन करनेवाला व्यक्ति यदि वाजीकरण द्रव्यों का सेवन नहीं करता, तो वीर्यक्षय होकर शुक्र-क्षयज क्लैब्य हो जाता है। ४।

महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥ ५ ॥

४—शिश्नेन्द्रिय के महान् विकारों (उपदंश, औपसर्गिक मेह आदि) से चौथे प्रकार की नपुंसकता होती है। ५।

वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुन्नतिर्भवेत् ।
बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधात् ब्रह्मचर्यतः ॥ ६ ॥

५—वीर्यवाहिनी शिरा का छेदन होने से पाँचवाँ क्लैब्य होता है। ६।

षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तजम् ।

६—जो पुष्ट युवा व्यक्ति कामपीड़ित होकर चंचल होने पर भी मैथुन नहीं करता, उसके शुक्रस्तंभजन्य क्लैब्य होता है।

जन्मप्रभृति यत् क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ।
असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ॥७॥

७—जो जन्म से ही क्लीव होता है उसे सहज क्लैब्य कहते हैं। सहज और वीर्यवाहिनी शिरा के कटने से उत्पन्न क्लैब्य असाध्य होता है। ७।

सुश्रुतोक्त अन्य क्लैब्य

आसेक्य के लक्षण

पित्रोरत्यल्पबीजत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥१॥

अल्पवीर्य पिता से उत्पन्न पुत्र आसेक्य क्लीव होता है। इस व्यक्ति को अन्य पुरुष का वीर्य भक्षण करने के बाद स्त्री-सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती है।

ऐसे पुरुष दूसरे व्यक्तियों का उपस्थ चूसते रहते हैं। इसे मुख-योनि भी कहते हैं। १।

सौगन्धिक के लक्षण

यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञकः ।
स योनिशेफसौगन्ध्यमाघ्राय लभते बलम् ॥ २ ॥

जो व्यक्ति दुर्गन्धित योनि से उत्पन्न होता है, वह सौगन्धिक कहलाता है। इसे योनि और शिश्नेन्द्रिय सूंघने के बाद कामोत्तेजना होती है। इसे नासायोनि भी कहते हैं। २।

कुम्भीक के लक्षण

स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ।
कुम्भीकः स च विज्ञेयः

जो व्यक्ति अपनी गुदा में अन्य व्यक्ति से मैथुन कराकर फिर स्त्रियों से मैथुन करने में समर्थ होता है, वह कुम्भीक (या गुद-योनि) कहलाता है।

ईर्ष्यक के लक्षण

ईर्ष्यकं शृणु चापरम ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ।
ईर्ष्यकः स च विज्ञेयः

जो मनुष्य दूसरे को मैथुन करता हुआ देखकर उत्तेजित होता है (मैथुन करता है), उसे ईर्ष्यक (या दृग्योनि) क्लीव कहते हैं। ३।

षण्ढ के लक्षण

षण्ढकं शृणु पञ्चमम् ॥ ४ ॥
यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते ।
तस्य स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञितः ॥५॥

पाँचवाँ क्लीब षण्ढ होता है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—जो व्यक्ति मूर्खता से विपरीत रति (ऊपर स्त्री, नीचे पुरुष) करता है, उस समय गर्भाधान होने पर, उस गर्भ से जो पुत्र होता है, वह स्त्री की-सी चेष्टा करता है। उसे षण्ढ (जनाना) कहते हैं। इसी प्रकार इस गर्भ से कन्या हो, तो वह पुरुष की-सी चेष्टा करनेवाली होती है। ४-५।

ओजोमेह

ओजोमेह रोग का निदान

अभिघाताग्निमान्द्यामवाताजीर्णविसूचिकाः ।
विषमज्वरशोथाद्यैर्यक्ष्मकासादिभिस्तथा ॥ १ ॥
वृक्कयोः शोणितस्रोतो विकृते रसदोषतः ।
लसिकीशुक्रपूयास्रैर्युक्ते मूत्रे तथा नृणाम् ॥२॥
स्त्रीणां गर्भागमे चैव कटुकक्षारवर्जितैः ।
मधुरौजस्करद्रव्य-भक्षणैरतिमात्रतः ॥ ३ ॥

गुरुपर्युषितानां च भोजनादतिभोजनात् ।
नवधान्यादिगोधूमहंसडिम्बातिसेवनात् ॥ ४ ॥
दूषिते शीतले तोये स्नानपानावगाहनात् ।
एभिर्निदानैरन्यैश्च दूषितादोमजा भवेत् ॥ ५ ॥
ओजोमेहः स विज्ञेय आयुर्बलनिकृन्तनः ।
शारीरिकश्रमवशात् तदान्येनैव हेतुना ॥ ६ ॥
द्रुतं शोणितसञ्चारात् प्रकृतेश्च विपर्ययात् ।
ओजोविकृतिमापन्नं हंसोऽण्डश्वेतभागवत् ॥७॥
पिष्टतण्डुलवद्वाथ सह मूत्रेण संस्रवेत् ।
मेदःक्षयो भवेत्तत्र ज्वरारोचकयोस्तथा ॥८॥
शोथेऽग्निमान्द्ये सञ्जाते गदोऽसाध्यो न संशयः ।
अन्यथा कृच्छ्रसाध्योऽसौ यत्नात् जीवति मानवः ।९।

चोट से मन्दाग्नि, आमवात, अजीर्ण, विसूचिका, विषमज्वर, शोथ, यक्ष्मा, खाँसी आदि रोगों के कारण दोनों गुर्दों के रक्तस्रोतों की विकृति और रक्तदोष से मनुष्यों के लसिका, वीर्य, कफ और रक्त-युक्त मूत्र उतरता है। स्त्रियों के गर्भावस्था में कड़वे और क्षार-रहित मधुर और ओजकारक द्रव्यों के अत्यन्त सेवन से, भारी, बासी भोजन और अतिभोजन से यह रोग होता है। नवीन अन्न, गेहूँ, बतख के अण्डों के अधिक सेवन से, दूषित और शीतल जल के स्नान-पान आदि कारणों से ओज दूषित हो जाने पर आयु और बल को नष्ट करनेवाला यह ओजोमेह रोग होता है। शारीरिक श्रम के कारण या अन्य कारणों से, रक्त-संचार की शीघ्रता तथा प्रकृति की विपरीतता से ओज विकृत होकर हंस (बतख) के अंडे के सफेद भाग के समान अथवा पिसे हुए चावलों के समान पदार्थ मूत्र के साथ आने लगता है। जब मंद धातु का क्षय तथा ज्वर, अरोचक, शोथ और अग्निमान्द्य आदि

उपद्रव होते हैं, तब यह रोग असाध्य हो जाता है। अन्यथा कृच्छ्रसाध्य है। मनुष्य यत्न करने पर भी इस रोग में कठिनता से बच सकता है। १-६।

लसिकामेह

लसिकामेह के निदान और लक्षण

मधुराणां फलानां च मूलानां च गुडोद्भवम्।
द्रव्याणां चातियोगाच्च तथैवाति परिश्रमात् ॥१॥
मानसश्रमशीलानां वर्जयित्वा तु कायिकम्।
गुरुपर्युषितक्लिन्नाभिष्यन्दिद्रव्यभोजनात् ॥ २ ॥
आनूपमत्स्यमांसादिभोजनादतिभोजनात्।
एभिर्निदानैः संदुष्टो यकृत्पक्वाशयस्तथा ॥ ३ ॥
वृक्कयोर्मूत्रकोषे च जनयित्वा क्षतं ततः।
मूत्रमार्गेण तरलं पूयरक्तादिसन्निभम् ॥ ४ ॥
समेदस्के सलसिकं नराणां स्रावयेन्मुहुः।
सालक्तकपयस्तुल्यं मूत्रं सम्यक् प्रवर्तयेत् ॥ ५ ॥
कदाचिज्जायते मूत्रं पूयरक्तादिभिर्घनम्।
स्थूलं सूत्रनिभं तस्मादधिका जायते व्यथा ॥ ६ ॥
दोषदूष्यादिभेदेन मूत्रस्य ह्रासवर्द्धने।
तथा वर्णे विभेदश्च जायते मेहिनः सदा ॥ ७ ॥

मीठे फल, फूल और गुड़ से बने पदार्थों के अति सेवन से, अधिक परिश्रम से, मानसिक श्रम करनेवाले और शारीरिक श्रम न करनेवाले व्यक्तियों के यह लसिकामेह होता है। भारी, बासी, क्लिन्न (गीला सड़ा सा), अभिष्यन्दी द्रव्यों के सेवन से, अनूप देश के मांस और

मंछली आदि के अति भोजन से यकृत् और पक्वाशय दूषित हो जाते हैं, जिससे वृक्क और मूत्राशय में क्षत हो जाते हैं और मूत्र-मार्ग से पीव, रक्त, मेद और लसिका आदि मिला हुआ पेशाब बार-बार आता है। मूत्र का रंग लाख के जल-जैसा भी होता है। कभी पेशाब में पीव और रक्त गाढ़े भी आते हैं, कभी सूत-जैसे मोटे तन्तु भी आते हैं, कभी इस प्रकार के प्रमेह-रोगी के दूष्य आदि के भेद से पेशाब की मात्रा घटती-बढ़ती भी रहती है। इसी प्रकार रंग में भी भेद होता है। १-७।

वातिक लसिकामेह के लक्षण

वातजो लसिकामेहो चाम्लगन्धि सशोणितम् ।
आमिक्षाजलवन्मूत्रं मुहुर्मूत्रयते नरम् ॥ ८ ॥
विश्लिष्टाः सन्धयस्तस्मिन् मलं सम्यङ् न निःसरेत् ।

वातजन्य लसिकामेह में, मूत्र में खट्टे द्रव्यों की सी और रुधिर की-सी गन्ध आती है, और फटे दूध के पानी की तरह बार-बार पेशाब आता है। सन्धियाँ जकड़ी-सी और ल्हिसी-सी रहती हैं एवं दस्त भी साफ नहीं होता। ८।

पैत्तिक लसिकामेह के लक्षण

घनं सपूयं मूत्रं च पैत्तिकेऽधिकपूतिमत् ।
जायते चास्य वैरस्यं सन्तापः करपादयोः ॥ ९ ॥

पैत्तिक लसिका-मेह में गाढ़ा, पूययुक्त और दुर्गन्धित मूत्र आता है, मुख का स्वाद बिगड़ जाता है और हाथ-पैरों में दाह होता है। ९।

श्लैष्मिक लसिकामेह के लक्षण

श्लैष्मिके लसिकामेहे मूत्रं शुक्लं तथाऽऽविलम् ।
तथा पर्युषिते तस्मिन्नुपर्यच्छमधो घनम् ॥१०॥
क्षुन्नाशो वंक्षणाकटिव्यथा सम्यक् प्रजायते ।

कफजन्य लसिकामेह में मूत्र सफेद तथा थोड़ा वीर्य मिला रहता है। बासी मूत्र में नीचे कुछ जम जाता है, और ऊपर स्वच्छ मूत्र

रहता है, भूख कम हो जाती है तथा कमर, अण्डकोष आदि स्थानों में दर्द रहता है। १०।

द्वन्द्वज और त्रिदोषज के लक्षण

द्वित्रिदोषभवेद् मेहे मिश्रं लक्षणमीक्ष्यते ॥११॥

दो या तीनों दोषों से उत्पन्न लसिकामेह में प्रमेह के मिश्रित लक्षण होते हैं। ११।

साध्यासाध्य के लक्षण

सुसाध्योऽसौ भवेद् यूनामल्पकालभवो गदः ।
नो चेदसाध्यो दुःसाध्यो भवेदेव न संशयः ॥१२॥
कदाचित् प्रबलीभूय प्रशाम्येत् पथ्यसेवनात् ।
ततः पुनर्वर्द्धमानः कालात् कालवशं नयेत् ॥१३॥

थोड़े दिन का उत्पन्न, जवान रोगी का लसिकामेह साध्य है। अन्यथा दुःसाध्य (कठिनता से अच्छा होता है। वस्तुतः असाध्य ही है। कभी-कभी प्रबल होकर पथ्य-सेवन से शान्त होता है और बाद में फिर बढ़कर प्राण ले लेता है। १२-१३।

शुक्रमेह

शुक्रमेह का निदान

योऽनात्मवाःनविधिना कुरुते रेतसो व्ययम् ।
शुक्रमेहाभिधस्तस्य गदो भवति दारुणः ॥ १ ॥
अविधिना अतिसङ्गमेन करकर्मणा वा ।

जो मूर्ख व्यक्ति (अपनी इन्द्रियों को वश में न रखके) हानिकारक अनुचित मार्ग (अतिमैथुन, हस्त-मैथुन आदि) से वीर्य को नष्ट करता है, उसके अत्यन्त कष्टकारक वीर्य-मेह रोग हो जाता है। १।

शुक्रमेह के लक्षण

मलमूत्रातिवेगेन तथा कामस्य वेगतः ।
स्त्रीस्पर्शाद्दृष्टिस्मरणादपि रेतः पतेत्तथा ॥ २ ॥
निद्रायां रमणीसङ्गानुभावात् संपतेदपि ।
रोगेऽतिप्रबले शिश्ने शिथिलेऽपि च तत्पतेत् ॥ ३ ॥
तन्द्रावेशेऽथ शयने तत्पतेदत एव च ।
न शक्नुयाद्ददी नारीं मन्तोपयितुमरावपि ॥ ४ ॥
ततो यायाद्भाग्यहीनो ध्वजभङ्गाख्यमामयम् ।
वृथा जीवति स क्लीबो मरणस्तस्य जीवनम् ॥ ५ ॥
अग्निमान्द्यं कोष्ठरोधः शिरसः परिघूर्णनम् ।
अजीर्णमतिसारश्च दृष्टेर्दुर्बलता तथा ॥ ६ ॥
नेत्रान्ते नीलिमाशुक्रमेहस्योपद्रवा इमे ।

मल–मूत्र के अधिक वेग से तथा काम के वेग से, स्त्री के स्मरण, दर्शन और स्पर्श से वीर्य का पतन हो जाता है, या निद्रा में (सोते समय) स्त्री-सम्भोग का अनुभव होकर भी वीर्य–पात हो जाता है। रोग की अति प्रवलता में शिश्नेन्द्रिय शिथिल हो जाती है, किंचित् उत्तेजित होकर फिर गिर जाती है। तन्द्रा में नींद में (बिना स्वप्न के) भी वीर्यपात हो जाता है। ऐसा रोगी सम्भोग में स्त्री को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। उस भाग्यहीन व्यक्ति को ध्वजभङ्ग (नपुंसकता)-नामक रोग हो जाता है। वह व्यक्ति व्यर्थ जीता है, मृत्यु ही उसका जीवन है। मन्दाग्नि, मलावरोध, शिर में शूल (शिर में चक्कर से आना), अजीर्ण, अतिसार, दृष्टि की दुर्बलता और नेत्रों के नीचे नीली झाँई। का पड़ जाना ये शुक्रमेह के उपद्रव हैं। २-६।

त्रिवारं च चतुर्वारं दिवारात्रौ पतेत्क्वचित् ।

एवं रूढगदो मूढः ध्वजशैथिल्यमेति च ॥ ७ ॥

कहीं-कहीं दिन और रात में तीन अथवा चार बार भी वीर्यपात होते देखा गया है। इस प्रकार रोग बढ़ जाने पर अन्त में इन्द्रियों में अधिक शिथिलता हो जाती है। ७।

न शक्नुयान्मर्दयितुं कदाचि-
न्मदे स्मरस्मेरविलासिनीनाम्।
पतद्ध्वजस्तीव्रविषादयुक्तः
कदाचिदिच्छेन्मरणं विरक्तः ॥८॥

शुक्रमेह रोग के बढ़ने पर पुरुष मैथुन करने में असमर्थ हो जाता है अर्थात् उसका वीर्य मैथुन से पहले ही निकल पड़ता है, जिससे रोगी अत्यन्त दुःखी रहने लगता है। यहाँ तक कि उदासीन होकर आत्महत्या का विचार भी कर लेता है। ८।

शुक्रमेह के उपद्रव

ध्वजभङ्गः प्रतिश्यायस्त्रिकदेशे च वेदना।
विषण्णता गदोद्वेगः कासे यक्ष्मारतिस्तथा ॥ ९ ॥
कोष्ठावरोधः शिरसश्च घूर्णनं
वह्नेर्विनाशस्त्वतिसार एव।
ह्रासश्च दृष्टेर्ननु नीलिमा दृशो-
रजीर्णमेते प्रभवन्त्युपद्रवाः ॥१०॥

ध्वजभङ्ग (शिश्नेन्द्रिय का उत्तेजित न होना), जुकाम, त्रिकदेश (कमर) में दर्द, विषण्णता (सदा दुखी तथा उदास रहना), गदोद्वेग नामक (मिथ्या काल्पनिक) व्याधि, खाँसी, राजयक्ष्मा तथा अरति (किसी भी कार्य करने में रुचि न होना), मलबद्धता, सिर का घूमना, मन्दाग्नि, अतिसार, दृष्टिशक्ति का कम होना, आँखों का नीलापन तथा अजीर्ण आदि उपद्रव होते हैं। ९-१०।

औपसर्गिक मेह

औपसर्गिकमेहोऽथ पूयमेहस्तथैव च ।
तथैवागन्तुकश्चापि व्रणमेहोऽपि कथ्यते ॥ ११ ॥

औपसर्गिक मेह, पूयमेह, व्रणमेह (भूशोष्ण वात), आगन्तुज मेह ये सब एकार्थवाचक हैं । (साधारण भाषा में इसे सूज़ाक) कहते हैं । ११ ।

निदान

क्लिन्नयोनिः ऋतुमती बहुभुक्ता तथैव या ।
कामान्धस्तत्र गमनाद् गदमाप्नोति दारुणम् ॥ १२ ॥

व्रण आदि के मवाद से गीली योनिवाली, ऋतुमती तथा वेश्याओं के साथ सम्भोग करने से कामान्ध पुरुष को यह कष्टदायक रोग होता है परन्तु यह बात अवश्य है कि जिस स्त्री को यह रोग होगा, उसके साथ सम्भोग करने से ही यह रोग होता है, अन्यथा नहीं । रोगी के अधोवस्त्र-धोती-पाजामा आदि पर रोगी का पीब लगा हो, और उसे कोई दूसरा व्यक्ति पहन ले, तो मूत्रेन्द्रिय आदि पर पीब लग जाने पर भी यह रोग हो जाता है । इसी प्रकार जिस पुरुष को यह रोग हो, और वह स्त्री-सम्भोग करे, तो उस स्त्री को भी यह रोग हो सकता है, अर्थात् यह रोग संसर्ग से फैलनेवाला है । १२ ।

बहुसङ्करसम्भोगप्रक्लिन्नेन्द्रियया पुमान् ।
स्त्रिया सङ्गम्य सम्मूढो गदमाप्नोति दारुणम् ॥ १३ ॥
मूत्रनाड्यन्तरस्थानोत्त्वगस्य श्लेष्मवाहिनी ।
व्रणिता वाहयेत् क्लेदं व्रणमेहः स उच्यते ॥ १४ ॥
औपसर्गिकमेहश्च तस्य नामान्तरं मतम् ।
मेह आगन्तुकश्चापि स कैश्चित्परिभाष्यते ॥ १५ ॥
आरभ्य सङ्गमनिशां संख्यया या च सप्तमी ।
एतद्व्यवहिते काले प्रायशो जायते गदः ॥ १६ ॥

कण्डूशिश्नाग्रतस्तस्य समुत्थानं मुहुर्मुहुः ।
तीव्रवेदनया चापि मुहुर्मूत्रप्रवर्त्तनम् ॥ १७ ॥
स्फीतिर्लिङ्गस्य लौहित्यं कोषे ब्रध्ने च वेदना ।
कदाचित् क्लेदसंरुद्धमार्गत्वादतिरुक् स्रवेत् ॥ १८ ॥
मूत्रं दाहेन घोरेण द्विधारं वा प्रवर्तते ।
क्षरेद्वा क्षतजं मेढ्रान्मूत्रकाले कदाचन ॥ १९ ॥
सन्ततं तनुरास्रावः स्रवेदादौ ततोऽतनुः ।
स तावत्पुनराशुष्यन् प्रतिमानं प्रयाति च ॥ २० ॥
काले लघ्वीं व्यथां कुर्याद्व्याधिं च दुष्प्रतिक्रियाम् ।
आमवाताक्षिरोगाद्या ज्ञेयाश्चास्य ह्युपद्रवाः ॥२१॥

वहुत से पुरुषों के साथ सम्भोग करने से विकृत हुई योनिवाली स्त्री के साथ मैथुन करनेवाले मूर्ख व्यक्ति को यह भयंकर रोग होता है। मूत्रनाड़ी के भीतरी स्थान से उसकी श्लेष्मवाहिनी त्वचा व्रणयुक्त होने के कारण क्लेद (पीव) को बहाती है, अतः इसको व्रणमेह कहते हैं । इसके दूसरे नाम औपसर्गिकमेह और आगन्तुजमेह भी हैं । विकृत योनिवाली स्त्री के साथ सम्भोग की रात से प्रारम्भ करके एक सप्ताह के भीतर ही प्रायः यह रोग उत्पन्न होता है। उस रोगी के शिश्न के अग्रभाग में खुजली, बार-बार उत्थान (इन्द्रिय की उत्तेजना), तीव्र वेदना से बार-बार मूत्र की प्रवृत्ति, शिश्न में शोथ, लालिमा, अण्डकोष और ब्रध्न (बाघी) में वेदना होती है। कभी-कभी मवाद से मूत्रमार्ग रुक जाता है, जिससे अत्यन्त पीड़ा और दाह के साथ दो धार से मूत्र निकलता है । अथवा कभी-कभी पेशाब करते समय शिश्न से खून गिरने लगता है। पहिले लगातार थोड़ा-थोड़ा सा गिरता है, बाद में वहुत अधिक गिरने लगता है। वह क्रमशः सूखता-सूखता उसी अनुरूप हो जाता है। पहले व्यथा न्यून, बाद में पीड़ा असह्य हो जाती है । आमवात, अक्षिरोग आदि इसके उपद्रव जानने चाहिए। १३-२१ ।

वृक्कामय निदान

वृक्कामय का पूर्वरूप

त्वग्रूक्षोष्णा वेगवती धमनी कठिना तथा ।
निद्रानाशो वह्निमान्द्यं शोथोऽक्षिणि च मुखे पदे ॥
वृक्कामयस्य पूर्वाणि रूपाण्याहुर्भिषग्वराः ॥ १ ॥

वृक्क रोग उत्पन्न होने से पहले त्वचा में रूखापन और उष्णता आ जाती है। नाड़ी वेगवती और कठोर हो जाती है। नींद नष्ट और अग्नि मन्द हो जाती है। आँख, मुख और पैरों में सूजन आ जाती है। १।

वृक्कामय का लक्षण

रक्ताल्पत्वान्मुखस्य स्यात्पाण्डुत्वं कटिवेदना ।
त्वक्शुष्का स्वेदहीना च धमनी द्रुतगामिनी ॥२॥
वह्निमान्द्यमजीर्णं च भक्तद्वेषो व्यथोदरे ।
अम्लोद्गारस्तथा छर्दिर्हृद्वेषः श्वासकृच्छ्रता ॥३॥
मूत्राल्पत्वं सदावेगो विशेषान्निशि जायते ।
मूत्रकाले च शिश्नाग्रे मनाग्दाहोऽनुभूयते ॥४॥
वृक्कयोर्विकृतिश्चास्मिन् विशेषाज्जायते गदे ।
यकृत्प्लीहहृदां चापि सा सदैव प्रजायते ॥५॥
कर्णनादो दृष्टिदोषशिरोग्रीवा सवेदना ।
शाखासु गौरवं मूर्च्छा वृक्करोगस्य लक्षणम् ॥६॥

रुधिर की कमी के कारण मुख पर पीलापन, कमर में दर्द, त्वचा सूखी और पसीने से रहित, नाड़ी की गति तीव्र, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, भोजन में अरुचि, पेट में दर्द, खट्टी-खट्टी डकारें आती, वमन, हृदय का स्पन्दन बढ़ जाता और श्वास लेने में कष्ट होता है। मूत्र

कम आता है, किन्तु सदैव बना रहता है, विशेषतः रात्रि के समय। पेशाब करते समय शिश्नेद्रिय के अग्रभाग में किंचित् दाह होता है। इस रोग में अधिकतर गुर्दों में विकार होता है तथा यकृत, प्लीहा और हृदय में भी विकार हो जाता है। कर्णनाद (कान गूँजना), दृष्टि-विकार, शिर, ग्रीवा और कंधों में वेदना, हाथ-पैरों में भारीपन और मूर्च्छा आती है। ये सब बृक्क रोग के लक्षण हैं। २-६।

क्लोमरोग-निदान

क्लोम का कार्य और स्थान

प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्यमन्नपाकादिकर्मणि ।
सहायभूतमध्यास्ते क्लोमवच्च तिलाभिधम् ॥ १ ॥

प्लीहा और क्षुद्र आँतों के बीच में क्लोम (पिपासा-स्थान) है। इसका दूसरा नाम तिल अथवा तिलक है। यह अन्न की पाचनादि क्रिया में सहायक होता है। हृदय के दाहने भाग में क्लोम की स्थिति है। यह जल को बहन करनेवाली शिराओं का मूल और पिपासा का स्थान है। १।

टिप्पणी—क्लोम के विषय में आचार्यों का मत-भेद है। कविराज गणनाथ सेनजी ने क्लोमनलिका श्वासनलिका (Trachea) को कहा है, और पं० हरिप्रपन्नजी ने पित्ताशय (Gall Bladder) माना है। किन्तु यहाँ क्लोम से अभिप्राय अग्न्याशय से है, जिसे Pancreas कहते हैं। यह ग्रन्थि वामपार्श्व में आमाशय के नीचे होती है, और एक नली द्वारा अपने रस को पक्वाशय में भेजकर अन्न के पचने में सहायता देती है।

क्लोमरोग निदान

तच्चातिस्निग्धगुरुभिः भोज्यैरत्यर्थशीलितैः ।
अभिघातादिभिश्चापि याति वृद्धिं च मार्दवम् ॥ २ ॥

तथा शोणितसङ्घातो विद्रधिश्चापि जायते ।
अन्ये च दारुणा रोगा जायन्तेऽस्मिंश्च वैकृते ॥३॥

अधिक मात्रा में अधिक चिकना एवं भारी आहार करने से तथा चोट लगने आदि कारणों से यह ग्रन्थि बढ़ जाती है और मृदु हो जाती है। इससे रुधिर एकत्र होने लगता है। कभी-कभी विद्रधि भी हो जाती है। इस ग्रन्थि के विकृत होने पर (मधुमेह आदि) अन्य कठिन रोग भी हो जाते हैं। २-३।

क्लोमविकृति के लक्षण

उत्क्लेशो वमथुर्वह्नेः सादः कार्श्यं च पाण्डुता ।
भ्रमः सादश्च काठिन्यमौष्ण्यमूर्द्ध्वोदरे तथा ॥४॥
विद्रधेर्विकृतौ तत्र शूलाध्मानौ तृषाऽधिका ।
अश्मरीवच्छिला घोरा सुकष्टा तत्र जायते ॥५॥

जी मतलाना, वमन, मन्दाग्नि, कृशता पाण्डु, सिर में चक्कर, पेट के ऊपर कठोरता और उष्णता आदि लक्षण होते हैं। क्लोम-ग्रन्थि में विद्रधि हो जाने पर शूल, आध्मान तथा प्यास की अधिकता आदि लक्षण होते हैं। इस ग्रन्थि में अश्मरी रोग के समान कठिन एवं कष्टदायक पथरी भी उत्पन्न हो जाती है। ४-५।

खञ्जनिकानिदान

खञ्जन्यदनसातत्यादनिलो वैकृतिं गतः ।
सक्थ्नि संजनयेद्व्याधिं घोरां खञ्जनिकाभिधाम् ॥६॥
'खञ्जनी' इति द्विदलभेदः ।
तस्या निरन्तरभक्षणात् खञ्जनी रोगः ।

खञ्जनी नाम की एक प्रकार की दाल होती है। इसके अधिक खाने पर वायु विकृत होकर ऊरुओं में 'खञ्जनिका'-नामक कष्टदायक रोग होता है। ६।

खञ्जनी यामुने देशे बाहुल्येन प्रजायते ।
तस्याः समशनात्तत्र पीड्यन्ते व्याधिना जनाः ॥७॥
वातामयाधिकारे या प्रोक्ता कलायखञ्जता ।
सैवेयमिति कैश्चिद्वा कैश्चिद्वाऽन्याऽभिमन्यते॥८॥

खञ्जनी यमुनाजी के किनारे के प्रदेशों में बहुत उत्पन्न होती है। उसके खाने से मनुष्य खञ्जनिका रोग से पीड़ित हो जाता है। वातव्याधि-प्रकरण में जो कलायखञ्जता नामक रोग कहा है, उसी को 'खञ्जनिका' कहते हैं। कुछ लोग इसको अन्य रोग मानते हैं। ७-८।

खञ्जनिका का अनुपशय

शैत्येनार्द्रतया चापि व्याधिरेव विवर्द्धते ।
स्त्रीभ्यः पुंसामयं व्याधिर्बाहुल्येनाऽभिजायते ॥९॥

शीत और गीलेपन से यह रोग बढ़ता है, और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को ही अधिक होता है। ९।

खंजनिका के लक्षण

सुप्तोत्थितस्योषसि जानुसन्धौ
रुजा च गुर्वी च दृढा च जङ्घा ।
ककुद्मती क्षीणबला ततो ना
सोऽङ्गुष्ठमाकृष्य चलेत् सुकृच्छ्रम् ॥१०॥
वक्रत्वं जानुसन्धेश्च जङ्घायाश्चापि शीर्णता ।
पादसंस्थानवैरूप्यमरतिश्चात्र संभवेत् ॥११॥

जानुओं की संधियाँ शून्य, भारी और पीड़ायुक्त रहती हैं। जाँघों में भी कठोरता, दर्द और भारीपन रहता है। मांस की गाँठ-सी पड़ जाती है और बल क्षीण हो जाता है। इस लिए अँगूठे को सिकोड़ कर कठिनता से चला जाता है। जानु-सन्धियों में तिरछापन, जाँघों में शिथिलता, पैरों में कुरूपता और बेचैनी होती है। १०-११।

ताण्डवरोग-निदान

अत्यातङ्कादतिक्रोधादतिहर्षाद्बलक्षयात् ।
कर्षणात् स्वप्नरोधाश्च विड्बन्धात् क्रिमिसञ्चयात् ।१।
आशानाशादभिघातात् स्त्रीणामृतुपर्ययात् ।
कशेरुकामज्जनश्चात्युग्रभावात् प्रजायते ॥ २ ॥
व्याधिस्ताण्डवनामा स प्राणिनां क्लेशकृत्परः ।
अङ्गानां ताण्डवादस्य ताण्डवाख्या बुधैः कृता ॥३॥
कैशोरे वयसि प्रायः स्त्रीणां चापि विशेषतः ।
व्याधिरेषाऽभिजायेत वृद्धानां च बलक्षयात् ॥४॥

अत्यन्त भय, क्रोध, हर्ष और बल के क्षय होने से तथा खींचने से, न सोने से, मलावरोध से, उदर में क्रिमि-संग्रह होने से, आशा नष्ट होने से, चोट लगने से, स्त्रियों के मासिक स्राव की गड़बड़ी से, कशेरुका अस्थि (पीठ में बाँसे की हड्डी, जो मस्तिष्क से शुरू होकर गुदा की हड्डी तक गई है) में चोट लगने से तथा उग्रभाव (अत्यन्त क्रोध करने) से प्राणियों को कष्टदायक ताण्डव रोग उत्पन्न होता है। शरीर के अवयवों को नचाने से विद्वानों ने इसका नाम ताण्डव रक्खा है। विशेषतः यह बीमारी स्त्रियों को किशोर अवस्था में और बुड्ढों को बलक्षय होने पर हो जाती है। १-४।

ताण्डव रोग के लक्षण

वामबाहुं समारभ्य प्राय आदौ ततोऽपरम् ।
ततः पादौ ततोऽङ्गानि चालयेत् ताण्डवामयः ॥५॥
मुष्टिनां किमपि द्रव्यं सम्यग्धारयितुं क्षमः ।
समर्पयितुमास्ये वाप्यदनीयं न ताण्डवी ॥६॥
नृत्यन्निव चलत्येष बीभत्सैर्मुखचेष्टितैः ।

अधीरः सततं तिष्ठेन्निद्रायां कम्पवर्जितः ॥ ७ ॥
वीभत्सैर्मुखचेष्टितैरुपलक्षितः ।

ताण्डव रोगी के प्रारंभ में बाएँ हाथ से रुग्ण होकर बाद में अन्य स्थलों में, फिर पैरों में, बाद में अन्य अवयवों में चंचलता उत्पन्न होती है। किसी द्रव्य को मुट्ठी में पकड़ नहीं सकता, और न अच्छी तरह मुँह में ही कोई चीज रख सकता है। नाचता हुआ-सा चलता है, मुख की चेष्टा विकृत (बुरी) हो जाती है, सदैव धैर्यहीन रहता है। केवल सोते समय काँपना बन्द रहता है, अन्यथा हर समय काँपता रहता है। ५-७।

स्नायुशूल-निदान

स्नायुशूल का स्वरूप

स्नायुष्वतीव या घोरा तच्छाखास्वपि वा पुनः ।
वेदना स्नायुशूलाख्या सा भवेत् प्राणपीडनी ॥१॥

शाखाओं की स्नायुओं (नाड़ियों-Nerves) में प्राणों को पीड़ा पहुँचानेवाली घोर वेदना होती है, उसे स्नायु-शूल कहते हैं। १।

रोग के स्थान

बाहोःशीर्षणस्तथा सक्थ्नोरन्यस्याङ्गस्य वा पुनः ।
त्वचो निम्नस्थितास्वेव वस्नसासु[1] गदो भवेत् ॥२॥
शूलोऽयं निखिलाङ्गेषु भवेत् तीव्ररुजाकरः ।
विशिष्टाङ्गभवस्यास्य विशिष्टाख्या च वर्तते ॥३॥
ऊर्ध्वभेदार्द्धभेदौ चाप्यधोभेदस्तथैव च ।
मुण्डमुण्डार्द्धकस्फिग्जागदा नानाभिधाःक्रमात् ।४।

---

१ वस्नसासु=स्नायुषु ।

दोनों बाहुओं, टाँगों और शिर दूसरे अवयवों में त्वचा के नीचे की सतह में स्थित स्नायुओं (Nerves=नाड़ियों) में शूल रोग होता है। यह शूल सम्पूर्ण अवयवों में अत्यन्त कष्टदायक होता है। जिन-जिन अवयवों में होता है, उन-उन अवयवों के नाम के ही पुकारा जाता है। यह ऊर्ध्वभेद, अर्द्धभेद, अधोभेद, मुण्डभेद, मुण्डार्द्ध भेद और कटिदेश-भेद आदि भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध है। ३-४।

ऊर्ध्वभेद का निदान

बलरक्तक्षयाद्वापि वृक्कमस्तिष्कदोषतः।
अजीर्णाद् दशनव्याधेरूर्ध्वभेदो गदो भवेत् ॥५॥

बल और रक्त के क्षय से, वृक और मस्तिष्क के दोष से तथा अजीर्ण और दाँतों के दोष से ऊर्ध्वभेद रोग होता है। ५।

ऊर्ध्वभेद के लक्षण

ललाटेऽक्षिपुटे निम्ने गण्डे नम्योष्ठ एव च।
जिह्वापार्श्वेऽधरे दन्ते शूलवद्दाहवच्च या ॥६॥
एकस्मिन् प्रायशः पार्श्वे वेदना मुखमण्डले।
ऊर्ध्वभेदाख्यया प्रोक्ता गदज्ञैः क्रमैधिनी[1] ॥७॥

ललाट में, अक्षिपुटों के नीचे गण्डस्थल में, ओष्ठ में जिह्वा में, पसवाड़े में और दाँतों में शूल तथा दाह की तरह वेदना होती है। एक ही पसवाड़े में एक ही ओर मुख-मंडल में ऊपर-नीचे के भेद से वेदना होती है, जो क्रमशः बढ़ती है। ६-७।

ऊर्ध्वभेद की सम्प्राप्ति

शीतानिलस्य संस्पर्शाद्देहकम्पाच्च वर्द्धते।
स्नायुभेदस्य विकृतेरङ्गभेदे भवेद् गदः ॥८॥

शीतल वायु के स्पर्श से तथा देह में कँपकपी होने से शरीर में

---

१ क्रमैधिनी=क्रमशो वर्द्धिनी।

कम्प बढ़ता है । अतः स्नायु-भेद के विकृत हो जाने से विभिन्न अङ्गों में यह रोग होता है । ८ ।

अर्द्धभेद का निदान

आर्द्रस्थानस्थितेश्चापि शीतयोगाद् बलक्षयात् ।
अर्द्धभेदः प्रजायेत दुष्टवाताम्बुसेवनात् ॥९॥

गीले स्थान पर रहने से, शीत के योग से, बल के क्षय से और दूषित जलवायु के सेवन से अर्द्धभेद (आधे अंग का शूल) हो जाता है । ९।

अर्द्धभेद के लक्षण

याऽर्द्धं व्याप्य भवेत् तीव्रा वेदना मुखमण्डले ।
वामे च प्रायशः पार्श्वे साऽर्द्धभेदः प्रकीर्त्यते ॥१०॥
बाणेनेव शिरो विद्धं व्यथतेऽतिसुदारुणम् ।

अर्द्धभेद रोग में मुखमंडल में तीव्र वेदना होती है । प्रायः बाएँ पसवाड़े में ही दर्द होता है । बाण की नोक से शिर भिदने के समान ही अत्यन्त कष्टदायक वेदना होती है । १० ।

अधोभेद का निदान

कदाचित् क्रममालम्ब्य विरामश्चात्र वा महान् ॥
बाहुल्येन च नारीणां व्याधिरेष प्रजायते ।
प्रादुर्भावो वयःस्थस्य यौवने ह्यधिको मतः ॥११॥

यह रोग क्रमशः बढ़ाता है और शान्त भी हो जाता है। यह रोग विशेष रूप से स्त्रियों को ही होता है, और अधिकतर यौवनावस्था में ही इस रोग की उत्पत्ति होती है । ११ ।

अधोभेद का निदान

विड्विरोधाच्छ्रमाच्छीताद्दौर्बल्यादामवाततः ।
आर्द्रस्थानस्थितेर्गर्भदोषात् स्यान्निम्नभेदकः[1] ॥१२॥

१— निम्नभेदकः अधोभेदे ।

मलावरोध से, थकावट में, शीत से, दुर्बलता में, आमवात में, आर्द्र (गीले-सीलन के) स्थान में रहने से और गर्भ के दोष से अधोभेद रोग हो जाता है। १२।

अधोभेद के लक्षण

स्फिग्ग्यूरुजानुसन्ध्योश्च पश्चिमे च क्वचित् पदे।
जङ्घायां वापि यच्छूलमधोभेदः स उच्यते ॥१३॥
एकस्मिन् प्रायशः सक्थ्नि शूलोऽयं स्यान्निशावली।
बाहुल्येनैव वयसि प्रौढ एव प्रजायते ॥१४॥

कमर, ऊरु, जानुसन्धि के पीछे और किसी पैर में या जाँघ में जो शूल होता है उसे अधोभेद कहते हैं। एक ही टाँग में यह शूल होता है और रात्रि में बढ़ जाता है। यह अधोभेद-नामक रोग अधिकतर प्रौढ़ावस्था में ही होता है। १३-१४।

स्खालित्य का निदान

स्नायूनां बलनाशाच्च वातस्यातिप्रकोपणात्।
कर्मणश्चातिसातत्यात् स्खालित्यं खलु जायते॥१५॥
स्त्रीभ्यः पुंसामयं व्याधिर्यौवनात् परतस्तथा।
बाहुल्येनाभिजायेत सद्भिरेवं निरूपितम् ॥१६॥

स्नायुओं (Nerves=नाड़ियों) के बलनाश से, वायु के अति प्रकोप से तथा काम की अधिकता से स्खालित्य रोग उत्पन्न होता है। यह स्खालित्य-नामक रोग विशेष करके स्त्री और पुरुष के यौवन बीत जाने पर ही होता है। १५-१६।

स्खालित्य के लक्षण

शान्तिर्भारश्च हस्तस्य जायते तदनन्तरम्।
अंगुल्याः स्खलनाद्धानिर्भवेदारब्धकर्मणः ॥१७॥
लेखनेऽक्षरदोषः स्याद् वाद्ये तालव्यतिक्रमः।

प्रयत्नादपि दोग्धा गां दोग्धुं सम्यङ् न चार्हति १८
स्खालित्यं सुचिरं यस्य विद्यते व्यवसायिनः ।
घटं धारयितुं द्रव्यं न स शक्नोति मुष्टिना ॥१९॥

स्खालित्य रोग में हाथ स्थिर और शान्त नहीं रहता । अँगुलियाँ हिलती हैं और कार्य करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। लिखने में अक्षर दूषित (टेढ़े और असुन्दर) हो जाते हैं तथा बाजा बजाने में ताल उलटी हो जाती है । जिस व्यवसायी के स्खालित्य-रोग पुराना हो जाता है वह किसी वस्तु को, मुट्ठी में दृढ़तापूर्वक धारण नहीं कर सकता । १७–१९ ।

तत्त्वोन्माद का निदान

प्रायशो बुद्धिहीनानामसतां नीचचेतसाम् ।
व्याधिरेषोऽभिजायेत कदाचिन्महतामपि ॥२०॥
अतिप्रगाढाच्चित्तस्य धर्माद्यभिनिवेशनात् ।
तत्त्वोन्मादो नाम व्याधिर्जायते वातकोपतः ॥२१॥

यह तत्वोन्माद-नामक रोग प्रायः बुद्धिहीन और नीच विचारवाले दुष्ट पुरुषों को होता है । कभी-कभी बुद्धिमान् सज्जन व्यक्तियों को भी हो जाता है । वायु के कोप से, चित्त पर अत्यन्त दबाव पड़ने से और धर्माचार में बहुत मन लगाने से यह तत्वोन्माद-नामक रोग हो जाता है । २०-२१ ।

तत्त्वोन्माद के लक्षण

ब्रह्ममोहे प्रमूढत्वं स्थिरास्पन्दा कनीनिका ।
चक्षुरुन्मीलितं सुप्तिर्गतिरोधोऽथ वाग्मिता ॥२२॥
दम्भोग्रभावौ विक्षेपो हास्यं चौर्यं च रोदनम् ।
एवं भूतानि लिङ्गानि तत्त्वोन्मादे भवन्ति हि ॥२३॥

ब्रह्ममोह को प्राप्त रोगी की आँख की पुतली स्थिर हो जाती है,

आँखें मूँदता-खोलता है। नींद कम आती है। अधिक बातें करता है। अनेक प्रकार के ढोंग बनाता है, हँसता है, विक्षेप करता है और रोता है। इस प्रकार के लक्षण तत्वोन्माद में होते हैं। २२-२३।

तत्वोन्माद का स्वरूप

अहो मम महद्भाग्यं लब्धा यद् ब्रह्मणः कृपा।
इत्येवं भ्रमजो मोहस्तत्त्वोन्माद इतीरितः ॥२४॥

जिस रोगी को यह भ्रम हो कि मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मुझ पर परमात्मा की कृपा हुई, उसे तत्वोन्माद हुआ समझना चाहिए। २४।

टिप्पणी—इस प्रकार का रोगी ब्रह्मज्ञान की चर्चा किया करता है। परमात्मा से प्रार्थना किया करता है और अनेक उत्तम वस्तुओं की याचना करता है। इस प्रकार के ढोंग करनेवाला व्यक्ति 'ज्ञानबावला' नाम से प्रसिद्ध है।

स्मरोन्माद-निदान

स्मरोन्माद का निदान

उन्मादो दयिताऽप्राप्तौ शुक्रस्य विकृतेरपि।
जननेन्द्रियदोषाच्च वैगुण्यादनिलस्य च ॥ १ ॥
पुरुषस्य तथा नार्याः स्मरोन्माद इतीरितः।

प्रिय के प्राप्त न होने पर वीर्य (एवं रज भी) के विकार से, जननेन्द्रिय के दोष से, वायु के विकार से पुरुष और स्त्री दोनों को जो उन्माद होता है, उसे कामोन्माद कहते हैं। १।

स्मरोन्माद के लक्षण

स्तब्धता वेपनं श्वासः प्रलापः पाण्डुता तथा।
चिन्ता धैर्यं रोदनं च लक्षणं स्मरजे मदे ॥२॥

चक्षूरागस्तदनुमनसः सङ्गतिर्भावना च
व्यावृत्तिःस्यात्तदनु विषयभ्रामतश्चेतसोऽपि ।
निद्राच्छेदस्तदनु तनुता निस्त्रपत्वं ततोऽनू-
न्मादो मूर्च्छा तदनुमरणं स्युर्दशाः प्रक्रमेण ॥३॥

स्मरोन्माद में जकड़ जाना, काँपना, श्वास बढ़ जाना, प्रलाप, पाण्डुता (पीलापन), चिन्ता, घबराहट, रोना, आँखों का लाल हो जाना, मन का व्याकुल रहना, शरीर की क्रियाओं में कमी होना, मन का विषय-वासनाओं में दौड़ना, निद्रा की कमी, शरीर का कृश होना तथा मूर्च्छा आदि विकार होकर रोगी की मृत्यु भी हो जाती है । २-३ ।

प्रियाणामथ काम्यानां वस्तूनां सहसैव हि ।
असद्भावान्नराणां वा संक्रान्तानां स्मरेण च ॥ ४ ॥
जायते हि स्मरोन्मादः प्रियस्याप्राप्तिहेतुतः ।

प्रिय एवं इच्छित वस्तुओं का सहसा अभाव होने से अथवा कामाक्रान्त मनुष्यों के प्रिय या प्रिया (पुरुष को स्त्री, और स्त्री के लिए पुरुष) के न मिलने से भी स्मरोन्माद हो जाता है । ४ ।

गदोद्वेग-निदान

गदोद्वेग की परिभाषा

विना व्याधिं व्याधिशङ्का गदोद्वेग इतीरितः ।
पदार्थस्यत्वभावत्वादपदार्थगदश्च सः ॥ १ ॥

पदार्थ की उपस्थिति के बिना भी पदार्थ के अस्तित्व का अनुभव करने के समान ही रोग के विना भी रोग की शंका करने, (रोगी समझता है, मैं बीमार हूँ) को गदोद्वेग कहते हैं । १ ।

अपदार्थ गद का निदान

कायेन मनसा भूयान् श्रमः शोको बलक्षयः ।
नैराश्यं मानहानिश्च गदोद्वेगो महाभयम् ॥२॥
दुरदृष्टं बीजदोषः सत्वस्याभाव एव च ।
अपदार्थगदस्यैते हेतवः कथिता बुधैः ॥३॥

शारीरिक और मानसिक श्रम, शोक, बलक्षय, निराशा, मानहानि, अत्यन्त भय, दैव-दोष, वीर्य-विकार और ओज के अभाव से अपदार्थ-गद (गदोद्वेग) रोग उत्पन्न होता है । २-३ ।

गदोद्वेग के लक्षण

अद्भुतस्य गदस्यास्य लक्षणान्यद्भुतानि च ।
कोऽप्येवं मन्यते नूनमुदरं भुजगोऽविशत् ॥४॥
कोषे भ्रमत्यसौ नित्यं भुङ्क्ते यद् भुज्यते मया ।
निर्वास्यति पथा केन केनोपायेन नङ्क्ष्यति ॥५॥
किं विधास्यति नो जाने वश्येवाहं दुरात्मना ।
कोऽपि वा मनुते भेको ममैको मूर्ध्नि संस्थितः ॥६॥
विघट्टयति मस्तिष्कं मारयिष्यति मां ध्रुवम् ।
कोऽपीत्थं चिन्तयेच्चित्रं कायः काचमयो मम ॥७॥
सञ्जातोऽयमतो रक्ष्यः सदाघातात् प्रयत्नतः ।
इत्येवं बहुरूपाभिर्व्यर्थचिन्ताभिराकुलः ॥८॥
अपदार्थगदी शुष्येत् सदाभीतः सदाऽसुखी ।
बहुधा बोधितोऽप्येष सान्त्वितोऽपि पुनः पुनः ॥९॥
दूरीकर्तुं न शक्नोति भ्रमंचिन्ता च साध्वसम् ।
यश्चास्य कथयेद्भ्रान्तिंतस्मै द्रुह्येच्च नित्यशः ॥१०॥

भीयते च गदोद्वेगो व्याधेः मत्तात्त्ववादिनि ।
गदोद्वेगवता कोष्ठे कस्मिंश्चिदनुभूयते ॥११॥
सुतीव्रा वेदना प्रायः पाककोष्ठे विशेषतः ।
जिह्वा स्यात्कफलिप्ताऽस्य पूतिःश्वासो निरेति च १२
उत्क्लेशश्च तथा वान्तिरित्थं च जीर्णलक्षणम् ।
प्राखर्यं स्पर्शशक्तेश्च पाण्डुत्वमुदरामयः ॥१३॥
हृदि सांघातिको व्याधिः केन वाऽप्यनुभूयते ।
गदोद्वेगवताऽन्येन पुरुषत्वस्य संक्षयः ॥१४॥
ज्वरः सततकोऽन्येन दुष्प्रतीकार्य एव च ।
किमाश्चर्यं वेपनाद्यं जायते च तदा तदा ॥१५॥
इत्थं बहुविधाकारा व्याधयः कल्पनाकृताः ।
भ्रमरूपाः प्रजायन्ते निःसत्वानाममेधसाम् ॥१६॥
शक्यन्ते व्याधयो वक्तुं नैता निरवशेषतः ।
बुद्धिमद्भिर्लक्षणीया यथास्थं दोषलक्ष्म च ॥१७॥
प्रायशः षोडशादर्वाङ् न च पञ्चाशतः परम् ।
व्याधिरेष प्रदृश्येत हेतुस्तत्र मनोगतिः ॥१८॥
मासि मासि रजःस्रावात् सर्वे शुद्ध्यन्ति धातवः ।
अतः स्नायुगदः स्त्रीणामेष प्रायो न जायते ॥१९॥

यह रोग अद्भुत है, और इसके लक्षण भी अद्भुत हैं । कोई रोगी यह समझता है कि पेट में साँप घुसा है, जो कोष्ठ में घूमता है, और जो कुछ मैं खाता हूँ उसे खा जाता है । वह किस रास्ते से निकलेगा? और किस उपाय से मरेगा? क्या होगा? मुझे वह पापी काट तो न खायगा? कोई समझता है मेरे सिर में मेंढक बैठा है, जो मेरे कि

मस्तिष्क को फोड़ता है, वह मुझे अवश्य मार डालेगा। कोई व्यक्ति इस प्रकार सोचता है कि मेरा शरीर काँच का बना है, इसलिए इसकी सदैव चोट या धक्के से रक्षा करनी चाहिए। रोगी इस प्रकार अनेक रोगों की शंका से व्यर्थ चिन्तित होता है, और सदैव भयभीत और दुःखी रहता हुआ सूखता चला जाता है। बहुधा बार-बार सान्त्वना देने पर रोगी को ज्ञान भी हो जाता है। चित्त से भ्रम दूर होने की कोशिश करने पर भी थोड़ी देर के लिए भ्रम दूर होकर फिर आ जाता है। यदि उससे कहा जाय कि यह रोग तुम्हें नहीं है, तो वह उस व्यक्ति से वैर करने लगता है। रोगी अपने अनुकूल कहनेवाले से ही प्रसन्न रहता है। गदोद्वेग का रोगी कभी पेट में दर्द का अनुभव करता है। प्रायः आमाशय में तीव्र वेदना होती है, जीभ कफ से लिपी रहती है और श्वास में दुर्गन्ध भी आती है। उत्क्लेश (उबकाइयाँ) और वमन होना इस रोग के पुराने होने के लक्षण हैं। स्पर्श करने में खरदरापन, पीलापन और उदरामय भी हो जाता है। कोई रोगी हृदय में सांघातिक व्याधि का और कोई पुरुषत्व के क्षय का तथा कोई रोगी तीव्र चढ़े हुए ज्वर का अनुभव करता है, और बार-बार काँपता है। ओज और बुद्धि से हीन रोगियों के इसी प्रकार की बहुत-सी भ्रम-रूप कल्पित व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। सब व्याधियों का वर्णन करना कठिन है। बुद्धिमान् वैद्य दोषानुसार लक्षणों से रोग को जान सकता है। यह रोग प्रायः सोलह वर्ष से पहले और पचास वर्ष के बाद नहीं होता। इसका कारण मन की गति ही है। स्त्रियों की सब धातुएँ प्रतिमास रजःस्राव होने के कारण शुद्ध हो जाती है, इसलिए स्त्रियों के यह रोग नहीं होता। ४-१९।

गदोद्वेग की सम्प्राप्ति

मनसोऽत्यन्तदौर्बल्यान्मस्तिष्कस्यातिसम्भ्रमात्।
स्त्रीणामतिप्रसङ्गाच्च ध्वजभङ्गात्तथैव वा॥
मिथ्याकाल्पनिको व्याधिर्गदोद्वेग इति स्मृतः ॥२०॥

मन तथा मस्तिष्क की दुर्बलता के कारण अत्यन्त मैथुन और ध्वजभङ्ग से पैदा हुई, मिथ्या एवं काल्पनिक व्याधि को गदोद्वेग कहते हैं। अर्थात् इस रोगी को वस्तुतः कोई व्याधि नहीं होती, पर हृदय और मस्तिष्क आदि की दुर्बलता के कारण, वह अपने को अनेक व्याधियों से ग्रस्त समझता है। २०।

मस्तिष्कवेपन-निदान

मस्तिष्क-वेपन का निदान और लक्षण

शिरस्यभिहते तैस्तैर्मूर्च्छाहृल्लासवान्तयः ।
जडत्वं स्पन्दनं ह्रासो दौर्बल्यं चलचित्तता ॥ १ ॥
वेपथुः कर्णनादश्च मलिनत्वं मुखस्य च ।
पृथुत्वं तारकायाश्च धमनी बलवर्जिता ॥ २ ॥
शीतलत्वं शरीरस्य वैकृत्यं वचनस्य च ।
तथा पक्षवधं स्याच्च गदोऽसौ शीर्षवेपनः ॥ ३ ॥

शिर पर चोट लगने से मूर्च्छा, उबकाई, वमन, जड़ता, स्पन्दन की कमी, दुर्बलता, चित्त की चंचलता, कफ, कर्णनाद (कानों में गूँजना) मुख की मलिनता, आँख की पुतलियों का फैल जाना, नाड़ी का क्षीण हो जाना, शरीर का शीतल होना, अच्छी तरह से बोला न जाना तथा पक्षाघात शीर्षवेपन रोग में होता है। १-३।

वेपथुवात-निदान

वेपथु वात का कारण

वातप्रकोपिपानान्नैर्जरसा सुरया तथा ।
कशेरुमज्जरोगाच्च वेपथ्वनिलसम्भवः ॥ १ ॥

बात को कुपित करनेवाले अन्नपान के अतिसेवन से, बुढ़ापे में, शराब से और वातजन्य कशेरुमज्ज रोग में वातजन्य वेपथु (कम्प)-रोग होता है। १।

वेपथु वात के लक्षण

आदौ हस्तं समारभ्य कदाचिद्वापि मस्तकम् ।
भ्रमात् कृच्छ्रतरः सर्वं देहं व्याप्नोति वेपथुः ॥ २ ॥
स न शक्नोति चलितुं न सम्यक् चाभितः पतेत् ।
गच्छेच्चातिद्रुतमिव निद्रितोऽपि च वेपते ॥ ३ ॥
नाहारं भक्षयेत् सम्यगवक्रकायो भवत्यपि ।
चिबुकं च समारोप्य वक्षोऽस्थन्यवतिष्ठते ॥ ४ ॥
धृताङ्गं कम्पते चापि न शक्नोत्यपि भाषितुम् ।
ततो बहुप्रलापश्च चेतनापरिवर्जितः ॥ ५ ॥
स्वयं प्रवृत्तविण्मूत्रः श्वासी प्राणांस्त्यजत्यपि ।
अतोऽयं दारुणो व्याधिर्नोपेक्ष्यो जीवनैषिणा ॥ ६ ॥

प्रारंभ में हाथ या मस्तक से शुरू होकर सम्पूर्ण देह में चक्कर-सा आकर कम्प शुरू होता है। इससे रोगी अच्छी तरह चल नहीं सकता और गिर जाता है। चलता है, तो तेज चलता है। सोते समय भी काँपता रहता है। अच्छी तरह भोजन भी नहीं कर सकता ; क्योंकि शरीर तिरछा हो जाता है। चिबुक छाती से टिक जाता है, सब शरीर काँपने लग जाता है, जिससे अच्छी तरह बोल नहीं सकता। ज्ञानशक्ति लुप्त होने से बहुत प्रलाप करता है। मलमूत्र की प्रवृत्ति स्वतः हो जाती है। श्वास होकर प्राणनाश हो जाता है। अतः जीवित रहने की इच्छा रखनेवाले को इस भयानक बीमारी के प्रति लापरवाही नहीं रहना चाहिए। २-६।

मस्तिष्कचय-अपचयनिदान

मस्तिष्कचय-अपचय का निदान और लक्षण

देहस्वभावाद् दिष्ट्या च वर्द्धते मस्तुलुङ्गकः ।
करोटिरपि बालानां यूनां चापि कदाचन ॥ १ ॥
मस्तिष्कस्य करोटेश्च यदि वृद्धिर्द्वयोर्भवेत् ।
न चिह्नं दृश्यते किञ्चित् प्रायशः समवर्द्धनात् ॥ २ ॥
मस्तिष्कस्यैव चेद्वृद्धिर्न करोटेस्तथा भवेत् ।
तदा निष्पीडनात्तस्य जायन्ते विविधा रुजः ॥ ३ ॥
शिरसोऽतिरुजा तीव्रा दौर्बल्यं भ्रममूर्च्छने ।
पक्षाघातस्तथा क्षेपस्ततो मरणमेव च ॥ ४ ॥
ह्रासमायाति मस्तिष्कं देहदोषाददृष्टतः ।
एकपार्श्वे ह्रसेत्तच्चेन्न शीघ्रं जीवनक्षयः ॥
समन्ताद्ध्रसनात्तस्य प्राणान्तस्त्वरया भवेत् ॥ ५ ॥

शरीर के स्वभाव से ही मस्तिष्क का मस्तुलुङ्ग बढ़ता है। इससे बच्चों की करोटि (खोपड़ी की हड्डी) भी बढ़ती है। कभी-कभी जवानों की भी बढ़ जाती है। मस्तिष्क और करोटि दोनों की वृद्धि साथ-साथ होती है, तो समवर्द्धन के कारण किसी प्रकार के चिह्न मालूम नहीं होते। यदि मस्तिष्क की वृद्धि न होकर करोटि ही बढ़ती है, तो उसकी वेदना में अनेक रोग हो जाते हैं। शिर में अत्यन्त तीव्र शूल, दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, पक्षाघात तथा आक्षेप आदि उपद्रव होकर मृत्यु भी हो जाती है। भाग्यवश देह-दोष से मस्तिष्क का नाश होने लगता है। जिसका मस्तिष्क एक तरफ से ही नष्ट होने लगता है, उसका जीवन शीघ्र नष्ट नहीं होता, किन्तु जिसका मस्तिष्क दोनों ओर से समान रूप से क्षय होने लगता है, वह रोगी शीघ्र ही मर जाता है। १-५।

पारदविकार-निदान

शुद्धसूतोऽमृतं साक्षादशुद्धस्तु रसो विषम् ।
अयुक्तियुक्तो रोगाय युक्तियुक्तो रसायनः ॥ ६ ॥
विधिवत्सेव्यमानोऽयं निहन्ति सकलामयान् ।
तस्य मिश्रोपचारेण भवन्त्येते महागदाः ॥ ७ ॥
पीनसो नासिकाभङ्गो दन्तपातः शिरोरुजा ।
भगन्दरो विसर्पश्च नेत्ररोगो मुखामयाः ॥ ८ ॥
त्वग्वैवर्ण्यं कोठकण्डू क्षतं वै नासिकादिषु ।
कुष्ठोपदंशकाठिन्यं सरुजं फलकोषयोः ॥ ९ ॥
पक्षाघातो ग्रन्थिवातः प्रदाहोऽस्थ्नां च दारुणः ।
जाड्यं मनोविकारं च सर्वे कृच्छ्रतमा गदाः ॥१०॥

शुद्ध पारद साक्षात् अमृत के समान है, और अशुद्ध साक्षात् विष के समान । विधिहीन सेवन करने से रोग उत्पन्न करनेवाला और विधिपूर्वक सेवन करने से रसायन तथा सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करनेवाला है। पारद के मिश्रण (पारदयुक्त औषध) के अनुचित उपयोग से निम्नलिखित महान् रोग उत्पन्न हो जाते हैं—

पीनस, नासिकाभंग (नाक का बैठ जाना), दाँतों का गिर जाना, शिरःशूल, भगन्दर, विसर्प, नेत्ररोग, मुखरोग (मुख में मसूढ़ों का फूल जाना), चकत्ते, खुजली, शरीर के रंग का विवर्ण हो जाना, नासिका आदि में घाव हो जाना, कुष्ठ, इन्द्रिय और अण्डकोष में कष्टयुक्त कठिन उपदंश, पक्षाघात, ग्रन्थिवात, अस्थियों में कठिन प्रदाह (जलन), जड़ता तथा मानसिक विकार ।

ये सब विकार कृच्छ्रसाध्य (कठिनता से आराम होनेवाले) हैं। ९-१० ।

शीर्षाम्बुरोग-निदान

निदान और सम्प्राप्ति

मद्यातिपानादतिशैत्ययोगाद्
विरुद्धभोज्यादनिलप्रदोषात् ।
दुष्टाम्बुपानादभिघाततश्च
तथान्त्रमध्ये क्रिमिसम्भवाच्च ॥ १ ॥
शिरोगतस्नेहवृतो क्रमेण
संचीयते तोयमतिप्रभूतम् ।
शीर्षाम्बुनामा गद एष पूर्वैः
प्रकीर्तितः कृच्छ्रतरो भिषग्भिः ॥ २ ॥
प्रायशः शैशवे व्याधिर्विविधाहितसेवनात् ।
तथा दन्तोद्गतेरेष बाहुल्येनाभिजायते ॥ ३ ॥

अधिक मद्यपान से, अधिक शीत के संयोग से, विरुद्ध भोजन से, वात के दोष से, दूषित जल पीने से, अभिघात (चोट, धक्का आदि) से, आँत में कृमि-संग्रह होने से, शिरोगत स्नेह से आवृत जल क्रमशः एकत्र होकर बहुत बढ़ जाता है। वैद्यों ने इस शीर्षाम्बुरोग को कष्टसाध्य कहा है। यह रोग प्रायः बचपन में अनेक प्रकार की अपथ्य वस्तुओं के सेवन से होता है। विशेषतः दाँत निकलते समय अधिक हुआ करता है। १-३।

शीर्षाम्बु रोग के पूर्वरूप

जिह्वालिप्तताऽतिनिद्रत्वं दौर्बल्यं श्वासपूतिता ।
गाढविट्ता च तस्मिंस्तु भविष्यति भविष्यति ॥४॥

जीभ लिपी-सी रहती है, नींद अधिक आती है, शरीर दुबला हो जाता है, श्वास में गन्ध आती है, मल गाढ़ा (कड़ा) हो जाता

है। इस प्रकार के लक्षणों को देखकर समझना चाहिए कि शीर्षाम्बु-रोग होनेवाला है। ४।

शीर्षाम्बु-रोग के लक्षण

शिरसो वेदना घोरा श्रुतेर्दृष्टेश्च क्षीणता।
मूत्राल्पत्वं कृष्णविट्त्वं धमनी वेगवाहिनी ॥५॥
त्वग्रूक्षोष्णा तथा छर्दिर्विषमा च कनीनिका।
कोपित्वं मुखवैवर्ण्यं निद्रायां दन्तघर्षणम् ॥६॥
कण्डूरोष्ठस्य नासायामाक्षेपा रक्तनेत्रता।
पक्षाघातः प्रलापश्च शीर्षाम्बुगदलक्षणम् ॥७॥

शीर्षाम्बु रोग होने पर शिर में भयानक वेदना होती है। सुनने और देखने की शक्ति क्षीण हो जाती है, मूत्र कम मात्रा में आता है, मल का रंग काला हो जाता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है, त्वचा रूखी और गरम रहती है, उलटी होती है, आँख की पुतली टेढ़ी हो जाती है, स्वभाव चिड़-चिड़ा तथा मुख का रंग विवर्ण हो जाता है। नींद में दाँत घिसता है। ओठ और नाक में खुजली उत्पन्न हो जाती है। आक्षेपक (झटके) आते हैं। आँखें लाल हो जाती हैं। पक्षाघात और प्रलाप भी हो जाता है। ये सब लक्षण शीर्षाम्बु-रोग के कहे गये हैं। ५-७।

योषापस्मार-निदान

योषापस्मार के कारण

शोणितस्य क्षयाद्वापि तथाधिक्यादजीर्णतः।
कोष्ठरोधान्मनोभङ्गादत्युद्वेगाच्च शोकतः ॥ १ ॥
रजोऽभावाच्च दोषाणां जरायुविकृतेस्तथा।
अशक्तेरपि नैष्ठुर्यात् पत्युरस्नेहतस्तथा ॥ २ ॥

वैधव्यजन्यादाधेश्च योषापस्मारसंज्ञकः ।
गदः संजायते कृच्छ्रो मनोदेहप्रतापनः ॥ ३ ॥
योषितामेव बाहुल्याद् यत एष भवेद् गदः ।
अपस्मारप्रकृतिकस्तेनास्यैषाभिधानता ॥ ४ ॥
कालोऽस्य यौवनं व्याधेर्नार्वाग् द्वादशवर्षतः ।
परं पञ्चाशतो वापि व्याधिरेष प्रजायते ॥ ५ ॥

रुधिर के क्षय अथवा अधिकता से, अजीर्ण से, मलावरोध से, मानसिक आघात से, अत्यन्त उद्विग्नता से, शोक से, मासिक स्राव के न होने से, गर्भाशय के विकार से, अशक्ति से, पति-प्रेम की कमी से और उसकी कठोरता से और वैधव्यजन्य दुःख से, मन और देह को तपानेवाला, कष्टदायक, योषापस्मार-नामक रोग स्त्रियों के उत्पन्न होता है। यह रोग प्रायः स्त्रियों के होता है, और अपस्मार के अनुरूप होने से इसका नाम योषापस्मार रक्खा गया है। इसके उत्पन्न होने का समय यौवनावस्था ही है। यह न तो बारह वर्ष से पहले की आयु में होता है, और न पचास वर्ष के बाद ही होता है। १-५।

योषापस्मार का पूर्वरूप

हृद्रुजा जृम्भणं सादो वर्ष्मणो मनसोऽपि च ।
भवेद्भविष्यति गदे योषापस्मारसंज्ञके ॥ ६ ॥

जिस स्त्री के 'योषापस्मार' नामक रोग होनेवाला होता है; उसके हृदय में पीड़ा, जँभाई और शरीर तथा मन का दुःखित होना, ये लक्षण होते हैं। ६।

योषापस्मार के लक्षण

वचित्यं बुद्धिविभ्रान्तिर्हास्यं क्रन्दनमेव च ।
उच्चैःक्रोशः प्रलपनं ज्योतिर्द्वेषस्तथा भ्रमः ॥ ७ ॥
औद्धत्यं श्वासकृच्छ्रं च कण्ठामाशयवेदना ।

प्राबल्यं स्पर्शशक्तेश्च क्वचिदङ्गे सदा व्यथा ॥८॥
अलीकवर्त्तुलोत्थानमाकण्ठमुदरादपि ।
अत्यल्पबुद्धिर्मूर्च्छा च व्याधावस्मिन् प्रजायते ॥९॥

चित्त को विकलता, बुद्धि-भ्रम, हँसना, रोना, ऊँची आवाज़ से पुकारना, अंट-संट बकना, उजाले से अरुचि, भ्रम, ऊधम मचाना, श्वास में कष्ट, कंठ और आमाशय में वेदना, स्पर्श-शक्ति की प्रबलता, किन्हीं अवयवों में सदैव पीड़ा रहना, पेट से कंठ तक एक गोला-सा उठना (दौरे के समय), बुद्धि की अल्पता और मूर्च्छा होना आदि लक्षण इस रोग के उत्पन्न होने पर होते हैं । ८-९ ।

उरस्तोय-निदान

सम्प्राप्ति

उरस्येकतरे पार्श्वे पार्श्वयोर्वाऽप्यपां चयः ।
उरस्तोयगदो नाम प्रायशः प्राणनाशनः ॥ १ ॥

वक्षःस्थल में एक पसवाड़े में, या दोनों पसवाड़ों में जल-संचय हो जाता है। वही उरस्तोय-नामक रोग है । १ ।

उरस्तोय के लक्षण

कृच्छ्रात्तत्श्वासकफस्रावो नीलावोष्ठौ तथा मुखम् ।
शोथः पादे धरा क्षुद्रा विषमा वेगवाहिनी ॥२॥
मूत्राल्पत्वं भवेच्चापि स ना न शयनक्षमः ।
स्वास्थ्यं किञ्चित् समासीनो लभतेऽस्मिन्महामते ।३।

---

१. उरसि=वक्षोयन्त्रे । असौ गदः प्रायेण प्राणनाशनः ।

२. धरा=धमनी ।

श्वास-प्रश्वास में कष्ट, कफ-स्राव, ओठों तथा मुख के रंग का नीला हो जाना, पैरों पर सूजन, नाड़ी की गति का क्षुद्र, विषम और तीव्र हो जाना, मूत्र का कम आना, सोने में कष्ट तथा बैठने में सुख होना, ये लक्षण उरस्तोय रोग में होते हैं। २-३।

जरायुरोग-निदान

नैरन्तर्येण गर्भस्य सम्भवात् स्रावतोऽस्य च।
शैत्यादार्द्राभिवासाच्च पापोपदंशतस्तथा ॥ १ ॥
अतिव्यवायतः पापमेहिना सह सङ्गमात्।
जरायुरोगा जायन्ते लक्षणानि निशामय ॥ २ ॥

लगातार गर्भ की स्थिति होने से, तथा गर्भपात हो जाने से, शीतल, गीले स्थान में रहने से, पाप-रूप उपदंश (आतशक, सिफलिस) से, अधिक मैथुन करने से पापमेह (औपसर्गिक मेह=गनोरिया) के रोगी के साथ मैथुन करने से जरायु-रोग हो जाता है। उसके लक्षण नीचे लिखे जाते हैं। १-२।

जरायु-रोग के लक्षण

ज्वरोऽग्निमान्द्यमास्यस्य नीलत्वं त्रिकतोदनम्।
व्यथा शिश्नोदरे वस्तावुष्णत्वं गौरवं तथा ॥ ३ ॥
मुहुर्मूत्रप्रवृत्तिश्च योनितः क्लेदसंस्रुतिः।
मलस्यातिप्रवृत्तिश्च ततस्तद्रोध एव च ॥ ४ ॥
दुर्नामानि च दौर्बल्यं शिरोरुग्वमथुस्तथा।
जरायुरोगे जायन्ते आकारा एवमादयः ॥ ५ ॥

ज्वर, मन्दाग्नि, चेहरे पर नीलिमा, कमर की त्रिक, हड्डी में दर्द (चुभाने को-सी पीड़ा), पेट के निचले भाग में वेदना, मूत्राशय का गर्म और भारी होना, बार-बार पेशाब का होना, योनि से मद-

में से पानी का आना, मल का अधिक आना या मलावरोध (क़ब्ज) होना, बवासीर का हो जाना, दुर्बलता, शिरोरोग और वमन, ये सब लक्षण जरायु-रोग में होते हैं। ३-४।

योन्याक्षेप-निदान

मारुते विगुणे योनौ स्पर्शस्यातिप्रवृद्धता ।
विक्षेपणं मुखस्यास्यास्तत्स्पर्शे तीव्रवेदना ॥ १ ॥
योन्याक्षेपवती नारी न सहेत रतिक्रियाम् ।
यदि गच्छेद्बलाद्भर्ता तेन सा व्यथिता भवेत ॥ २ ॥
नोपसर्पति भर्तारं सदा साध्वसविह्वला ।
पत्या तिरस्कृता दुःखान्मृत्युमात्मन इच्छति ॥ ३ ॥
उद्वेगो वह्निहानिश्च निद्राल्पत्वं तथा क्रमात् ।
वस्तिदाहो व्यथा पृष्ठेऽशक्तिश्चंक्रमणेऽपि च ॥ ४ ॥
दौर्बल्यं वर्णहानिश्च तथोत्साहस्य संक्षयः ।
योन्याक्षेपगदस्यैताः प्रोक्ता आकृतयो बुधैः ॥ ५ ॥

योनि के अधिक स्पर्श करने पर वायु प्रवृद्ध, कुपित और उलटी होकर योनि में आक्षेप (झटके) शुरू कर देती है। स्पर्श करने पर योनिमुख में तीव्र वेदना होती है। इस आक्षेप-रोग से रोगिणी स्त्री मैथुन को नहीं सहन कर सकती। यदि पति बलपूर्वक मैथुन करता भी है, तो अत्यन्त कष्ट होता है। योन्याक्षेपवाली स्त्री स्वेच्छा से अपने पति के समीप नहीं जाती। इस कारण पति से तिरस्कार पाकर साध्वी स्त्री आत्म-हत्या करने की इच्छा करती है। क्रमानुसार उद्वेग, अग्नि-मान्द्य, नींद की कमी, मूत्राशय में जलन तथा पीठ में दर्द, चलने-फिरने में अशक्त होना, दुर्बलता, शरीर के स्वाभाविक रंग का नष्ट होना और उत्साह-नाश, बुद्धिमान् वैद्यों ने योन्याक्षेप-रोग के ये सब लक्षण कहे हैं। १-५।

योनि-कण्डू-निदान

योनि-कण्डू के कारण

योनौ बलासे संक्रुद्धे जराय्वविकृतेस्तथा ।
बस्तिद्वारेऽर्बुदे जाते दुर्नामगदतोऽपि च ॥ १ ॥
योनेःशिराणां प्रसृतेर्वातवत्याश्च योषितः ।
रजःप्रवृत्तिसमये पुरुषेणातिसङ्गमात् ॥ २ ॥
गर्भप्रागुद्भवे चापि योनिकण्डूः प्रजायते ।
वार्द्धक्य एव नारीणां सा बाहुल्येन संभवेत् ॥ ३ ॥

योनि में कफ के कुपित होने पर, जरायु के विकृत होने से, बस्तिद्वार में अर्बुद होने पर, अर्श से योनि की शिराओं के फैलने पर, वात के कुपित होने पर, मासिक-स्राव के समय अधिक सम्भोग करने पर, गर्भ-स्थिति होने से पहले, और स्त्रियों की वृद्धावस्था में विशेष रूप से योनि में खुजली उत्पन्न हो जाती है । १ ३ ।

यकृत्-रोग-निदान

अधो दक्षिणतो ज्ञेया हृदयाद् यकृतः स्थितिः ।
व्याधयो बहवस्तत्र भवेयुर्भूरि दुःखदाः ॥ १ ॥
म्लाने तस्मिन् पुरीषस्याऽप्रवृत्तिः स्वल्पपित्ततः ।
पाण्डुत्वं कर्दमाभत्वगचोदन्याविलमूत्रता ॥ २ ॥
उद्गारसदनाध्मानच्छर्दनात् क्लेशनान्यपि ।
प्रतस्तिक्तास्यता नाड्याः काठिन्यं वह्निमन्दता ॥३॥
देहस्य च मृदाभत्वं रसना मलसंयुता ।

लिङ्गान्येतानि जायन्ते तत्राप्याकृष्टिवद् व्यथा ॥४॥
गते यकृति संवृद्धिं वेदना तत्र जायते ।
उरोऽस्थिन दक्षिणे स्कन्धे सकथ्नि चापसव्यगे ॥५॥
दक्षिणस्य भवेज्जाड्यं बाहोस्तिक्तरसास्यता ।
विवर्णत्वं पुरीषस्य कामो लोहितमूत्रता ॥६॥
अरतिर्बलहानिश्च ज्वरौ बद्धाल्पविट्कता ।
पीताक्षत्वं च पार्श्वेन शेते सव्येन चातुरः ॥७॥
तोदभेदौ तथा दाहः कामलाऽप्यस्य जायते ।
निद्रानाशस्तृषा शोथस्तथा सत्वस्य संक्षयः ॥८॥
विद्रधिर्यकृति स्याच्च प्रायेण प्राणनाशनः ।
तेन भाग्यबलात् कोऽपि जन्तुष्वेकः प्रमुच्यते ॥९॥
मद्यातिपानादत्युष्णगुर्वन्नस्य निषेवणात् ।
वेगरोधाद्दिवास्वापान्निशि चापि प्रजागरात् ॥१०॥
अतिव्यवायभाराध्वसेवनादभिघाततः ।
तथान्यैः कर्मभिर्घोरैर्यकृद्रोगा भवन्ति हि ॥११॥

हृदय के दक्षिण में यकृत् स्थित है। उसमें बहुत-सी दुःखदायक बीमारियाँ होती हैं। यकृत् रोग में पित्त की कमी के कारण मल का कालापन लिये हुए मैला-सा होना, कम मात्रा में या बिलकुल ही न आना, पीलापन, कीचड़ की आभा के समान त्वचा का होना, पेशाब में मैलापन और गाढ़ापन होना, डकार आना, शरीर में हड़-फूटन-सी होना, अफ़रा, वमन, उबकाई, प्रातःकाल मुख का स्वाद कड़वा रहना, नाड़ी में कठिनता, मन्दाग्नि, शरीर की कान्ति मिट्टी के समान होना और जीभ का मलयुक्त होना, इतने लक्षण यकृत्-रोग में होते हैं। यकृत् के बढ़ जाने पर जिगर में वेदना उत्पन्न होती है

तथा उरोऽस्थि के दक्षिण स्कन्ध की ओर, दाहनी पसलियों के नीचे कठोरता और मुख कड़वा हो जाता है। मल का रंग बदरंग हो जाता है। मूत्र में लाली हो जाती है। बेचैनी, बलनाश, ज्वर, मल कड़ा और थोड़ा होना, आँखों में पीलापन, रोगी का बाईं करवट से सोना, तोद-भेद (चुभाने-भेदने की-सी पीड़ा), दाह, कामला, नींद न आना, प्यास, सूजन, सत्व (ओज) क्षय-प्राय तथा प्राणनाशक विद्रधि भी यकृत्-रोग में हो जाती है। इससे भाग्यवश ही कोई रोगी बचता है। अधिक मद्य के पीने से, गरम और भारी अन्न के अधिक सेवन से, वेगों के रोकने से, दिन में सोने से, रात को जागने से, अधिक मैथुन करने से, बोझा ढोने से, मार्ग चलने से, चोट लगने से तथा अत्यन्त कठिन कार्यों के करने से यकृत् रोग हो जाता है। १-११।

रोगों के नामों की अन्य चिकित्सा-प्रणालियाँ

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
ज्वर	Pyrexia (पायरेक्सिआ) Fever (फ़ीवर)	हुम्मा बुख़ार
वातज्वर		{ तपं माँदावी { हुम्मा रूहा
पित्तज्वर		ग़िब लाज़िम
कफज्वर		हुम्मा बलग़मिया
वातपित्तज्वर		हुम्मा मुरकब
पित्तकफज्वर		शतुरलग़िब
सन्निपातज्वर	Typhoid State (टाइफाइड स्टेट)	सिरसाम
आगन्तुकज्वर		हुम्मा वरमिया
औषधिगंधजज्वर	Hay fever (हे फ़ीवर)	
काम-भय-क्रोध- शोकज्वर	Pyrexia of emotions (पायरेक्सिया आफ इमोशान्स)	हुम्मा योमिया
भूताभिषङ्गज्वर	Fever of evil Spirits (फ़ीवर आफ ईविलस्प्रिट्स)	
विषमज्वर	Malaria Fever (मलेरिया फीवर)	हुम्माखिलतिया
सन्तत ज्वर	Malarial Remittent Fever (मलेरियल रेमीटेन्ट फीवर) Continuous fever (कन्टीन्यूअस फीवर)	हुम्मा योमी हुम्मादायमी
सततज्वर	Double Quotidian fever (डबल काटिडियन फीवर)	जिलवी तप
अन्येद्युष्कज्वर	Quotidian fever (क्वाटि- डियन फीवर)	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
तृतीयक ज्वर	Benigntertian fever (बेनिग टार्शियन फीवर)	हुम्मा गिब खालिस दायरा
चतुर्थक ज्वर	Quartan fever (क्वार्टन फीवर)	हुम्मा राबेआ (रिब्बा)
तृतीयक विपर्यय ज्वर	Malignanttertian (मैलिगनेन्ट टार्शियन)	
चतुर्थक विपर्यय	Double Quartanfever (डबल क्वार्टन फीवर)	
वातबलासक ज्वर		तपेलासिका
प्रलेपक ज्वर	Hectic fever (फीवर हेक्टिक)	तपेमुवाजबा
अभिघातज्वर	Traumatic fever (ट्रॉमटिक फीवर)	हुम्मा जरबी
विदाहज्वर	Inflammatory fever (इन्फ्लमेटरी फीवर)	हुम्मा वरमी
सूतिकाज्वर	Puerperal fever (प्युएर पेरल फीवर)	हुम्मा जच्चगी
स्तन्योदयज्वर	Milk fever (मिल्कफीवर) Fever of Lactation (फीवर आफ लेक्टेशन)	
रक्तगतज्वर		हुम्मा दमवी
जीर्णज्वर	Chronic fever (क्रानिक फीवर)	तपे कुहना
अतिसार	Diarrhoea (डायेरिया)	इसहाल
वातातीसार		सौदावी इसहाल
पित्तातीसार		सफरावी „
कफातीसार		बलगमी „
रक्तातीसार		इसहाल उलदम
आमातीसार	Mucous Colitis (म्युकस कोलाइटिस)	जहीर
प्रवाहिका	Dysentery (डिसेन्ट्री)	सुहज

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
ग्रहणी	Chronic Diarrhoea (क्रानिक डायेरिया) Spru (स्प्रू)	ज़रब
अर्श	Piles (पाइल्स)	बवासीर
शुष्कार्श वातार्श	Nonbleeding Piles (नॉनब्लीडिंग पाइल्स)	रियाही बवासीर
रक्तार्श	Bleeding Piles (ब्लीडिंग पाइल्स)	ख़ूनी बवासीर. बवासीर उलदम
अग्निमान्द्य	Anorexia (एनोरेक्सिया) Hypochlorhydrea (हाइपो क्लोर हाइड्रिया) Achylis dyspepsia (ऐकॉलिस डिस्पेप्सिया)	ज़ोफ़ेहजम ज़ोफ़उलमेदा
अजीर्ण	Dyspepsia (डिस्पेप्सिया) Indigestion (इन्डाइजेशन)	तुख्मा
विसूचिका	Cholera (कॉलरा)	हैज़ा
कृमि	Worms (वर्म्स)	दीदान उलअमआ
पाण्डुरोग	Anaemia (एनेमिया)	यरकान
कामला	Jaundice (जॉन्डिस)	यरकान अस्फर
हलीमक	Chlorosis (क्लोरासिस)	यरकान असवद
रक्तपित्त	Haemorrhagic diseases (हिमॉर्हेजिक डिसीजेज) Scurvy (स्कर्वी)	उलदम
मौखिक रक्तपित्त	Haemoptysis (हेमोप्टाइसिस)	नफ़स उलदम
मेढ्रगत रक्तपित्त		बौल उलदम
रोमकूपज रक्तपित्त		अर्क उलदम
नासागत रक्तपित्त		रुआफ, नकसीर
ऊर्ध्वगत रक्तपित्त	Hematemesis Haemoptysis Epestaxis	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
अधोगत रक्तपित्त	Melcna	
राजयक्ष्मा	Phthisis (थाइसिस)	हुम्मादिक़
	Consumption (कंज़म्पशन)	तपेदिक़
उरःक्षत	Pulmonary Cavitation (पल्मोनरी कविटेशन)	सिल
कास	Cough (कफ)	सोआल
हिक्का	Hiccup (हिक्कप)	फ़ुवाक
श्वास	Dyspnoea (डिस्प्निया)	रिबु, जिक उलनफस
तमकश्वास	Asthma (एज़्मा)	
क्षुद्रश्वास	Breahtlessness (ब्रेथलेसनेस्)	
महाश्वास	Dyspnoea of failing heart or respiration (डिस्प्निया ऑफ फेलिंग हार्ट ऑर रिस्पिरेशन)	
स्वरभंग	Hoarseness (होर्सनेस)	फसाद उलसोत
छर्दि	Vomiting (वोमेटिंग)	क़य
तृष्णा	Thirst	अतशमुफरत
मूर्च्छा	Cyncope (सिंकपी)	गशी
	Fainting (फेन्टिंग)	
	Senselessness (सेंसलेसनेस)	
भ्रम	Giddiness (गिडिनेस)	सदर द्वार
निद्रारोग	Sleeping sickness (स्लीपिग सिकनेस)	
तन्द्रा	Drowsiness	सुवात
सन्यास	Catalepsy (कॅटॅलेप्सी)	सकता
	Coma (कॉमा)	
मदात्यय	Alcoholism (ॲल्कॉहोलिज़्म)	खुम्र

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
उन्माद	Insanity (इन्सनिटी)	मालेखोलिया जनू-नमानिश्रा
अपस्मार	Epilepsy (एपिलेप्सी)	सरआ
कोष्ठवात		हसार
आमाशयवात		दरद रियाही मेदा
पक्वाशयगतवात		रियाहीकालंज
आक्षेपक	Convulsions (कन्वल्शन्स)	नशन्तुज
धनुस्तम्भ	Tetanus (टिटनस)	
बाह्यायाम	Opisthotonos (ओपिस्थोटोनस)	
अन्तरायाम	Emprosthotonos (एम्प्रोस्थोटोनस)	
दण्डापतानक	Plenosthotonos (प्लनोस्थोटोनस)	
पक्षाघात	Hemiplegia (हेमिप्लेजिया)	इस्तिरखा. फालिज
सर्वाङ्गवात	Diplegia (डाइप्लेजिया)	
अर्दित	Facial Paralysis (फेशियलपैरालिसिस)	लक़वा
हनुग्रह	Trismus (ट्रिसमस) Lockjaw (लॉक् जॉ)	खिलाफक
मन्यास्तम्भ	Stiffneck (स्टिफनेक)	कुजाजइस्तिरख इस्तिरखायउच-लम्भर
	Tarticolis (टार्टिकालेस)	
	Wryneck (रायनेक)	
जिह्वास्तम्भ	Paralysis of the Tongue (पैरालिसिस ऑफ दी टंग)	सकतउल लिसान, इस्तिरखाय उललसान
गृध्रसी	Sciatica (सायटिका)	अरकुन्निशा
विश्वाची	Redio-ulnar Paralysis (रेडियो उलनरपैरालिसिस)	इस्तिरखाय उल-यद
क्रोष्टुक शीर्ष	Inflamed knee (इन्फ्लेम्डनी)	

संस्कृत वैद्यक	अंगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
खंज	Limp (लिम्प)	
पंगु	Paraplegia (पैरेप्लेजिया)	
कलायखंज	Lathirism (लेथेरिज्म)	
वातकंटक	Sprain Ankle (स्प्रेन ऐङ्कल)	वजाउल अक़्ब
पादहर्ष	Numbness of feet (नम्बनेस आफ़ फीट)	खदरपाद
अंसशोष	Osteoarthritis of the shoulder joint (ऑस्टिओ आर्थ्रिटिस आफ़ दी शोल्डर ज्वाइन्ट)	
मूकत्व	Aphasia (अफेज़िया)	बुकम
आध्मान	Tympanitis (टिम्पेनाइटिस)	नफ़ख़
	Metiarism (मीटियरिज्म)	
वाताष्ठीला	Typhlitis (टायफ्लायटिस)	
प्रत्यष्ठीला	Ovaritis (ओवरायटिस)	
मूत्रावरोध		इहतवासुल बॉल
खल्ली	Muscular Spasm of hand and feet (मस्क्यूलर स्पाज्म आफ़ हैण्ड एन्ड फीट)	
ऊर्ध्ववात	Eructaiton (इरक्टेशन)	आरोग
प्रलाप	Delirium (डिलेरियम)	हिज़ूपान
रसाज्ञान	Loss of sensibility to taste (लास आफ़ सेन्सिबिलिटी टू टेस्ट)	बुतलान जौक
कम्पवात	Paralysis Agitans (पैरालिसिस अजिटन्स)	राशा
अपतन्त्रक	Hysteria (हिस्टेरिया)	इख़्तनाक उलरहम
ओष्ठभेद	Cracks of lip (क्रेक्स आफ़ लिप)	शकउलशिफेतन

संस्कृत वैद्यक	अंगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
दन्तभेद		शकउलअसनान
नखभेद	Onychia (ओनिकिया)	शकऊल अज़ फ़ार
घ्राणनाश	Loss of smell (लास आफ़ स्मेल)	
जृम्भा	Yawning (यानिंग)	तसाउब
निद्रानाश	Insomnia (इन्सोम्निया)	सहर
वातरक्त	Gout (गाउट)	
आमवात	Rheumatism (रह्यूमेटिज्म)	वजअउल-मुफ़ासील
शूल	Colic (कालिक)	वजअउलमेदा
परिणामशूल	Gastralgokenosis Hunger pain (गेस्ट्रेल्गोकेनोसिस हंगरपेन)	
उदावर्त		क़ौलंज सफ़ली
गुल्म	Abdominal tumour (एब्डामेनल ट्यूमर)	
रक्तगुल्म	Ovarian or Uteriane Tumour (ऑवेरियन ऑर यटेरियन ट्यूमर	ख़ूनीमैला
हृद्रोग	Diseases of the Heart (डिसीज़ेस आफ़ दी हार्ट) Anginapectorts (एन्जाइनापेक्टोरिस)	वजअउलक़ल्ब
मूत्रकृच्छ्र	Dysuria (डिस्यूरिया) Stranguary (स्ट्रग्युअरी) Painful micturition (पेनफुल मिक्च्यूरिशन)	तकमीर उलबौल
मूत्राघात	Obstructed micturition (आबस्ट्रक्टेड मिक्च्यूरिशन)	इहतबास उल-बौल
वातकुण्डलिका	Spasmodic Stricture (स्पस्मॉडिक स्ट्रिकचर)	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
अष्ठीला (मूत्र)	Enlargement of prostate (इनलार्जमेन्ट आफ़ प्रोस्टेट)	
वातबस्ति	Retention of Urine (रिटेन्शन आफ़ यूरिन)	
मूत्रजठर	Distended bladder (डिस्टेन्डेड ब्लैडर)	इन्तिफाख़ उल मसाना
मूत्रातीत	Incontinence (इन्कोन्टिनन्स)	इस्तिरखाय उल-मसाना
मूत्रोत्संग	Stricture of Urethra (स्ट्रिक्चर आफ़ यूरेथ्रा)	
मूत्रक्षय	Suppression Urine (सप्रेशन आफ़ यूरिन)	
मूत्रग्रन्थि	Tumcur of the bladder (ट्यूमर आफ़ दी ब्लैडर)	
मूत्रसाद	Cystitis (सिस्टायटिस)	
विडविघात	Vesico intestinal fistula (वेसायको इन्टस्टायनल फिश्च्युला)	
बस्तिकुण्डल	Atony of bladder (एटनी आफ़ ब्लैडर)	
अश्मरी	Calculus (कॉलक्युलस)	हीसआत
वाताश्मरी	Uric acid calculus	
पित्ताश्मरी	Mixed calculus (मिक्स्ड् कॉलक्युलस)	
श्लैष्मिकाश्मरी	Stone of phosphotes (स्टोन आफ़ फास्फेट्स)	
शुक्राश्मरी	Seminal calculus (सैमिनल कॉलक्युलस)	
शर्करा	Gravel	रमल

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
प्रमेह	Anomalies of Urinary Secretion or diseases of urine (डिसीज़ेस आफ़ यूरिन)	जिरयान
उदकमेह	Polyuria or Diabetesin-sipidus (डायबिटीज़इन्सिपिडस)	
पिष्टमेह	Chylurea (काल्यूरिया)	
हस्तिमेह	False in continence of urine (फाल्स इन कान्टि-नेन्स आफ़ यूरिन)	
	Anuresis (अन्यूरेसिस)	
लालाबस्तिमेह	Lipuria (लाइप्यूरिया)	
ओजोमेह	Albuminuria (एल्ब्यूमैन्यूरिया)	
रक्तमेह	Haematurea (हेमैच्यूरिया)	बौलउलदम
शुक्रमेह	Spermatorrhoea (स्परमटोरिया)	जिरयान मनी
इक्षुमेह	Alimentary Glycosuria (अलीमेन्टरी ग्लायकोस्यूरिया)	जयाबीतुस
	Diabetes mellitus (डाइबिटीज़ मैलिटस)	
सान्द्रमेह	Mucous in Urine (म्यूकस इन यूरिन)	
सुरामेह	Phosphaturia (फोस्फेच्यूरिया)	
सिकतामेह	Passing of grovel (पासिंग आफ़ ग्रैविल)	
	Urates in Urine (यूरेटस इन यूरिन)	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
क्षारमेह	Alkaline Urine (एल्कलाइन यूरिन)	
हारिद्रमेह	Choluria (कोल्युरिया) Bile in Urine (बाइल इन यूरिन)	
प्रमेहपिडिका	Carbuncle (कार्बंकल)	
मेदवृद्धि	Obesity (ओबेसिटी)	समनमुफरत
प्लीहोदर	Chronic Enlargement of the spleen (क्रानिक एनलार्जमेंट आफ दी स्प्लीन)	वरमउलतिहाल
यकृद्दाल्युदर	Hepatitis (हेपटायटिस) Hepatic Enlargement (हेप्याटिक एनलार्जमेंट)	वरमउलकबिद
जलोधर	Ascites (एसायटिस)	इस्तिस्का
बद्धगुदोदर	Pelvirectol constipation (पेल्वीरेक्टॉल कन्स्टीपेशन)	
रुद्धांत्र	Intestinal obstruction (इन्टेस्टाइनल आब्स्ट्रक्शन)	
शोथ	Swelling (स्वेलिंग) Dropsy (ड्राप्सी) Anasarca (अनासार्का) Odema (ऑडेमा)	वरम
क्षतोदर	Ulceration of the bowel (अलसरेशन आफ दी बावेल) Peritonitis dus to perforation of the bowel	कुरहतउलअमआ
वृद्धि	Scrotal Swelling (स्क्रोटल स्वीलिंग) Scrotal Enlargement (स्क्रोटल एनलार्जमेंट)	
मूत्रजवृद्धि	Hydrocele (हाइड्रोसिल)	किल्लतुलमैआ

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
दोषजवृद्धि	Orchitis (आरकाइटीस	वरमउलउन्सियेन
रक्तजवृद्धि	Hamatocele (हिमटोसील)	
वातजवृद्धि	Chronic orchitis (क्रॉनिक आर्कोइटिस)	
पित्तजवृद्धि	Acute orchitis (एक्यूट आर्काइटिस)	
कफजवृद्धि	Tubercle testes (ट्यूबरकल टेस्टिस)	
मेदजवृद्धि	Elephantiasis of the Scrofum (एलीफेन्टेआसिस आफ स्क्रोटम)	अजीम उलउन्सियेन
अंत्रवृद्धि	Inguinal hernia (इन्गवायनल हार्निया)	फिल्लतुलअमआ
गलगण्ड	Goitre Bronchocel (गायटर ब्रान्कोसील)	
अपची गण्डमाला	Scrofula (स्क्राफुला)	खनार्जार
मेदोर्बुद	Fatty tumour (फेटी ट्यूमर)	
मांसार्बुद	Myoma (मायोमा)	सरतान
रक्तार्बुद	Cancer (केन्सर)	
अर्बुद	Maligent tumour (मैलग्नन्ट ट्यूमर)	बशूर
ग्रन्थि	Enlarged lymphatic gland (इन्लार्ज्ड लिम्फटिकग्लैन्ड)	
श्लीपद	Elephantiases (एलीफेन्टाइसिस)	दायउलफील
विद्रधि	Abscess (एब्सेस)	दुबेला
व्रणशोथ	Inflammation (इन्फ्लैमेशन)	आवला
शारीरव्रण	Idiopathic Ulcer (ईडियोपैथिक अलसर)	
सद्योव्रण	Traumatic wound (ट्रॉमेटिक वुण्ड)	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
छिन्न	Slashed (स्लैश्ड)	
भिन्न	Punctured (पंक्चर्ड)	
विद्ध	Stabe (स्टेब)	
क्षत	Contused wound (कन्टयुज्ड (वुण्ड)	
पिच्चित	Crushed wound (क्रश्डवुंड)	
घृष्ट	Excoriated (एक्स्कोरिएटेड)	
अस्थिभग्न	Fracture (फ्रैक्चर)	कस्र
सन्धिविश्लेष	Dislocation (डिस्लोकेशन)	खलआ
अश्वकर्ण	Spiral fracture (स्पायरल फ्रैक्चर)	
अस्थिच्छल्लिक	Green stick fracture (ग्रीन स्टिक फेक्चर)	
नाडीव्रण	Sinus, fistula (साइनस फिस्चुला)	नासूर
भगन्दर	Fistula in ano (फिस्चुला इन एनो)	नवासीर
लिङ्गार्श	Warts (वार्ट्स)	शलिलउलकुजिब
कुष्ठ	Diseases of the skin (डिसीजेस आफ दी स्किन) Dermatoses (डर्माटासिस)	
महाकुष्ठ	Leprosy (लेप्रसी)	जुजाम
सिध्म	Ptyriasis versicolour (पिटिरियासिस वार्टीकलर) Cloasmaptyriasis (क्लोआजमाटिरिअसिस)	खलफ
चर्मकुष्ठ	Zerodirma (जेरोडर्मा)	
किटिभ	psoriasis (सोरायसिस)	
वैपादिक	Rhagabes (हेगेडस)	
अलसक	Lechen (लीचेन)	

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
कच्छू	Scabies Itch (स्केबिस इच)	
विस्फोटक	Impetigo (इम्पेटिगो)	
शतारु	Rupia (रुपिया)	
विचर्चिका	Pemphigus (पेंफिगस)	
दद्रु	Ringworm or Tinea (रिङ्गवर्म या टिनिया)	कुबा
किलास	Leucoderma (ल्यूकोडर्मा)	बरस अबियज़
पामा	Eczema (एकज़िमा)	जर्ब
विसर्प	Erysipelas (एरिसिपेलस)	हुमरा
ग्रन्थिविसर्प	Erythema nodozum (एरीथिमा नोडोज़्म)	
कर्दमविसर्प	Cellulitis (सेल्युलाइटिस)	
क्षतविसर्प	Traumaticerysipelas (ट्रोमेटिकएरिसिपेलस)	
शीतपित्त	Uriticaria (अर्टीकेरिया)	
विस्फोट	Exenthymeta (एक्ज़ेन्थीमेटा)	
मसूरिका	Smallpox (स्मालपॉक्स)	जुदरी
रोमान्तिका	Measles (मीज़ल्स)	
इन्द्रलुप्त	Falling of hair (फेलिंग आफ़ हेयर)	इन्तशार उलशअर
	Baldness (बाल्डनेस)	
पाषाणगर्दभ	Mumps (मम्पस)	
विदारिका	Bubo (ब्यूबो)	
पलित	Premature grey hair (प्रेमैच्युर ग्रे हेयर)	शेब
मुखदूषिका	Acne (एक्नी)	बशूर उल लुबन
मशक	Mole (मोल)	शालील
गुदभ्रंश	Prolapsus Ani (प्रोलेप्सिस एनाय)	खरूज उल मुकअद
तिलकालक	Anychea (अनीशिया)	खाल

संस्कृत वैद्यक	अँगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
चिप्प	Whitlow (ह्विटलो)	दाखस
सन्निरुद्धगुद	Stricture of the rectum (स्ट्रिक्चर आफ़ दी रेक्टम)	
कक्षा	Herpes zoster (हर्पीस ज़ोस्टर)	
कदर	Corn (कार्न)	
निरुद्धप्रकाश	Phimosis (फाइमासिस)	
परिवर्त्तिका	Paraphimosis (प्याराफा-इमासिस)	
अवपटिका	Tear in the prepuce (टेयर इन दी प्रेप्यूस)	
अहिपूतना	Napkin rash (नेपकिन रेश)	हकउलमुकअद
उपदंश	Soft chancre (सॉफ्टसेंकर)	जुम्राह
फिरंगोपदंश	Hard chancre syphilis (हार्डशेंकर सिफलिस)	आतशक
खलिवर्द्धन	Extra tooth (एक्स्ट्रा टूथ)	असनान
दन्तनाडी	Sinus in the gum (साइनस इन दी गम्स)	कुरूह उल लशा
क्रिमिदन्तक	Caries of teeth (करीज आफ़ टीथ)	दीदान उल लशा
दन्तहर्ष	Odontites (ओडन्टायटीज)	जर्स
दन्तशर्करा	Tarter (टार्टर)	हजर
श्यावदन्त	Black or necrosed tooth (ब्लैक ऑर नेक्रोज्ड टूथ)	
कण्ठशुण्डी	Elongated uvula (एलोंजेटेड युवुल)	
उपजिह्वा	Ranula (रेन्युला)	जफदउललसान
मुखरोग	Stomatitis (स्टोमेटायटिस)	
शीताद	Spongy gums (स्पंजी गम्स)	

संस्कृत वैद्यक	अंगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
दन्तवेष्ट	Pyorrhoea alveolaris (पायेरिया ओल्वियओलारिस) Suppurative Gingivitis (सप्युरेटिव जिन्जिवाइटिस)	
दन्तपुप्पुट शोषिक	Gumboil (गमबोइल)	
अलास	Sublingual abscess (सब्लिन्ग्वल एब्सेस)	
तालवर्बुद	Palatal cancer (पैलेटल केन्सर)	
कर्णनाद	Noises in the ear (नॉइजेज इन दी इअर)	तनीन, दवी
कर्णस्राव	Otorrhoea (ओटोरिया)	इन्फजारउल उज़न
कर्णशूल	Otitis (ओटाइटिस) Otalgia (ओटल्जिया)	वजअ उल उज़न
कर्णपाक	Suppuratron in the ear (सप्युरेशन इन दी इअर)	कुर्हतुल उज़न
क्रिमिकर्ण	Worms in ear (वर्म्स इन इअर)	दीदान उल उज़न
पूतिकर्ण	Faetid discharge from the ear (फीटिड डिस्चार्ज फ्राम दी इअर)	
कर्णशोथ	Inflammation of the ear (इन्फ्लेमेशन आफ दी इअर)	वर्म उल उज़न
बाधिर्य	Deafness (डिफनेस)	कर
अवीनस	Ozoena (ओजीना)	
नासापाक	Suppurative rhinites (सप्युरेटिव हायटिस)	बशूर उल अनफ नऊ
क्षवथु	Sneezing (स्नीजिंग)	अतूस
नासाशोष	Dryness of nose (ड्राईनेस आफ़ नोज)	जौफ उल अनफ
प्रतिश्याय	Catarrah (कटाह)	जुमाक़

संस्कृत वैद्यक	अँगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
अभिष्यन्द	Ophthalmia (ओफ्थोल्मिया)	दमधा
अक्षिपाकात्यय	.	रमद
शिरोत्पात	Ponnus (पोनस)	मबल
शुक्र	Corneal ulcer (कार्नियल अल्सर)	ब्याज
पित्तविदग्ध दृष्टि	Day Blindness (डे ब्लाइन्डनेस) (Hemaralopia) (हिमेरेलोपिया)	जहर
पाददारी	Cracks in the sole (क्रेक्स इन दी सोल)	
पद्मिनीकण्टक	Papilloma of the skin (पेपीलोमा आफ दी स्किन)	
कर्णगूथक	Wax in the ear (वेक्स इन दी इअर)	
तुण्डकेरी अध्रुष	Abscess of the palate (एब्सेस आफ दी पेलेट)	
मांसतान	Diphtheria (डिफ्थेरिया)	
श्लेष्मविदग्ध दृष्टि	Nyctalopia (निक्टलोपिया)	अशा
अर्म	Pterygium (टेरिजियम)	
नेत्रनाडी	Lachrymal fistula (लेक्रिमल फिस्च्युला)	नासूर उल मेश्रा
लिङ्गनाश	Cataract (केरटेक्ट)	नाजुल उल मेश्रा
क्रिमिग्रन्थि	Parasites on suppurated glands (पेरासाइटिस ऑन सपर्टेड ग्लैण्डस)	
वर्त्मार्श	Granular Conjunctivitis (ग्रेन्युलर कंजंकटिह्वायटिस)	
अंजननासिका	Stye (स्टाय)	

संस्कृत वैद्यक	अंगरेजी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
वातहतवर्त्म	Ptosis (टोटी	इस्तिरखाय उल-जुफन
निमेष	Blepharosposm (ब्लेफेरोस्पेजम)	
कुञ्चन	A trophy (ए ट्रोफी)	इन्तनाक उल-जुफन
पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म	Trichiasis (ट्रिकिआसिस)	शअरमुन्कलब, शअर जायद
पक्ष्मशात	Tineatarsi (टिनियाटारसाय)	इन्तशार उल-अहदाब
शिरःशूल	Headache (हेडेच)	सुदाअ
अर्धावभेद	Hemicrania (हेमिक्रेनिया	शकीका
रक्तप्रदर	Metrorrhagia (मेट्रो-हेजिया)	इस्तहाजा
श्वेतप्रदर	Leucorrhea (ल्यूकोरिया)	
वन्ध्यात्व	Sterility (स्टेरेलिटी)	अक्र
योनिकन्द	Vaginal Polypus (व्हजायनल पोलिपस)	
गर्भस्राव	Abortion (एबार्शन)	इस्कात हमल
गर्भपात	Miscarriage (मिस्कैरेज)	
मूढगर्भ	Difficult Labour (डिफीकल्ट लेबर)	
मक्कलशूल	After pains (आफ्टर पेन्स)	
स्तनविद्रधि	Mammary abscess (मेमेरी एब्सेंस)	
स्तन्यदुष्टि	Diseased milk (डिसीज्ड-मिल्क)	
सूतिकारोग	Peurperal fever (प्यूएरे-परेल फीवर)	
गति	Presentation (प्रेजेन्टेशन)	
संकीलक	Vertex (वर्टेक्स)	
परिघ	Trausverse (ट्रांसवर्स)	

संस्कृत वैद्यक	अंगरेज़ी डाक्टरी	यूनानी हिकमत
कुकूणक	Ophthalmia in children (आफ्थेलमिया इन चिल्ड्रेन)	
पारिगर्भिक	Pining (पायनिंग)	
तालुकण्टक	Polypus on hard palate (पॉलिप्स ऑन हार्ड पैलेट)	
महापद्मविसर्प	Cellulitis (सेलायुवाइटिस)	
योनि-व्यापद्	Disease of vagina (डिसीज़ेस आफ़ वैजायना)	
आर्तव	Manstruation (मेनस्ट्रूएशन)	
सर्पविप	Snake poisoning (स्नेक पॉइज़निंग)	
आखुविष	Rat bite poisoning (रैट-बाइट पॉइज़निंग)	
वृश्चिकविष	Scorpion poisoning (स्कॉरपिअन् बैट पॉइज़निंग)	
स्नायुक	Guinea worm (गिनीवर्म)	
अम्लपित्त	Acidity (एसिडिटी)	
क्लैब्य	Impotency (इम्पोटेन्सी)	
औपसर्गिकमेह	Gonorrhea (गनोरिया)	
योषापस्मार	Hysteria (हिस्टीरिया)	
उरस्तोय	Pleurisy (प्लुरिसी)	
यकृत्रोग	Liver diseases (लिवर-डिसीज़ेस)	
योन्याक्षेप	Vaginismus (वैजाइनिसमास)	
योनिकण्डू	Pruritus valve (प्रूरिटस वल्व)	
स्नायुशूल	Neuralgia (न्यूरेलिजिया)	
ताण्डवरोग	Chorea (कोइरा)	
गदोद्वेग	Hypochondriasis (हिपकोनड्रिएसिस)	

अमृतसागर

(भाषा)

यह बड़ी अनमोल पुस्तक है, जिसे जयपुर नरेश की आज्ञा से अनेक अनुभवी विद्वान् वैद्यों ने संस्कृत के चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश आदि ग्रंथों के आधार पर संग्रह कर सरल हिंदी में लिखा था। इसी एक पुस्तक को पढ़कर सैकड़ों लोग वैद्य बन गये। इसमें सभी रोगों के निदान और हजारों आजमूदा नुस्खे लिखे हैं। दवाओं के बनाने और सेवन करने की विधि भी है। पृष्ठ ७३२ और मूल्य केवल ७) रु०।

अर्कप्रकाश

(भाषाटीका-सहित)

यह अद्वितीय विद्वान् रावण की बनाई हुई अद्भुत पुस्तक है। इसमें सभी अर्क खींचने की विधि, अनुपान तथा रोगों पर उनका प्रयोग लिखा है। बड़े काम की चीज है। मूल्य १।।।)

मदनपाल निघंटु

(भाषाटीका-सहित)

निघंटु वैद्यक का एक बहुत आवश्यक भाग है। हर एक जड़ी-बूटी के अनेक नाम हैं। निघंटु से ही उनका पता लगता है; क्योंकि भिन्न-भिन्न ग्रंथों में एक औषधि के भिन्न-भिन्न नाम मिलते हैं। यह मदनपाल निघंटु बृहत् ग्रंथ है। इस की भाषा स्व० शक्तिधरजी शुक्ल ने की थी। यह पुस्तक अभी छपकर फिर तैयार हुई है। इसकी एक प्रति हर एक वैद्य के पास तो रहनी ही चाहिए, किन्तु सर्वसाधारण लोगों को भी इसे अपने पास अवश्य रखना चाहिए। पृष्ठ २६६ : मूल्य ३)

मिलने का पता:—

मैनेजर (राजा) रामकुमार प्रेस, बुकडिपो

हज़रतगंज, लखनऊ।

मुद्रक—सूरज प्रिंटिंग प्रेस, ६०, गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ।